युवकों के प्रति

स्वामी विवेकानन्द



रामकृष्ण मठ
नागपुर

प्रकाशक :
स्वामी व्योमरूपानन्द
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ
धन्तोली, नागपुर–४४० ०१२

अनुवादक :
पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी
'निराला'

श्रीरामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृतिग्रन्थमाला
पुष्पसंख्या १०४

[व ८६ : प्र ३२]

किमत रु. ६.००

मुद्रक :
श्री. दि. मि. धाक्स
नाग मुद्रणालय
रुईकर रोड
नागपुर–४४० ००२

दो शब्द

हमारा यह नया प्रकाशन 'युवकों के प्रति' युवकों के हाथ में देते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है।

युवावस्था मानवजीवन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण काल है। इसी अवस्था में मानव की अन्तर्निहित अनेकविध शक्तियाँ विकासोन्मुख होती हैं। संसार के राजनैतिक, सामाजिक या धार्मिक क्षेत्र मे आज तक जो भी हितकर क्रान्तियाँ हुईं उनका मूलस्रोत युवशक्ति ही रही है। वर्तमान युग मे मोहनिद्रा मे मग्न हमारी मातृभूमि की दुर्दशा तथा अध्यात्मज्ञान के अभाव से उत्पन्न समग्र मानवजाति के दु.ख क्लेश को देखकर जब परिव्राजक स्वामी विवेकानन्द व्यथित हृदय से इसके प्रतिकार का उपाय सोचने लगे तो उन्हे स्पष्ट उपलब्धि हुई कि हमारे बलवान्, बुद्धिमान्, पवित्र एवं नि स्वार्थ युवको द्वारा ही भारत एवं समस्त ससार का पुनरुत्थान होगा। उन्होने गुरुगम्भीर स्वर से हमारे युवको को ललकारा : "उठो, जागो—शुभ घडी आ गयी है", "उठो, जागो—तुम्हारी मातृभूमि तुम्हारा बलिदान चाहती है", "उठो, जागो—सारा ससार तुम्हे आह्वान कर रहा है।"

युवशक्ति को प्रबोधित करने के लिए स्वामीजी ने आसेतुहिमाचल भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों में जो तेजोदीप्त भाषण दिये उन्हे पढ़ते हुए आज भी हृदय मे नवीन शक्ति और प्रेरणा का संचार होता है। हमारे युवकों के लिए इन स्फूर्तिदायी भाषणों का एक स्वतन्त्र संग्रह अत्यन्त आवश्यक था। अद्वैत आश्रम, कलकत्ता द्वारा 'To the Youth of India' नाम से इस प्रकार का सकलन पहले ही प्रसिद्ध किया गया था। उसी का अनुसरण करते हुए 'राष्ट्रीय युव वर्ष' के उपलक्ष्य मे हमने 'भारत मे विवेकानन्द' ग्रन्थ की सहायता से प्रस्तुत पुस्तक का सकलन किया।

हमें पूर्ण विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक हमारे देश की युवशक्ति को जागृत करने मे सहायक सिद्ध होगी।

नागपुर
१३-२-१९८६
वसन्तपंचमी

—प्रकाशक

अनुक्रमणिका

युवकों के प्रति

भारत का संसार को सन्देश

जो थोड़ा बहुत कार्य मेरे द्वारा हुआ है, वह मेरी किसी अन्तर्निहित शक्ति द्वारा नही हुआ, वरन् पाश्चात्य देशो मे पर्यटन करते समय, अपनी इस परम पवित्र और प्रिय मातृभूमि से जो उत्साह, जो शुभेच्छा तथा जो आशीर्वाद मुझे मिले है, उन्ही की शक्ति द्वारा सम्भव हो सका है। हाँ, यह ठीक है कि कुछ काम तो अवश्य हुआ है, पर पाश्चात्य देशों मे भ्रमण करने से विशेष लाभ मेरा ही हुआ है। इसका कारण यह है कि पहले मै जिन बातो को शायद हृदय के आवेग से सत्य मान लेता था, अब उन्ही को मै प्रमाणसिद्ध विश्वास तथा प्रत्यक्ष और शक्तिसम्पन्न सत्य के रूप मे देख रहा हूँ। पहले मै भी अन्य हिन्दुओ की तरह विश्वास करता था कि भारत पुण्यभूमि है—कर्मभूमि है, जैसा कि माननीय सभापति महोदय ने अभी अभी तुमसे कहा भी है। पर आज मै इस सभा के सामने खड़े होकर दृढ़ विश्वास के साथ कहता हूँ कि यह सत्य ही है। यदि पृथ्वी पर ऐसा कोई देश है जिसे हम पुण्यभूमि कह सकते है, यदि ऐसा कोई स्थान है जहाँ पृथ्वी के सब जीवो को अपना कर्मफल भोगने के लिए आना पड़ता। है, यदि ऐसा कोई स्थान है जहाँ भगवान् की ओर उन्मुख

---

१६ जनवरी १८९७ को फ्लोरल हॉल, कोलम्बो मे दिया हुआ ५। यही स्वामी विवेकानन्द का प्राच्य मे दिया प्रथम सार्वजनिक ५ था।

होने के प्रयत्न मे संलग्न रहनेवाले जीवमात्र को अन्ततः आना होगा, यदि ऐसा कोई देश है जहाँ मानवजाति की क्षमा, घृति, दया, शुद्धता आदि सद्‌वृत्तियों का सर्वाधिक विकास हुआ है और यदि ऐसा कोई देश है जहाँ आध्यात्मिकता तथा सर्वाधिक आत्मान्वेषण का विकास हुआ है, तो वह भूमि भारत ही है। अत्यन्त प्राचीन काल से ही यहाँ पर भिन्न भिन्न धर्मो के संस्थापकों ने अवतार लेकर सारे संसार को सत्य की आध्यात्मिक सनातन और पवित्र धारा से बारम्बार प्लावित किया है। यहीं से उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम चारों ओर दार्शनिक ज्ञान की प्रवल धाराएँ प्रवाहित हुई हैं, और यही से वह धारा बहेगी, जो आज-कल की पार्थिव सभ्यता को आध्यात्मिक जीवन प्रदान करेगी। विदेशों के लाखों स्त्री-पुरुषों के हृदय मे जड़वाद की जो अग्नि धधक रही है, उसे बुझाने के लिए जिस जीवनदायी सलिल की आवश्यकता है, वह यही विद्यमान है। मित्रो, विश्वास रखो, यही होने जा रहा है।

मै इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ। तुम लोगो मे जिन्होने संसार की विभिन्न जातियो के इतिहास का भलीभाँति अध्ययन किया है, इस सत्य से अच्छी तरह परिचित होगे। संसार हमारे देश का अत्यन्त ऋणी है। यदि भिन्न भिन्न देशो की पारस्परिक तुलना की जाए तो मालूम होगा कि सारा संसार सहिष्णु एव निरीह भारत का जितना ऋणी है, उतना और किसी देश का नही। 'निरीह हिन्दू'—ये शब्द कभी कभी तिरस्कार के रूप मे प्रयुक्त होते हैं, पर यदि किसी तिरस्कार मे अद्‌भुत सत्य का कुछ अश निहित रहता है तो वह इन्ही शब्दों मे है। हिन्दू सदा से जगत्पिता की प्रिय सन्तान रहे हैं। यह ठीक है कि संसार के अन्यान्य

स्थानों मे सभ्यता का विकास हुआ है, प्राचीन और वर्तमान काल मे कितनी ही शक्तिशाली तथा महान् जातियो ने उच्च भावों को जन्म दिया है, पुराने समय मे और आजकल भी बहुतसे अनोखे तत्त्व एक जाति से दूसरी जाति मे पहुँचे है, और यह भी ठीक है कि किसी किसी राष्ट्र की गतिशील जीवनतरंगों ने महान् शक्तिशाली सत्य के बीजों को चारो ओर बिखेरा है। परन्तु भाइयो ! तुम यह भी देख पाओगे कि ऐसे सत्य का प्रचार हुआ है—रणभेरी के निर्घोष तथा रणसज्जा से सज्जित सेनासमूह की सहायता से। बिना रक्त-प्रवाह मे सिक्त हुए, बिना लाखों स्त्री-पुरुषों के खून की नदी बहाये, कोई भी नया भाव आगे नही बढ़ा। प्रत्येक ओजस्वी भाव के प्रचार के साथ ही साथ असख्य लोगो का हाहाकार, अनाथों और असहायों का करुण क्रन्दन और विधवाओं का अजस्र अश्रुपात होते देखा गया है।

प्रधानत. इसी उपाय द्वारा अन्यान्य देशो ने ससार को शिक्षा दी है, परन्तु इस उपाय का अवलम्बन किये बिना ही भारत हजारो वर्षो से शान्तिपूर्वक जीवित रहा है। जब यूनान का अस्तित्व नही था, रोम भविष्य के अन्धकार-गर्भ मे छिपा हुआ था, जब आधुनिक यूरोपियनो के पुरखे घने जंगलो के अन्दर छिपे रहते थे और अपने शरीर को नीले रग से रँगा करते थे, तब भी भारत क्रियाशील था। उससे भी पहले, जिस समय का इतिहास मे कोई लेखा नही है, जिस सुदूर धुँधले अतीत की ओर झाँकने का साहस परम्परा को भी नही होता, उस काल से लेकर अब तक न जाने कितने ही भाव एक के बाद एक भारत से प्रसृत हुए हैं, पर उनका प्रत्येक शब्द आगे शान्ति तथा पीछे आशीर्वाद के साथ कहा गया है। संसार के सभी देशों मे केवल एक हमारे ही

देश ने लड़ाई-झगडा करके किसी अन्य देश को पराजित नहीं किया है—इसका शुभ आशीर्वाद हमारे साथ है और इसी से हम अब तक जीवित है।

एक समय था, जब यूनानी सेना के रण-प्रयाण के दर्प से संसार कॉप उठता था। पर आज वह कहाँ है? आज तो उसका चिह्न तक कही दिखाई नही देता। यूनान देश का गौरव आज अस्त हो गया है। एक समय था, जब प्रत्येक पार्थिव भोग्य वस्तु के ऊपर रोम की श्येनांकित विजय-पताका फहराया करती थी, रोमन लोग सर्वत्र जाते और मानवजाति पर प्रभुत्व प्राप्त करते थे। रोम का नाम सुनते ही पृथ्वी कॉप उठती थी, पर आज उसी रोम का कैपिटोलाइन पहाड़ एक भग्नावशेष का ढूह मात्र है। जहाँ सीज़र राज्य करता था, वहाँ आज मकड़ी जाल बुनती है। इसी प्रकार कितने ही समान वैभवशाली राष्ट्र उठे और गिरे। विजयोल्लास और भावावेशपूर्ण प्रभुत्व का कुछ काल तक कलुषित राष्ट्रीय जीवन विताकर, सागर की तरंगो की तरह उठकर फिर मिट गये।

इसी प्रकार ये सब राष्ट्र मनुष्य-समाज पर किसी समय अपना चिह्न अकित कर अब मिट गये हैं। परन्तु हम लोग आज भी जीवित है। आज यदि मनु इस भारतभूमि पर लौट आएँ, तो उन्हें कुछ भी आश्चर्य न होगा, वे ऐसा नहीं समझेंगे कि कहाँ आ पहुँचे। वे देखेंगे कि हजारो वर्षों के सुचिन्तित तथा परीक्षित वे ही प्राचीन विधान यहाँ आज भी विद्यमान है, सैकडो शताब्दियो के अनुभव और युगो की अभिज्ञता के फलस्वरूप वही सनातन सा आचार-विचार यहाँ आज भी मौजूद है। और जितने ही दिन वीतते जा रहे है, जितने ही दुःख-दुर्विपाक आते



हैं और उन पर लगातार आघात करते हैं, उनसे केवल यही उद्देश्य सिद्ध होता है कि वे और भी मजबूत, और भी स्थायी रूप धारण करते जा रहे हैं। और यह खोजने के लिए कि इन सब का केन्द्र कहाँ है, किस हृदय से रक्तसंचार हो रहा है, और हमारे राष्ट्रीय जीवन का मूल स्रोत कहाँ है, तुम विश्वास रखो कि वह यही विद्यमान है। सारी दुनिया भ्रमण करने के बाद ही मैं यह कह रहा हूँ।

अन्यान्य राष्ट्रो के लिए धर्म, ससार के अनेक कृत्यो मे एक धंधा मात्र है। वहाँ राजनीति है, सामाजिक जीवन की सुख-सुविधाएँ है, धन तथा प्रभुत्व द्वारा जो कुछ प्राप्त हो सकता है और इन्द्रियों को जिससे सुख मिलता है उन सब के पाने की चेष्टा भी है। इन सब विभिन्न जीवन-व्यापारों के भीतर तथा भोग से निस्तेज हुई इन्द्रियों को पुनः उत्तेजित करने के लिए उपकरणो की समस्त खोज के साथ, वहाँ सम्भवतः थोड़ा बहुत धर्म-कर्म भी है। परन्तु यहाँ, भारतवर्ष मे, मनुष्य की सारी चेष्टाएँ धर्म के लिए हैं, धर्म ही जीवन का एकमात्र उपाय है। चीन-जापान युद्ध हो चुका, पर तुम लोगों मे कितने ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें इस युद्ध का हाल मालूम है? अगर जानते है तो बहुत कम लोग। पाश्चात्य देशों मे जो जबरदस्त राज-नीतिक तथा सामाजिक आन्दोलन पाश्चात्य समाज को नये रूप मे, नये साँचे मे ढालने मे प्रयत्नशील हैं, उनके विषय मे तुम लोगों मे से कितनों को जानकारी है? यदि उनकी किसी को कुछ खबर है, तो बहुत थोड़े आदमियों को। पर अमेरिका मे एक विराट् धर्म-महासभा बुलायी गयी थी और वहाँ एक हिन्दू संन्यासी भी भेजा गया था—बड़े ही आश्चर्य का विषय है कि

यह बात हर एक आदमी को, यहाँ के कुली-मजदूरों तक को मालूम है। इसी से जाना जाता है कि हवा किस ओर चल रही है, राष्ट्रीय जीवन का मूल कहाँ पर है। पहले मैं पृथ्वी का परिभ्रमण करनेवाले यात्रियों, विशेषत: विदेशियो द्वारा लिखी हुई पुस्तकों को पढ़ा करता था जो प्राच्य देशों के जन-समुदाय की अज्ञता पर खेद प्रकाश करते थे, पर अब मैं समझता हूँ कि यह अंशत: सत्य है और साथ ही अंशत: असत्य भी। इंग्लैंड, अमेरिका, फ्रान्स, जर्मनी या जिस किसी देश के एक मामूली किसान को बुलाकर तुम पूछो, "तुम किस राजनीतिक दल के सदस्य हो?"—तो तुम देखोगे कि वह फौरन कहेगा, "मैं रैडिकल दल अथवा कंजर्वेटिव दल का सदस्य हूँ।" और वह तुमको यह भी बता देगा कि वह अमुक व्यक्ति के लिए अपना मत देनेवाला है। अमेरिका का किसान जानता है कि वह रिपब्लिकन दल का है या डिमोक्रेटिक दल का। इतना ही नही, वरन् वह 'रौप्यसमस्या' के विषय से भी कुछ कुछ अवगत है। पर यदि तुम उससे उसके धर्म के विषय मे पूछो तो वह केवल कहेगा, "मैं गिरजाघर जाया करता हूँ। और मेरा सम्बन्ध ईसाई धर्म की अमुक शाखा से है।" वह केवल इतना जानता है और इसे पर्याप्त समझता है। दूसरी ओर किसी भारतवासी किसान से पूछो कि क्या वह राजनीति के विषय मे कुछ जानता है? तो वह उत्तर देगा, "यह क्या है?" वह समाजवादी आन्दोलनो के सम्बन्ध मे अथवा श्रम और पूँजी के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय मे तथा इसी तरह के अन्यान्य विपयो की जरा भी जानकारी नहीं रखता। उसने जीवन मे कभी इन बातों को सुना ही नही है। वह कठोर परिश्रम करके जीविको-

पार्जन करता है। पर यदि उससे पूछा जाए, "तुम्हारा धर्म क्या है?" तो वह अपने माथे पर का तिलक दिखाते हुए उत्तर देगा, "देखो मित्र, मैने इसको अपने माथे पर अंकित कर रखा है।" धर्म के प्रश्न पर वह तुमको दो-चार अच्छी बाते भी बता सकता है। यह बात मै अपने अनुभव के बल पर कह रहा हूँ। यह है हमारे राष्ट्र का जीवन।

प्रत्येक मनुष्य मे कोई न कोई विशेषता होती है, प्रत्येक व्यक्ति भिन्न भिन्न मार्गो से उन्नति की ओर अग्रसर होता है। हम कहते हैं, पिछले अनन्त जीवनो के कर्मो द्वारा मनुष्य का वर्तमान जीवन एक निश्चित मार्ग से चलता है। क्योकि अतीत काल के कर्मो की समष्टि ही वर्तमान मे प्रकट होती है, और वर्तमान समय मे हम जो कुछ कर्म कर रहे हैं, हमारा भावी जीवन उसी के अनुसार गठित हो रहा है। इसीलिए यह देखने मे आता है कि इस संसार मे जो कोई आता है, उसका एक न एक ओर विशेष झुकाव होता है, उस ओर मानो उसे जाना ही पड़ेगा, मानो उस भाव का अवलम्बन किये बिना वह जी ही नही सकता। यह बात जैसे व्यक्तिमात्र के लिए सत्य है, वैसे ही जाति के लिए भी। प्रत्येक जाति का भी उसी तरह किसी न किसी तरफ विशेष झुकाव हुआ करता है। मानो प्रत्येक जाति का एक एक विशेष जीवनोद्देश्य हुआ करता है। हर एक जाति को समस्त मानवजाति के जीवन को सर्वांगसम्पूर्ण बनाने के लिए किसी व्रतविशेष का पालन करना होता है। अपने व्रत-विशेष को पूर्णत· सम्पन्न करने के लिए मानो हर एक जाति को उसका उद्यापन करना ही पड़ेगा। राजनीतिक श्रेष्ठता या सामरिक शक्ति प्राप्त करना किसी काल मे हमारी जाति का

जीवनोद्देश्य न कभी रहा है और न इस समय ही है और यह भी याद रखो कि न तो वह कभी आगे ही होगा। हाँ, हमारा दूसरा ही जातीय जीवनोद्देश्य रहा है। वह यह है कि समग्र जाति की आध्यात्मिक शक्ति को मानो किसी डाइनेमो मे संगृहीत, सरक्षित और नियोजित किया गया हो और कभी मौका आने पर वह संचित शक्ति सारी पृथ्वी को एक जल-प्लावन मे बहा देगी। जब कभी फारस, यूनान, रोम, अरव या इंग्लैंड वाले अपनी सेनाओं को लेकर दिग्विजय के लिए निकले और उन्होने विभिन्न राष्ट्रों को एक सूत्र मे ग्रथित किया है, तभी भारत के दर्शन और अध्यात्म नवनिर्मित मार्गो द्वारा ससार की जातियों की धमनियों मे होकर प्रवाहित हुए है। समस्त मानवीय प्रगति मे शान्तिप्रिय हिन्दू जाति का कुछ अपना योगदान भी है और आध्यात्मिक आलोक ही भारत का वह दान है।

इस प्रकार इतिहास पढकर हम देखते है कि जब कभी अतीत मे किसी प्रबल दिग्विजयी राष्ट्र ने संसार की अन्यान्य जातियों को एक सूत्र मे ग्रथित किया है, और भारत को उसके एकान्त और शेष दुनिया से उसकी पृथकता से, जिसमे बार बार रहने का वह अभ्यस्त रहा है, मानो निकालकर अन्यान्य जातियों के साथ उसका सम्मेलन कराया है—जब कभी ऐसी घटना घटी है, तभी परिणामस्वरूप भारतीय आध्यात्मिकता से सारा संसार आप्लावित हो गया है। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ मे वेद के किसी एक साधारण से लैटिन अनुवाद को पढ़कर, जो अनुवाद किसी नवयुवक फ्रान्सीसी द्वारा वेद के किसी पुराने फारसी अनुवाद से किया गया था, विख्यात जर्मन दार्शनिक शोपेनहॉवर ने कहा है, "समस्त संसार मे उपनिषद् के समान हितकारी और

उन्नायक अन्य कोई अध्ययन नही है। जीवन भर उसने मुझे शान्ति प्रदान की है और मरने पर भी वही मुझे शान्ति प्रदान करेगा।" आगे चलकर वे ही जर्मन ऋषि यह भविष्यवाणी कर गये है, "यूनानी साहित्य के पुनरुत्थान से ससार की चिन्तन-प्रणाली मे जो क्रान्ति हुई थी, शीघ्र ही विचार-जगत् मे उससे भी शक्तिशाली और दिगन्तव्यापी क्रान्ति का विश्व साक्षी होने वाला है।" आज उनकी वह भविष्यवाणी सत्य हो रही है। जो लोग आँखे खोले हुए है, जो पाश्चात्य जगत् की विभिन्न राष्ट्रों के मनोभावो को समझते है, जो विचारशील है तथा जिन्होने भिन्न भिन्न राष्ट्रो के विषय मे विशेष रूप से अध्ययन किया है, वे देख पाएँगे कि भारतीय चिन्तन के इस धीर और अविराम प्रवाह के सहारे संसार के भावों, व्यवहारो, पद्धतियो और साहित्य मे कितना बडा परिवर्तन हो रहा है।

हाँ, भारतीय प्रचार की अपनी विशेषता है, इस विषय मे मै तुम लोगों को पहले ही सकेत कर चुका हूँ। हमने कभी बन्दूक या तलवार के सहारे अपने विचारो का प्रचार नही किया। यदि अंग्रेजी भाषा मे ऐसा कोई शब्द है जिसके द्वारा संसार को भारत का दान प्रकट किया जाए—यदि अंग्रेजी भाषा मे कोई ऐसा शब्द है जिसके द्वारा मानवजाति पर भारतीय साहित्य का प्रभाव व्यक्त किया जाए तो वह यही एक मात्र शब्द सम्मोहन (fascination) है। यह सम्मोहिनी शक्ति वैसी नही है जिसके द्वारा मनुष्य एकाएक मोहित हो जाता है, वरन् यह ठीक उसके विपरीत है; यह धीरे धीरे बिना कुछ मालूम हुए, मानो तुम्हारे मन पर अपना प्रभाव डालती है। बहुतो को भारतीय विचार, भारतीय प्रथा, भारतीय आचार-व्यवहार, भारतीय दर्शन और

भारतीय साहित्य पहले पहल कुछ विसदृश से मालूम होते हैं; परन्तु यदि वे धैर्यपूर्वक उक्त विषयो का विवेचन करे, मन लगाकर अध्ययन करे और इन तत्त्वों मे निहित महान् सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त करें, तो फलस्वरूप निन्न्यानबे प्रतिशत लोग आकर्षित होकर उनसे विमुग्ध हो जाएँगे। सबेरे के समय गिरनेवाली कोमल ओस न तो किसी की आँखों से दिखाई देती है और न उसके गिरने से कोई आवाज ही कानों को सुनाई पड़ती है, ठीक उसी के समान यह शान्त, सहिष्णु, सर्वसह धर्मप्राण जाति धीर और मौन होने पर भी विचार-साम्राज्य मे अपना जबरदस्त प्रभाव डालती जा रही है।

प्राचीन इतिहास का पुनरभिनय फिर से आरम्भ हो गया है। कारण, आज, जब कि आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा बारम्बार होनेवाले आघातो से आपात-सुदृढ़ तथा दुर्भेद्य धर्मविश्वास की जडे तक हिल रही हैं, जब कि मनुष्यजाति के भिन्न भिन्न अंशों को अपने अनुयायी कहनेवाले विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों का खास दावा शून्य मे पर्यवसित हो हवा मे मिलता जा रहा है, जब कि आधुनिक पुरातत्त्वानुसन्धान के प्रबल मूसलाघात प्राचीन बद्धमूल संस्कारों को शीशे की तरह चूर चूर किये डालते है, जब कि पाश्चात्य जगत् मे धर्म केवल मूढ़ लोगों के हाथ मे चला गया हैं, और जब कि ज्ञानी लोग धर्मसम्बन्धी प्रत्येक विषय को घृणा की दृष्टि से देखने लगे हैं, ऐसी परिस्थिति मे भारत का, जहाँ के अधिवासियो का धर्मजीवन सर्वोच्च दार्शनिक सत्य सिद्धान्तो द्वारा नियमित है, दर्शन संसार के सम्मुख आता है, जो भारतीय मानस की धर्मविषयक सर्वोच्च महत्त्वाकांक्षाओ को प्रकट करता है। इसी-

लिए आज ये सब महान् तत्त्व---असीम अनन्त जगत् का एकत्व, निर्गुण ब्रह्मवाद, जीवात्मा का अनन्त स्वरूप और उसका विभिन्न जीव-शरीरो मे अविच्छेद्य सक्रमणरूपी अपूर्व तत्त्व तथा ब्रह्माण्ड का अनन्तत्व---सहज ही रक्षा के लिए अग्रसर हो रहे है। पुराने सम्प्रदाय जगत् को एक छोटासा मिट्टी का लोंदा भर समझते थे और समझते थे कि काल का आरम्भ भी कुछ ही दिनों से हुआ है। केवल हमारे ही प्राचीन धर्मशास्त्रो मे यह बात मौजूद है कि देश, काल और निमित्त अनन्त हैं एव इससे भी बढकर हमारे यहाँ के तमाम धर्मतत्त्वो के अनुसन्धान का आधार मानवात्मा की अनन्त महिमा का विषय रहा है। जब क्रमविकासवाद, ऊर्जा-सन्धारणवाद (Conservation of Energy) आदि आधुनिक प्रबल सिद्धान्त सब तरह के कच्चे धर्ममतो की जड मे कुठाराघात कर रहे हैं, ऐसी स्थिति मे उसी मानवात्मा की अपूर्व सृष्टि, ईश्वर की अद्भुत वाणी वेदान्त के अपूर्व हृदयग्राही तथा मन की उन्नति एवं विस्तार-विधायक तत्त्वसमूहो के सिवा और कौनसी वस्तु है जो शिक्षित मानवजाति की श्रद्धा और भक्ति पा सकती है?

साथ ही मै यह भी कह देना चाहता हूँ कि भारत के बाहर हमारे धर्म का जो प्रभाव पड़ता है, वह यहाँ के धर्म के उन मूल तत्त्वों का है, जिनकी पीठिका और नीव पर भारतीय धर्म की अट्टालिका खड़ी है। उसकी सैकडो भिन्न भिन्न शाखा-प्रशाखाएँ, सैकडों सदियों मे समाज की आवश्यकताओं के अनुसार उसमे लिपटे हुए छोटे छोटे गौण विषय, विभिन्न प्रथाएँ, देशाचार तथा समाज के कल्याण-विषयक छोटे-मोटे विचार आदि बाते वास्तव मे 'धर्म' की कोटि मे स्थान नही पा सकती। हम यह भी जानते हैं कि हमारे शास्त्रो मे दो कोटि के सत्य का निर्देश किया गया

है और उन दोनों मे स्पष्ट भेद भी बतलाया गया है। एक ऐसी कोटि जो सदा प्रतिष्ठित रहेगी—मनुष्य का स्वरूप, आत्मा का स्वरूप, ईश्वर के साथ जीवात्मा का सम्बन्ध, ईश्वर का स्वरूप, पूर्णत्व आदि पर प्रतिष्ठित होने के कारण जो चिरन्तन सत्य है और इसी प्रकार ब्रह्माण्डविज्ञान के सिद्धान्त, सृष्टि का अनन्तत्व अथवा यदि अधिक ठीक कहा जाए तो प्रक्षेपण का सिद्धान्त और युगप्रवाहसम्बन्धी अद्‌भुत नियम आदि शाश्वत सिद्धान्त जो प्रकृति के सार्वभौम नियमों पर आधारित है। द्वितीय कोटि के तत्त्वों के अन्तर्गत गौण नियमों का निरूपण किया गया है और उन्ही के द्वारा हमारे दैनिक जीवन के कार्य संचालित होते हैं। इन गौण विषयो को श्रुति के अन्तर्गत नही मान सकते; ये वास्तव मे स्मृति के, पुराणो के अन्तर्गत हैं। इनके साथ पूर्वोक्त तत्त्व-समूह का कोई सम्पर्क नही है। स्वयं हमारे राष्ट्र के अन्दर भी ये सब बराबर परिवर्तित होते आये है। एक युग के लिए जो विधान है, वह दूसरे युग के लिए नही होता। इस युग के बाद फिर जब दूसरा युग आएगा, तब इनको पुनः बदलना पडेगा। महामना ऋषिगण आविर्भूत होकर फिर देशकालोपयोगी नये नये आचार-विधानों का प्रवर्तन करेगे।

जीवात्मा, परमात्मा और ब्रह्माण्ड के इन समस्त अपूर्व, अनन्त, उदात्त और व्यापक धारणाओं मे निहित जो महान् तत्त्व हैं वे भारत मे ही उत्पन्न हुए हैं। केवल भारत ही ऐसा देश है, जहाँ के लोगो ने अपने कबीले के छोटे छोटे देवताओं के लिए यह कहकर लड़ाई नहीं की है कि 'मेरा ईश्वर सच्चा है, तुम्हारा झूठा; आओ, हम दोनो लड़कर इसका फैसला कर ले।' छोटे छोटे देवताओ के लिए लड़कर फैसला करने की बात केवल यहाँ

के लोगो के मुँह से कभी सुनाई नही दी। हमारे यहाँ के ये महान् तत्त्व मनुष्य की अनन्त प्रकृति पर प्रतिष्ठित होने के कारण हजारो वर्ष पहले के समान आज भी मानवजाति का कल्याण करने की शक्ति रखते है। और जब तक यह पृथ्वी मौजूद रहेगी, जितने दिनों तक कर्मवाद रहेगा, जब तक हम लोग व्यष्टि जीव के रूप मे जन्म लेकर अपनी शक्ति द्वारा अपनी नियति का निर्माण करते रहेगे, तब तक इनकी शक्ति इसी प्रकार विद्यमान रहेगी।

सर्वोपरि, अब मै यह बताना चाहता हूँ कि भारत की संसार को कौनसी देन होगी। यदि हम लोग विभिन्न जातियों के भीतर धर्म की उत्पत्ति और विकास की प्रणाली का पर्यवेक्षण करे, तो हम सर्वत्र यही देखेगे कि पहले हर एक उपजाति के भिन्न भिन्न देवता थे। इन जातियो मे यदि परस्पर कोई विशेष सम्बन्ध रहता है तो ऐसे भिन्न भिन्न देवताओं का एक साधारण नाम भी होता है। उदाहरणार्थ, बैबिलोनियन देवता को ही ले लो। जब बैबिलोनियन लोग विभिन्न जातियो मे विभक्त हुए थे, तब उनके भिन्न भिन्न देवताओ का एक साधारण नाम था 'बाल', ठीक इसी प्रकार यहूदी जाति के विभिन्न देवताओं का साधारण नाम 'मोलोक' था। साथ ही तुम देखोगे कि कभी कभी इन विभिन्न जातियो मे कोई जाति सब से अधिक बलशालिनी हो उठती थी और उस जाति के लोग अपने राजा के अन्य सब जातियो के राजा स्वीकृत होने की माँग करते थे। इससे स्वभावत: यह होता था कि उस जाति के लोग अपने देवता को अन्यान्य जातियो के देवता के रूप मे भी प्रतिष्ठित करना चाहते थे। बैबिलोनियन लोग कहते थे कि 'बाल मेरोडक' महानतम देवता

है और दूसरे सभी देवता उससे निम्न। इसी प्रकार यहूदी लोगों के 'मोलोक याह्वे' अन्य मोलोक देवताओं से श्रेष्ठ बताये जाते थे। और इन प्रश्नों का निर्णय युद्ध द्वारा हुआ करता था। यह संघर्ष यहाँ भी विद्यमान था। प्रतिद्वन्द्वी देवगण अपनी श्रेष्ठता के लिए परस्पर संघर्ष करते थे। परन्तु भारत और समग्र संसार के सौभाग्य से इस अशान्ति और लड़ाई-झगड़े के बीच मे यहाँ एक वाणी उठी जिसने उद्घोष किया "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति"*—'सत्ता एक मात्र है; पण्डित लोग उसी एक का तरह तरह से वर्णन करते है।' शिव विष्णु की अपेक्षा श्रेष्ठ नही है, अथवा विष्णु ही सब कुछ है, शिव कुछ नही—ऐसी भी बात नही हैं। एक सत्ता को ही कोई शिव, कोई विष्णु और कोई और ही किसी नाम से पुकारते हैं। नाम अलग अलग हैं, पर वह एक ही है। इन्ही कुछ बातों से भारत का समग्र इतिहास जाना जा सकता है। समग्र भारत का इतिहास जबरदस्त शक्ति के साथ ओजस्वी भाषा में उसी एक मूल सिद्धान्त की पुनरुक्ति मात्र है। इस देश मे यह सिद्धान्त बार बार दोहराया गया है, यहाँ तक कि अन्त मे वह हमारी जाति के रक्त के साथ मिलकर एक हो गया है और इसकी धमनियों मे प्रवाहित होनेवाले रक्त के प्रत्येक बूंद के साथ मिल गया है—वह इस जीवन का एक अंगस्वरूप हो गया है; जिस उपादान से यह विशाल जातीय शरीर निर्मित हुआ है, उसका वह अंशस्वरूप हो गया है, इस प्रकार यह देश दूसरे के धर्म के प्रति सहिष्णुता के एक अद्भुत लीलाक्षेत्र के रूप मे परिणत हो गया है। इसी कारण इस प्राचीन मातृभूमि में हमे सब धर्मों और सम्प्रदायों को सादर स्थान देने का अधिकार प्राप्त हुआ है।

* ऋग्वेद, १। १६४। ४६

इस भारत मे, आपातत: एक दूसरे के विरोधी होने पर भी ऐसे बहुतसे धर्मसम्प्रदाय है जो बिना किसी विरोध के स्थापित हैं। और इस अत्यन्त विचित्र बात का एकमात्र यही कारण है। सम्भव है कि तुम द्वैतवादी हो और मै अद्वैतवादी। सम्भव है कि तुम अपने को भगवान् का नित्य दास समझते हो और दूसरा यह कहे कि मुझमे और भगवान् मे कोई अन्तर नही है। पर दोनों ही हिन्दू हैं, और सच्चे हिन्दू है। यह कैसे सम्भव हो सका है? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए उसी महावाक्य का स्मरण करो—"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।" मेरे स्वदेशवासी भाइयो, सब से ऊपर यही महान् सत्य हमे ससार को सिखाना होगा। और देशों के शिक्षित लोग भी नाक-मुँह सिकोड़कर हमारे धर्म को मूर्तिपूजक कहते तथा समझते हैं। मैने स्वय उन्हे ऐसा कहते देखा है, पर वे कभी स्थिरचित्त होकर यह नही सोचते कि उनका मस्तिष्क कैसे कुसस्कारो से परिपूर्ण है। और आज भी सर्वत्र ऐसा ही है—ऐसी ही घोर साम्प्रदायिकता है, मन मे इतनी घोर संकीर्णता है। उनका अपना जो कुछ है, मानो वही संसार मे सब से अधिक मूल्यवान् है। धनदेवता की पूजा और अर्थोपासना ही उनकी राय मे सच्चा जीवन-निर्वाह है। उनके पास यत्किंचित् सम्पत्ति है वही मानो सब कुछ है और अन्य कुछ नही। अगर वे मिट्टी से कोई असार वस्तु बना सकते हैं अथवा कोई यन्त्र आविष्कृत कर सकते हैं तो और सब को छोडकर उन्ही की प्रशंसा करनी चाहिए। ससार मे शिक्षा और अध्ययन के इतने प्रचार के बावजूद सारी दुनिया की यही हालत है। इस जगत् मे अब भी असली शिक्षा की आवश्यकता है। और सभ्यता—सच पूछो तो सभ्यता का अभी तक कही आरम्भ भी

नहीं हुआ है। मनुष्यजाति मे अब भी निन्यानबे दशमलव नौ प्रतिशत लोग प्रायः जंगली अवस्था मे ही पड़े हुए हैं। हम इस विषय मे पुस्तको में भले ही पढ़ते हों, हम धार्मिक सहिष्णुता के बारे मे सुनते हों तथा इसी प्रकार की अन्यान्य बाते भी हो, किन्तु मै अपने अनुभव के आधार पर कहता हूँ कि संसार मे ये भाव बहुत अल्प मात्रा मे विद्यमान हैं। निन्यानबे प्रतिशत मनुष्य इन बातों को मन मे स्थान तक नही देते हैं। ससार के जिस किसी देश मे मै गया, वही मैने देखा कि अब भी दूसरे धर्मों के अनुयायिओं पर घोर अत्याचार जारी है; कुछ भी नया सीखने के विरुद्ध आज भी वही पुरानी आपत्तियाँ उठायी जाती हैं। संसार मे दूसरों के धर्म के प्रति सहिष्णुता का यदि थोडा बहुत भाव आज भी कहीं विद्यमान है, यदि धर्मभाव से कुछ भी सहानुभूति कही है, तो वह कार्यतः यही—इसी आर्यभूमि मे है, और कही नही। उसी प्रकार यह सिर्फ यही है कि हम भारत-वासी मुसलमानों के लिए मसजिदे और ईसाइयो के लिए गिरजाघर भी बनवा देते है—और कही नही है। यदि तुम दूसरे देश मे जाकर मुसलमानो से अथवा अन्य कोई धर्मा-वलम्बियों से अपने लिए एक मन्दिर बनवाने को कहो, तो फिर तुम देखोगे कि तुम्हे क्या सहायता मिलती है! सहायता का तो प्रश्न ही क्या, वे तुम्हारे मन्दिर को, और हो सका तो तुमको भी विनष्ट कर देने की कोशिश करेगे। इसी से ससार को अब भी इस महान् शिक्षा की विशेष आवश्यकता है। ससार को भारतवर्ष से दूसरों के धर्म के प्रति सहिष्णुता की ही नही, दूसरो के धर्म के साथ सहानुभूति रखने की भी शिक्षा ग्रहण करनी होगी। इसको 'महिम्नः स्तोत्र' मे भलीभाँति व्यक्त किया

य। है—'हे शिव, जिस प्रकार विभिन्न नदियाँ विभिन्न पर्वतों निकलकर सरल तथा वक्र गति से प्रवाहित होती हुई अन्ततः ुद्र मे ही मिल जाती हैं, उसी प्रकार अपनी विभिन्न प्रवृत्तियों के ार जिन विभिन्न मार्गो को लोग ग्रहण करते है, सरल या वक्र मे विभिन्न लगने पर भी वे सभी तुम तक ही पहुँचाते है।'† ध : लोक भिन्न भिन्न मार्गो से चल रहे हैं, तथापि सब लोग क ही स्थान की ओर जा रहे है। कोई जरा घूम-फिरकर टेढ़ी ह से चलता है और कोई एकदम सीधी राह से; पर अन्ततः सब उस एक प्रभु के पास आएँगे। तुम्हारी शिवभक्ति तभी ूर्ण होगी, जब तुम सर्वत्र शिव को ही देखोगे, केवल शिवलिग ही नहीं। वे ही यथार्थ मे साधु हैं, वे ही सच्चे हरिभक्त है, जो ि को सब जीवो मे, सब भूतो मे देखा करते हैं। यदि तुम शिव- । के यथार्थ भक्त हो, तो तुम्हे उनको सब जीवों मे तथा सब तो मे देखना चाहिए। चाहे जिस नाम से अथवा चाहे जिस मे उनकी उपासना क्यों न की जाए, तुम्हे समझना होगा उन्ही की पूजा की जा रही है। चाहे कोई काबा की ओर ह करके घुटने टेककर उपासना करे या गिरजाघर में व बौद्ध मन्दिर मे ही करे, वह जाने या अनजाने ी परमात्मा की उपासना कर रहा है। चाहे जिसके नाम , चाहे जिस मूर्ति को उद्देश्य बनाकर और चाहे जिस भाव से पुष्पांजलि क्यो न चढायी जाए, वह उन्ही के चरणों मे ु .ते है; क्योकि वे ही सब के एकमात्र प्रभु हैं, सब आत्माओं अन्तरात्मा-स्वरूप हैं। ससार मे किस बात की कमी है,

† रुचीना वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषा
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव। (शिवमहिम्नः स्तोत्र, ७)

इस बात को वे हमारी-तुम्हारी अपेक्षा बहुत अच्छी तरह जानते हैं। सब तरह के भेदभावों का दूर होना असम्भव है। विभिन्नताएँ तो रहेंगी ही; उनके बिना जीवन असम्भव है। विचारों का यह पारस्परिक संघर्ष और विभिन्नता ही ज्ञान के प्रकाश और गति का कारण है। संसार में अनन्त प्रकार के परस्परविरोधी विभिन्न भाव विद्यमान रहेंगे और जरूर रहेंगे, परन्तु इसी के लिए एक दूसरे को घृणा की दृष्टि से देखें अथवा परस्पर लड़ें, यह आवश्यक नहीं।

अतएव हमें उसी मूल सत्य की फिर से शिक्षा ग्रहण करनी होगी, जो केवल यहीं से, हमारी इसी मातृभूमि से प्रचारित हुआ था। फिर एक बार भारत को संसार में इसी मूल तत्त्व का— इसी सत्य का प्रचार करना होगा। ऐसा क्यों है? इसलिए नहीं कि यह सत्य हमारे शास्त्रों में लिखा है, वरन् हमारे राष्ट्रीय साहित्य का प्रत्येक विभाग और हमारा राष्ट्रीय जीवन इससे पूर्णतः ओतप्रोत है। यहीं और केवल यहीं, दैनिक जीवन में इसका अनुष्ठान होता है; और कोई भी व्यक्ति जिसकी आँखें खुली हैं, यह स्वीकार करेगा कि यहाँ के सिवा और कहीं भी इसका अभ्यास नहीं किया जाता। इसी भाव से हमें धर्म की शिक्षा देनी होगी। भारत इससे भी ऊँची शिक्षाएँ देने की क्षमता अवश्य रखता है; पर वे सब केवल पण्डितों के ही योग्य हैं। और विनम्रता की, शान्तभाव की, इस तितिक्षा की, इस धार्मिक सहिष्णुता की तथा इस सहानुभूति की और भ्रातृभाव की महान् शिक्षा प्रत्येक बालक, स्त्री, पुरुष, शिक्षित, अशिक्षित सब जाति और वर्ण वाले सीख सकते हैं। "तुमको अनेक नामों से पुकारा जाता है, पर तुम एक हो।"—"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।"

भारत अब भी जीवित है

सुदीर्घ रजनी अब समाप्त होती हुई जान पड़ती है। ह दुःख का प्राय: अन्त ही प्रतीत होता है। महानिद्रा में निमग्न श। मानो जागृत हो रहा है। इतिहास की बात तो दूर रही, जस सुदूर अतीत के घनान्धकार का भेद करने म किंवदन्तियाँ भी ˚ हैं, वही से एक आवाज हमारे पास आ रही है। ज्ञान, और कर्म के अनन्त हिमालय-स्वरूप हमारी मातृभूमि भारत ˆ हर एक चोटी पर प्रतिध्वनित होकर यह आवाज मृदु, दृढ़ ˎ अभ्रान्त स्वर मे हमारे पास तक आ रही है। जितना समय ˆ ˎ है, उतनी ही वह और भी स्पष्ट तथा गम्भीर होती जाती ˎ और देखो, वह निद्रित भारत अब जागने लगा है। मानो २ ˎ ' के प्राणप्रद वायु-स्पर्श से मृतदेह के शिथिलप्राय अस्थि- ।।स तक मे प्राणसचार हो रहा है। जड़ता धीरे धीरे दूर हो ˎह है। जो अन्धे है, वे ही देख नही सकते और जो विकृतबुद्धि , वे ही समझ नही सकते कि हमारी मातृभूमि अपनी गम्भीर नद्र। से अब जाग रही है। अब कोई उसे रोक नहीं सकता। ˏ यह फिर सो भी नही सकती। कोई बाह्य शक्ति इस समय से दबा नही सकती क्योकि यह असाधारण शक्ति का देश अब ।क ˎ खड़ा हो रहा है।

महाराज एव रामनाद-निवासी सज्जनो! आपने जिस ˏ दकता। तथा कृपा के साथ मेरा अभिनन्दन किया है, उसके ˎ ९ आप मेरा आन्तरिक धन्यवाद स्वीकार कीजिए। मैं अनुभव

२५ जनवरी १८९७ को रामनाद के राजा द्वारा समर्पित मानपत्र के त्तर में दिया गया सार्वजनिक भाषण।

करता हूँ कि आप लोग मेरे प्रति सौहार्द तथा कृपा-भाव रखते हैं; क्योंकि जबानी बातों की अपेक्षा एक हृदय दूसरे हृदय के सामने अपने भाव ज्यादा अच्छी तरह प्रकट करता है। आत्मा मौन परन्तु अभ्रान्त भाषा मे दूसरी आत्मा के साथ बात करती है—इसी-लिए मै आप लोगों के भाव को अपने अन्तस्तल मे अनुभव करता हूँ। रामनाद के महाराज ! अपने धर्म और मातृभूमि के लिए पाश्चात्य देशो मे इस नगण्य व्यक्ति के द्वारा यदि कोई कार्य हुआ है, अपने घर मे ही अज्ञात और गुप्तभाव से रक्षित अमूल्य रत्नसमूह के प्रति स्वदेशवासियों के हृदय आकृष्ट करने के लिए यदि कुछ प्रयत्न हुआ है, अज्ञानरूपी अन्धेपन के कारण प्यासे मरने अथवा दूसरी जगह के गन्दे गड्ढे का पानी पीने की अपेक्षा यदि अपने घर के पास निरन्तर बहनेवाले झरने के निर्मल जल को पीने के लिए वे बुलाये जा रहे हैं, हमारे स्वदेशवासियो को यह समझाने के लिए कि भारतवर्ष का प्राण धर्म ही है, उसके जाने पर राजनीतिक उन्नति, समाज-सुधार या कुबेर का ऐश्वर्य भी कुछ नही कर सकता, यदि उनको कर्मण्य बनाने का कुछ उद्योग हुआ है, मेरे द्वारा इस दिशा मे जो कुछ भी कार्य हुआ है उसके लिए भारत अथवा अन्य हर देश जिसमें कुछ भी कार्य सम्पन्न हुआ है, आपके प्रति ऋणी है; क्योंकि आपने ही पहले मेरे हृदय मे ये भाव भरे और आप ही मुझे कार्य करने के लिए बार बार उत्तेजित करते रहे हैं। आपने ही मानो अन्तर्दृष्टि के बल से भविष्यत् जानकर निरन्तर मेरी सहायता की है, कभी भी मुझे उत्साहित करने से आप विमुख नही हुए। इसलिए यह बहुत ही ठीक हुआ कि आप मेरी सफलता पर आनन्दित होनेवाले प्रथम व्यक्ति हैं। एवं भारत लौटकर मै पहले आपके ही राज्य मे उतरा।

उपस्थित सज्जनो ! आपके महाराज ने पहले ही कहा है कि हमे बडे बड़े कार्य करने होगे, अद्भुत शक्ति का विकास दिखाना होगा, दूसरे राष्ट्रो को अनेक बातें सिखानी होंगी । यह देश दर्शन, धर्म, आचार-शास्त्र, मधुरता, कोमलता और प्रेम की मातृभूमि है । ये सब चीजे अब भी भारत मे विद्यमान है । मुझे दुनिया के सम्बन्ध मे जो जानकारी है, उसके बल पर मैं दृढतापूर्वक कह सकता हूँ कि इन बातों मे पृथ्वी के अन्य प्रदेशों की अपेक्षा भारत अब भी श्रेष्ठ है। इस साधारण घटना को ही लीजिए : गत चार-पॉच वर्षो मे संसार मे अनेक बड़े बड़े राजनीतिक परिवर्तन हुए हैं । पाश्चात्य देशो मे सभी जगह बड़े बडे संगठनों ने विभिन्न देशों मे प्रचलित रीति-रिवाजों को एकदम दबा देने की चेष्टा की और वे बहुत कुछ सफल भी हुए है । हमारे देशवासियो से पूछिए, क्या उन लोगो ने इन बातों के सम्बन्ध मे कुछ सुना है ? उन्होने एक शब्द भी नहीं सुना। किन्तु शिकागो मे एक धर्म-महासभा हुई थी, भारतवर्ष से उस महासभा मे एक संन्यासी भेजा गया था, उसका आदर के साथ स्वागत हुआ, उसी समय से वह पाश्चात्य देशों मे कार्य कर रहा है—यह बात यहॉ का एक अत्यन्त निर्धन भिखारी भी जानता है । लोग कहते हैं कि हमारे देश का जनसमुदाय बडी स्थूलबुद्धि का है, वह किसी प्रकार की शिक्षा नहीं चाहता और संसार का किसी प्रकार का समाचार नही जानता चाहता । पहले मूर्खतावश मेरा भी झुकाव ऐसी ही धारणा की ओर था। अब मेरी धारणा है कि काल्पनिक गवेषणाओं एवं द्रुतगति से सारे भूमण्डल की परिक्रमा कर डालनेवालों तथा जल्दबाजी मे पर्यवेक्षण करनेवालो की लेखनी द्वारा लिखित पुस्तकों के पाठ की

अपेक्षा स्वयं अनुभव प्राप्त करने से कही अधिक शिक्षा मिलती है। अनुभव के द्वारा यह शिक्षा मुझे मिली है कि हमारे देश का जनसमुदाय निर्बोध और मन्द नही है, वह संसार का समाचार जानने के लिए पृथ्वी के अन्य किसी स्थान के निवासी से कम उत्सुक और व्याकुल भी नही है। तथापि प्रत्येक जाति के जीवन का कोई न कोई उद्देश्य है। प्रत्येक जाति अपनी निजी विशेषताएँ और व्यक्तितत्व लेकर जन्म ग्रहण करती है। सब जातियाँ मिलकर एक सुमधुर एकतान-संगीत की सृष्टि करती हैं, किन्तु प्रत्येक जाति मानो राष्ट्रों के स्वर-सामंजस्य मे एक एक पृथक् स्वर का प्रतिनिधित्व करती है। वही उसकी जीवनशक्ति है, वही उसके जातीय जीवन का मेरुदण्ड या मूल है। हमारी इस पवित्र मातृभूमि का मेरुदण्ड, मूल या जीवनकेन्द्र एकमात्र धर्म ही है। दूसरे लोग राजनीति को, व्यापार के बल पर अगाध धनराशि का उपार्जन करने के गौरव को, वाणिज्य-नीति की शक्ति और उसके प्रचार को, बाह्य स्वाधीनता-प्राप्ति के अपूर्व सुख को भले ही महत्त्व दे, किन्तु हिन्दू अपने मन मे न तो इनके महत्त्व को समझते है और न समझना चाहते ही हैं। हिन्दुओं के साथ धर्म, ईश्वर, आत्मा, अनन्त और मुक्ति के सम्बन्ध में बाते कीजिए; मै आप लोगों को विश्वास दिलाता हूँ, अन्यान्य देशो के दार्शनिक कहे जानेवाले व्यक्तियों की अपेक्षा यहाँ का एक साधारण कृषक भी इन विषयों में अधिक जानकारी रखता है। सज्जनो, मैंने आप लोगों से कहा है कि हमारे पास अभी भी संसार को सिखाने के लिए कुछ है। इसीलिए सैकड़ो वर्षो के अत्याचार और लगभग हजारों वर्षो के वैदेशिक शासन और अत्याचारों के बावजद यह जाति जीवित है। इस जाति के इस समय भी

जीवित रहने का मुख्य प्रयोजन यह है कि इसने अब भी ईश्वर और धर्म तथा अध्यात्म-रूप रत्नकोश का परित्याग नही किया है।

हमारी इस मातृभूमि मे इस समय भी धर्म और अध्यात्म-विद्या का जो स्रोत बहता है, उसकी बाढ़ समस्त जगत् को आप्लावित कर, राजनीतिक उच्चाभिलाषाओं एवं नवीन सामाजिक संगठनों की चेष्टाओं मे प्राय: समाप्तप्राय, अर्धमृत तथा पतनोन्मुखी पाश्चात्य और दूसरी जातियों मे नवजीवन का संचार करेगी। नाना प्रकार के मतमतान्तरों के विभिन्न सुरों से भारत-गगन गूँज रहा है। यह बात सच है कि इन सुरों मे कुछ ताल मे हैं और कुछ बेताल, किन्तु यह स्पष्ट पहचान मे आ रहा है कि उन सब मे एक प्रधान सुर मानो भैरव-राग के सप्तम स्वर मे उठकर अन्य दूसरे सुरों को कर्णगोचर नही होने दे रहा है और वह प्रधान सुर है—त्याग। "विषयान् विषवत् त्यज"—भारतीय सभी शास्त्रो की यही एक बात है, यही सभी शास्त्रों का मूलमन्त्र है। दुनिया दो दिन का तमाशा है। जीवन तो और भी क्षणिक है। इसके परे, इस मिथ्या संसार के परे उस अनन्त अपार का राज्य है, आइए, उसी का पता लगाएँ। यह देश महावीर और प्रकाण्ड मेधा तथा बुद्धि वाले मनीषियों से उद्भासित है, जो इस तथाकथित अनन्त जगत् को भी एक गड़हिया मात्र समझते हैं। और वे क्रमश. अनन्त जगत् को भी छोड़कर दूर—अति दूर चले जाते हैं। काल, अनन्त काल भी उनके लिए कोई चीज नही है, वे उसके भी पार चले जाते हैं। उनके लिए देश की भी कोई सत्ता नही है, वे उसके भी पार जाना चाहते हैं। और दृश्य जगत् के अतीत जाना ही धर्म का गूढ़तम रहस्य है। भौतिक प्रकृति का इस प्रकार अतिक्रमण करने की चेष्टा,

जिस प्रकार और चाहे जितना नुकसान सहकर क्यों न हो, किसी प्रकार प्रकृति के मुँह का घूँघट हटाकर एक वार उस देशकालातीत सत्ता के दर्शन का यत्न करना—यही हमारी जाति का स्वाभाविक गुण है। यही हमारा आदर्श है, परन्तु निश्चय ही किसी देश के सभी लोग पूर्ण त्यागी तो नहीं हो सकते। यदि आप लोग उसको उत्साहित करना चाहते हैं, तो उसके लिए यह एक निश्चित उपाय है। आपकी राजनीति, समाज-सुधार, धनसंचय के उपाय, वाणिज्य-नीति आदि की वातें वत्तख की पीठ से जल के समान उनके कानों से बाहर निकल जाएँगी। इसलिए आप लोगों को जगत् को यह धार्मिक शिक्षा देनी ही होगी। अव प्रश्न यह है कि हमे भी संसार से कुछ सीखना है या नही? शायद दूसरी जातियों से हमें भौतिक-विज्ञान सीखना पड़े। किस प्रकार दल-संगठन और उसका परिचालन हो, विभिन्न शक्तियो को नियमानुसार काम में लगाकर किस प्रकार थोड़े यत्न से अधिक लाभ हो, इत्यादि वातें अवश्य ही हमे दूसरों से सीखनी होंगी। पाश्चात्यों से हमे शायद ये सव वातें कुछ कुछ सीखनी ही होंगी। किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि हमारा उद्देश्य त्याग ही है। यदि कोई भोग और ऐहिक सुख को ही परम पुरुषार्थ मानकर भारतवर्ष मे उनका प्रचार करना चाहे, यदि कोई जड़ जगत् को ही भारतवासियों का ईश्वर कहने की धृष्टता करे, तो वह मिथ्यावादी है। इस पवित्र भारतभूमि मे उसके लिए कोई स्थान नही है, भारतवासी उसकी वात भी नही सुनेंगे। पाश्चात्य सभ्यता मे चाहे कितनी ही चमक-दमक क्यों न हो, उसमें कितनी ही शोभा और शक्ति की चाहे कितनी ही अद्भुत अभिव्यक्ति क्यों न हो, मैं इस सभा के वीच खड़ा होकर उनसे साफ साफ कह देता हूँ कि यह सव

मिथ्या है, भ्रान्ति--भ्रान्ति मात्र। एकमात्र ईश्वर ही सत्य है, एकमात्र आत्मा ही सत्य है और एकमात्र धर्म ही सत्य है। इसी सत्य को पकडे रखिए।

तो भी हमारे जो भाई उच्चतम सत्य के अधिकारी अभी नही हुए हैं, उनके लिए इस प्रकार का भौतिक विज्ञान शायद कल्याणकारी हो सकता है, पर, उसे अपने लिए कार्योपयोगी बनाकर लेना होगा। सभी देशो और समाजों मे एक भ्रम फैला हुआ है। विशेष दुःख की बात तो यह है कि भारतवर्ष मे जहाँ पहले कभी नही था, थोड़े दिन हुए इस भ्रम ने प्रवेश किया है। वह भ्रम यह है कि अधिकारी का विचार न कर सभी के लिए समान व्यवस्था देना। सच बात तो यह है कि सभी के लिए एक मार्ग नही हो सकता। मेरी पद्धति आवश्यक नहीं है कि वह आपकी भी हो। आप सभी लोग जानते हैं कि संन्यास ही हिन्दू जीवन का आदर्श है। सभी हिन्दू शास्त्र सभी को त्यागी होने का आदेश देते है। जो जीवन की परवर्ती (वानप्रस्थ) अवस्था मे त्याग नहीं करता, वह हिन्दू नही है और न उसे अपने को हिन्दू कहने का कोई अधिकार ही है। संसार के सभी भोगों का आनन्द लेकर प्रत्येक हिन्दू को अन्त मे उनका त्याग करना ही होगा। यही हिन्दुओं का आदर्श है। हम जानते हैं कि भोग के द्वारा अन्तस्तल मे जिस समय यह धारणा जम जाएगी कि संसार असार है, उसी समय उसका त्याग करना होगा। जब आप भलीभाँति परीक्षा करके जानेगे कि जड़ जगत् सारविहीन केवल राख है, तो फिर आप उसे त्याग देने की ही चेष्टा करेगे। मन इन्द्रियों की ओर मानो चक्रवत् अग्रसर हो रहा है, उसे फिर पीछे लौटाना होगा। प्रवृत्ति-मार्ग का त्याग कर उसे फिर निवृत्ति-

मार्ग का आश्रय ग्रहण करना होगा, यही हिन्दुओं का आदर्श है। किन्तु कुछ भोग भोगे बिना इस आदर्श तक मनुष्य नही पहुँच सकता। बच्चों को त्याग की शिक्षा नही दी जा सकती। वह पैदा होते ही सुखस्वप्न देखने लगता है। उनका जीवन इन्द्रिय-सुखों के भोग मे है, उसका जीवन कुछ इन्द्रियसुखों की समष्टि मात्र है। प्रत्येक समाज मे वालकवत् अज्ञानी लोग है। संसार की असारता समझने के लिए उन्हें कुछ भोग भोगना पड़ेगा, तभी वे वैराग्य धारण करने मे समर्थ होंगे। हमारे शास्त्रों में इन लोगों के लिए यथेष्ट व्यवस्था है। दु.ख का विषय है कि परवर्ती काल में समाज के प्रत्येक मनुष्य को सन्यासी के नियमो मे आवद्ध करने की चेष्टा की गयी—यह एक भारी भूल हुई। भारत मे जो दुःख और दरिद्रता दिखाई पडती है, उनमे से बहुतो का कारण यही भूल है। गरीव लोगों के जीवन को इतने कड़े धार्मिक एवं नैतिक बन्धनों मे जकड़ दिया गया है जिनसे उनका कोई लाभ नही है। उनके कामों मे हस्तक्षेप न कीजिए। उन्हे भी संसार का थोड़ा आनन्द लेने दीजिए। आप देखेग कि वे क्रमशः उन्नत होते जाते हैं और विना किसी विशेष प्रयत्न के उनके हृदय मे आप ही आप त्याग का उद्रक होगा।

सज्जनो, पाश्चात्य जातियों से इस दिशा मे हम थोडा वहुत यह सीख सकते हैं, किन्तु यह शिक्षा ग्रहण करते समय हमे वहुत सावधान रहना होगा। मुझे वड़े दुःख से कहना पड़ता है कि आजकल हम पाश्चात्य भावनाओं से अनुप्राणित जितने लोगो के उदाहरण पाते हैं, वे अधिकतर असफलता के हैं। इस समय भारत मे हमारे मार्ग मे दो वडी रुकावटे हैं,—एक ओर हमारा प्राचीन हिन्दू समाज और दूसरी ओर अर्वाचीन यूरोपीय सभ्यता। इन

दोनों मे यदि कोई मुझसे एक को पसन्द करने के लिए कहे, तो मैं प्राचीन हिन्दू समाज को ही पसन्द करूँगा, क्योकि, अज्ञ होने पर भी, अपक्व होने पर भी, कट्टर हिन्दुओ के हृदय मे एक विश्वास है, एक बल है--- जिससे वह अपने पैरो पर खडा हो सकता है। किन्तु विलायती रग में रँगा व्यक्ति सर्वथा मेरुदण्डविहीन होता है, वह इधर-उधर के विभिन्न स्रोतो से वैसे ही एकत्र किये हुए अपरिपक्व, विश्रृंखल, बेमेल भावो की असन्तुलित राशि मात्र है। वह अपने पैरों पर खडा नही हो सकता, उसका सिर हमेशा चक्कर खाया करता है। वह जो कुछ करता है, क्या आप उसका कारण जानना चाहते है? अग्रेजो से थोडी शाबाशी पा जाना ही उसके सब कार्यो का मूल प्रेरक है। वह जो समाज-सुधार करने के लिए अग्रसर होता है, हमारी कितनी ही सामाजिक प्रथाओ के विरुद्ध तीव्र आक्रमण करता है, इसका मुख्य कारण यह है कि इसके लिए उन्हें साहबो से वाहवाही मिलती है। हमारी कितनी ही प्रथाएँ इसीलिए दोषपूर्ण है कि साहब लोग उन्हे दोषपूर्ण कहते है! मुझे ऐसे विचार पसन्द नही है। अपने बल पर खडे रहिए---चाहे जीवित रहिए या मरिए। यदि जगत् मे कोई पाप है, तो वह है दुर्बलता। दुर्बलता ही मृत्यु है, दुर्बलता ही पाप है, इसलिए सब प्रकार से दुर्बलता का त्याग कीजिए। ये असन्तुलित प्राणी अभी तक निश्चित व्यक्तित्व नहीं ग्रहण कर सके हैं, और हम उनको क्या कहे---स्त्री, पुरुष या पशु! प्राचीन पन्थावलम्बी सभी लोग कट्टर होने पर भी मनुष्य थे---उन सभी लोगों मे एक दृढता थी। अब भी इन लोगों में कुछ आदर्श पुरुषो के उदाहरण है। और मै आपके महाराज को इस कथन के उदाहरण रूप मे प्रस्तुत करना चाहता हूँ। समग्र

भारतवर्ष मे आपके जैसा निष्ठावान् हिन्दू नही दिखाई पड़ सकता। आप प्राच्य और पाश्चात्य सभी विषयों मे अच्छी जानकारी रखते हैं। इनकी जोड़ का कोई दूसरा राजा भारतवर्ष मे नही मिल सकता। प्राच्य और पाश्चात्य सभी विषयो को छानकर जो उपादेय है, उसे ही आप ग्रहण करते है।—'नीच व्यक्ति से भी श्रद्धापूर्वक उत्तम विद्या ग्रहण करनी चाहिए, अन्त्यज से भी मुक्तिमार्ग सीखना चाहिए, निम्नतम जाति के नीच कुल की भी उत्तम कन्यारत्न को विवाह मे ग्रहण करना चाहिए।'*

हमारे महान् अप्रतिम स्मृतिकार मनु ने ऐसा ही नियम निर्धारित किया है। पहले अपने पैरों पर खड़े हो जाइए, फिर सब राष्ट्रों से, जो कुछ अपना बनाकर ले सकें, ले लीजिए। जो कुछ आपके काम का है, उसे प्रत्येक राष्ट्र से लीजिए; किन्तु स्मरण रखिएगा कि हिन्दू होने के नाते हमको दूसरी सारी बातों को अपने जातीय जीवन की मूल भावनाओं के अधीन रखना होगा। प्रत्येक व्यक्ति ने किसी न किसी कार्य-साधन के विशेष उद्देश्य से जन्म लिया है; उसके जीवन की वर्तमान गति अनेक पूर्व जन्मों के फलस्वरूप उसे प्राप्त हुई है। आप लोगों में से प्रत्येक व्यक्ति महान् उत्तराधिकार लेकर जन्मा है, जो आपके महिमामय राष्ट्र के अनन्त अतीत जीवन का सर्वस्व है। सावधान, आपके लाखों पुरखे आपके प्रत्येक कार्य को बड़े ध्यान से देख रहे हैं। वह उद्देश्य क्या है, जिसके लिए प्रत्येक हिन्दू बालक ने जन्म लिया है? क्या आपने महर्षि मनु के द्वारा ब्राह्मणो के जन्मोद्देश्य के विषय मे की हुई गौरवपूर्ण घोषणा नही पढी है?—

---

* श्रद्दधानो शुभा विद्यामाददीतावरादपि।
अन्त्यादपि परो धर्म. स्त्रीरत्न दुष्कुलादपि॥ (मनुस्मृति २।२३८)

"ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते ।
ईश्वरः सर्वभूताना धर्मकोषस्य गुप्तये ।।"+

—'धर्मकोषस्य गुप्तये'—धर्मरूपी खजाने की रक्षा के लिए ब्राह्मणों का जन्म होता है। मुझे कहना यह है कि इसे पवित्र मातृभूमि पर ब्राह्मण का ही नही, प्रत्युत् जिस किसी स्त्री या पुरुष का जन्म होता है, उसके जन्म लेने का कारण यही 'धर्मकोषस्य गुप्तये' है। दूसरे सभी विषयों को हमारे जीवन के इस मूल उद्देश्य के अधीन करना होगा। संगीत मे भी स्वर-सामंजस्य का यही नियम है। उसी के अनुगत होने से संगीत मे ठीक लय आती है। इस स्थान पर भी वही करना होगा। ऐसा भी राष्ट्र हो सकता है, जिसका मूलमन्त्र राजनीतिक प्रधानता हो, धर्म और दूसरे सभी विषय उसके जीवन के प्रमुख मूलमन्त्र के नीचे निश्चय ही दब जाएँगे, किन्तु यहाँ एक दूसरा राष्ट्र है, जिसका प्रधान जीवनोद्देश्य धर्म और वैराग्य है। हिन्दुओं का एकमात्र मूलमन्त्र यह है कि जगत् क्षणस्थायी, भ्रममात्र और मिथ्या है; धर्म के अतिरिक्त ज्ञान, विज्ञान, भोग, ऐश्वर्य, नाम, यश, धन, दौलत जो कुछ भी हो, सभी को उसी एक सिद्धान्त के अन्तर्गत करना होगा। एक सच्चे हिन्दू के चरित्र का रहस्य इस बात मे निहित है कि पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान, पद-अधिकार तथा यश को केवल एक सिद्धान्त के, जो प्रत्येक हिन्दू बालक मे जन्मजात है—आध्यात्मिकता तथा जाति की पवित्रता—अधीन रखता है। इसलिए पूर्वोक्त दो प्रकार के आदमियो मे एक तो ऐसे है, जिनमे हिन्दू जाति के जीवन की मूल शक्ति 'आध्यात्मिकता' मौजूद है। दूसरे पाश्चात्य सभ्यता के कितने ही

+ मनुस्मृति १। ९९

नकली हीरा-जवाहर लेकर बैठे हैं, पर उनके भीतर जीवनप्रद शक्तिसंचार करनेवाली वह आध्यात्मिकता नहीं है। दोनों की तुलना मे मुझे विश्वास है कि उपस्थित सभी सज्जन एकमत होकर प्रथम के पक्षपाती होंगे; क्योंकि उसी से उन्नति की कुछ आशा की जा सकती है। जातीय मूलमन्त्र उसके हृदय मे जाग रहा है, वही उसका आधार है। अस्तु, उसके बचने की आशा है, और शेष की मृत्यु अवश्यम्भावी है। जिस प्रकार यदि किसी आदमी के मर्मस्थान मे कोई आघात न लगे, अर्थात् यदि उसका मर्मस्थान दुरुस्त रहे, तो दूसरे अंगों मे कितनी ही चोट लगने पर भी उसे घातक न कहेंगे, उससे वह मरेगा नही, इसी प्रकार जब तक हमारी जाति का मर्मस्थान सुरक्षित है, उसके विनाश की कोई आशंका नही हो सकती। अतः भलीभाँति स्मरण रखिए, यदि आप धर्म को छोड़कर पाश्चात्य भौतिकवादी सभ्यता के पीछे दौड़िएगा, तो आपका तीन ही पीढियों मे अस्तित्व-लोप निश्चित है। क्योंकि इस प्रकार जाति का मेरुदण्ड ही टूट जाएगा —जिस नींव के ऊपर यह जातीय विशाल भवन खड़ा है, वही नष्ट हो जाएगी; फिर तो परिणाम सर्वनाश होगा ही।

अतएव, हे भाइयो, हमारी जातीय उन्नति का यही मार्ग है कि हम लोगों ने अपने पुरखों से उत्तराधिकार-स्वरूप जो अमूल्य सम्पत्ति पायी है, उसे प्राणपण से सुरक्षित रखना ही अपना प्रथम और प्रधान कर्तव्य समझें। आपने क्या ऐसे देश का नाम सुना है, जिसके बड़े बड़े राजा अपने को प्राचीन राजाओं अथवा पुरातन दुर्गनिवासी, पथिकों का सर्वस्व लूट लेनेवाले, डाकू 'बैरनों' (Barons) के वंशधर न बताकर अरण्यवासी अर्धनग्न तपस्वियों की सन्तान कहने मे ही अधिक गौरव समझते हैं?

यदि आपने न सुना हो तो सुनिए—हमारी मातृभूमि ही वह देश है। दूसरे देशों में बडे बड़े धर्माचार्य अपने को किसी राजा का वंशधर कहने की बडी चेष्टा करते है, और भारतवर्ष मे बडे बड़े राजा अपने को किसी प्राचीन ऋषि की सन्तान प्रमाणित करने की चेष्टा करते है। इसी से मै कहता हूँ कि आप लोग अध्यात्म मे विश्वास कीजिए या न कीजिए, यदि आप राष्ट्रीय जीवन को दुरुस्त रखना चाहते है तो आपको आध्यात्मिकता की रक्षा के लिए सचेष्ट होना होगा। एक हाथ से धर्म को मजबूती से पकड़कर दूसरे हाथ को बढ़ा अन्य जातियों से जो कुछ सीखना हो, सीख लीजिए; किन्तु स्मरण रखिएगा कि जो कुछ आप सीखे उसको मूल आदर्श का अनुगामी ही रखना होगा। तभी अपूर्व महिमा से मण्डित भावी भारत का निर्माण होगा। मेरा दृढ़ विश्वास है कि शीघ्र ही वह शुभ दिन आ रहा है, और भारतवर्ष किसी भी काल मे जिस श्रेष्ठता का अधिकारी नहीं था, शीघ्र ही उस श्रेष्ठता का अधिकारी होगा। प्राचीन ऋषियों की अपेक्षा श्रेष्ठतर ऋषियों का आविर्भाव होगा और आपके पूर्वज अपने वंशधरो की इस अभूतपूर्व उन्नति से बड़े सन्तुष्ट होगे। इतना ही नही, मै निश्चित रूप से कहता हूँ, वे परलोक मे अपने अपने स्थानो से अपने वंशजों को इस प्रकार महिमान्वित और महत्त्वशाली देखकर अपने को महान् गौरवान्वित समझेगे!

हे भाइयो, हम सभी लोगों को इस समय कठिन परिश्रम करना होगा। अब सोने का समय नही है। हमारे कार्यो पर भारत का भविष्य निर्भर है। भारतमाता तत्परता से प्रतीक्षा कर रही है। वह केवल सो रही थी। उसे जगाइए, और पहले की अपेक्षा और भी गौरवमण्डित और शक्तिशाली बनाकर

भक्तिभाव से उसे उसके चिरन्तन सिहासन पर प्रतिष्ठित कर दीजिए। ईश्वरीय तत्त्व का ऐसा पूर्ण विकास हमारी मातृभूमि के अतिरिक्त किसी अन्य देश मे नही हुआ था, क्योकि ईश्वर-विषयक इस भाव का अन्यत्र कभी अस्तित्व नही था। शायद आप लोगों को मेरी इस बात पर आश्चर्य होता हो, किन्तु किसी दूसरे शास्त्र से हमारे ईश्वरतत्त्व के समान भाव जरा दिखाएँ तो सही! अन्यान्य जातियों के एक एक जातीय ईश्वर या देवता थे, जैसे यहूदियों के ईश्वर, अरबवालों के ईश्वर इत्यादि, और ये ईश्वर दूसरी जातियों के ईश्वर के साथ लड़ाई-झगड़ा किया करते थे। किन्तु यह तत्त्व कि ईश्वर कल्याणकारी और परम दयालु है, हमारा पिता, माता, मित्र, प्राणों के प्राण और आत्मा की अन्तरात्मा है, केवल भारत ही जानता रहा है। अन्त मे, जो शैवो के लिए शिव, वैष्णवो के लिए विष्णु, कर्मियों के लिए कर्म, वौद्धों के लिए बुद्ध, जैनो के लिए जिन, ईसाइयों और यहूदियों के लिए जिहोवा, मुसलमानों के लिए अल्ला और वेदान्तियो के लिए ब्रह्म हैं—जो सव धर्मो, सब सम्प्रदायों के प्रभु है—जिनकी सम्पूर्ण महिमा केवल भारत ही जानता था, वे सर्वव्यापी, दयामय प्रभु हम लोगों को आशीर्वाद दे, हमारी सहायता करें, हमे शक्ति दे, जिससे हम अपने उद्देश्य को कार्यरूप मे परिणत कर सके।

हम लोगों ने जिसका श्रवण किया, वह खाये हुए अन्न के समान हमारी पुष्टि करे, उसके द्वारा हम लोगों मे इस प्रकार का वीर्य उत्पन्न हो कि हम दूसरो की सहायता कर सके, हम—आचार्य और शिष्य—कभी भी आपस मे विद्वेप न करे।

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विपावहै॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः! हरिः ॐ॥

वेदान्त का उद्देश्य

"स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्"—अर्थात् धर्म का थोडा भी कार्य करने पर परिणाम बहुत बडा होता है। श्रीमद्-भगवद्गीता की उपर्युक्त उक्ति के प्रमाण मे यदि उदाहरण की आवश्यकता हो, तो अपने इस सामान्य जीवन मे मै इसकी सत्यता का नित्यप्रति अनुभव करता हूँ। मैने जो कुछ किया है, वह बहुत ही तुच्छ और सामान्य है, तथापि कोलम्बो से लेकर इस नगर तक आने मे अपने प्रति मैने लोगो मे जो ममता तथा आत्मीयतापूर्ण स्वागत की भावना देखी है, वह अप्रत्याशित है। पर साथ ही साथ मै यह भी कहूँगा कि यह सवर्धना हमारी जाति के अतीत संस्कार और भावो के अनुरूप ही है, क्योकि हम वही हिन्दू है, जिनकी जीवन-शक्ति, जिनके जीवन का मूलमन्त्र, अर्थात् जिनकी आत्मा ही धर्ममय है। प्राच्य और पाश्चात्य राष्ट्रो मे घूमकर मुझे दुनिया की कुछ अभिज्ञता प्राप्त हुई और मैने सर्वत्र सब जातियों का कोई न कोई ऐसा आदर्श देखा है, जिसे उस जाति का मेरुदण्ड कह सकते है। कही राजनीति, कही समाज-सस्कृति, कहीं बौद्धिक उन्नति, और इसी प्रकार कुछ न कुछ प्रत्येक के मेरुदण्ड का काम करता है। पर हमारी मातृभूमि भारतवर्ष का मेरुदण्ड धर्म—केवल धर्म ही है। धर्म ही के आधार पर, उसी की नीव पर, हमारी जाति के जीवन का प्रासाद खडा है। तुममे से कुछ लोगो को शायद मेरी वह बात याद होगी, जो मैने मद्रासवासियो के द्वारा अमेरिका भेजे गये स्नेहपूर्ण मानपत्र के उत्तर मे कही थी। मैने इस तथ्य

---

* कुम्भकोणम् मे दिया गया भाषण

का निर्देश किया था कि भारतवर्ष के एक किसान को जितनी धार्मिक शिक्षा प्राप्त है, उतनी पाश्चात्य देशों के पढ़े-लिखे सभ्य कहलानेवाले नागरिकों को भी प्राप्त नही है, और आज मै अपनी उस बात की सत्यता का प्रत्यक्ष अनुभव कर रहा हूँ। एक समय था, जब कि भारत की जनता की संसार के समाचारो से अनभिज्ञता और दुनिया की जानकारी हासिल करने की चाह के अभाव से मुझे कष्ट होता था, परन्तु आज मै उसका कारण समझ रहा हूँ। भारतवासियों की अभिरुचि जिस ओर है, उस विषय की अभिज्ञता प्राप्त करने के लिए वे संसार के अन्यान्य देशों के, जहाँ मै गया हूँ, साधारण लोगों की अपेक्षा बहुत अधिक उत्सुक रहते हैं। अपने यहाँ के किसानों से यूरोप के गुरुतर राजनीतिक परिवर्तनों के विषय मे, सामाजिक उथल-पुथल के बारे मे पूछो तो वे उस विषय मे कुछ भी नही बता सकेंगे, और न उन बातों को जानने की उनमें उत्कण्ठा ही है। परन्तु भारतवासियो की कौन कहे, सीलोन के किसान भी—भारत से जिनका सम्बन्ध बहुत कुछ विच्छिन्न है और भारत से जिनका बहुत कम लगाव है—इस बात को जानते हैं कि अमेरिका मे एक धर्म-महासभा हुई थी, जिसमे भारतवर्ष से कोई संन्यासी गया था और उसने वहाँ कुछ सफलता भी पायी थी।

इसी से जाना जाता है कि जिस विषय की ओर उनकी अभिरुचि है, उस विषय की जानकारी रखने के लिए वे संसार की अन्यान्य जातियों के समान ही उत्सुक रहते हैं। और वह विषय है धर्म, जो भारतवासियों की मूल अभिरुचि का एकमात्र विषय है। मै अभी इस विषय पर विचार नही कर रहा हूँ कि किसी जाति की जीवन-शक्ति का राजनीतिक आदर्श पर

प्रतिष्ठित होना अच्छा है अथवा धार्मिक आदर्श पर; परन्तु, अच्छा हो या बुरा, हमारी जाति की जीवन-शक्ति धर्म मे ही केन्द्रीभूत है। तुम इसे बदल नही सकते, न तो इसे विनष्ट कर सकते हो, और न इसे हटाकर इसकी जगह दूसरी किसी चीज को ही रख सकते हो। तुम किसी विशाल उगते हुए वृक्ष को एक भूमि से दूसरी पर स्थानान्तरित नही कर सकते और न वह शीघ्र ही वहाँ जड़े पकड़ सकता है। भला हो या बुरा, भारत मे हजारों वर्ष से धार्मिक आदर्श की धारा प्रवाहित हो रही है। भला हो या बुरा, भारत का वायुमण्डल इसी धार्मिक आदर्श से बीसियो सदियों तक पूर्ण रहकर जगमगाता रहा है। भला हो या बुरा, हम इसी धार्मिक आदर्श के भीतर पैदा हुए और पले हैं—यहाँ तक कि अब वह हमारे रक्त मे ही मिल गया है; हमारे रोम-रोम मे वही धार्मिक आदर्श रम रहा है, वह हमारे शरीर का अंश और हमारी जीवन-शक्ति बन गया है। क्या तुम उस शक्ति की प्रतिक्रिया जागृत कराये बिना, उस वेगवती नदी के तल को, जिसे उसने हजारों वर्ष मे अपने लिए तैयार किया है, भरे बिना ही धर्म का त्याग कर सकते हो ? क्या तुम चाहते हो कि गंगा की धारा फिर बर्फ से ढके हुए हिमालय को लौट जाए और फिर वहाँ से नवीन धारा बनकर प्रवाहित हो ? यदि ऐसा होना सम्भव भी हो, तो भी, यह कदापि सम्भव नहीं हो सकता कि यह देश अपने धर्ममय जीवन के विशिष्ट मार्ग को छोड़ सके और अपने लिए राजनीति अथवा अन्य किसी नवीन मार्ग का प्रारम्भ कर सके। जिस रास्ते मे वाधाएँ कम हैं, उसी रास्ते मे तुम काम कर सकते हो। और भारत के लिए धर्म का मार्ग ही स्वल्पतम वाधावाला मार्ग है।

धर्म के पथ का अनुसरण करना हमारे जीवन का मार्ग है, हमारी उन्नति का मार्ग है और हमारे कल्याण का मार्ग भी यही है।

परन्तु अन्यान्य देशों मे धम अनेक आवश्यक वस्तुओं मे से केवल एक है। यहाँ पर मै एक सामान्य उदाहरण देता हूँ जो मै अक्सर दिया करता हूँ। एक गृहस्वामिनी के अपने वार्ता-कक्ष मे अनेक वस्तुएँ सज्जित रहती हैं, और आजकल के फैशन के अनुसार एक जापानी कलश रहना आवश्यक है, अतः वह उसे जरूर प्राप्त करेगी, क्योंकि उसके बिना कमरे की सजावट पूरी नही होती। इसी तरह हमारे गृहस्वामी या स्वामिनी की अनेक प्रकार की सांसारिक व्यस्तताएँ है, इनके साथ कुछ धर्म भी चाहिए, नही तो जीवन अधूरा रह जाता है। इसीलिए वे थोडी बहुत धर्मचर्चा करते हैं। राजनीतिक, सामाजिक उन्नति अथवा एक शब्द मे, यह संसार ही पाश्चात्य देशवासियो के जीवन का एकमात्र ध्येय और उद्देश्य है। ईश्वर और धर्म तो केवल उनके सासारिक सुख के ही साधन-स्वरूप है। उनका ईश्वर एक ऐसा जीव है, जो उनके लिए दुनिया को साफ-सुथरा रखता है और साधन-सम्पन्न बनाता है। प्रत्यक्षत' उनकी दृष्टि मे ईश्वर का इतना ही मूल्य है। क्या तुम नहीं जानते कि इधर सौ दो सौ वर्षो से तुम बारम्बार उन लोगों के मुख से कैसी कैसी बातें सुनते रहे हो, जो अज्ञ होकर भी ज्ञान का प्रदर्शन करते हैं? वे भारतीय धर्म के विरुद्ध जो युक्तियाँ पेश करते है, वे यही है कि हमारा धर्म सांसारिक उन्नति करने की शिक्षा नही देता, हमारे धर्म से धन की प्राप्ति नही होती, हमारा धर्म हमे देशों का लुटेरा नही बनाता, हमारा धर्म बलवानो को दुर्बलों की छाती पर मूँग दलने की शिक्षा नहीं

देता और न हमे बलवान् बनाकर दुर्बलों का खून चूसने की शक्ति प्रदान करता है। सचमुच हमारा धर्म यह सब काम नही करता। हमारा धर्म ऐसी सेना नही भेजता, जिसके पैरो के नीचे धरती कॉपती है, और जो संसार मे रक्तपात, लूटमार और अन्य जातियो का सर्वनाश करने मे ही अपना गौरव मानती है। इसीलिए वे कहते हैं, 'तो फिर तुम्हारे धर्म मे है क्या ? जब इससे उदर-दरी की पूर्ति नही हो सकती, शक्ति-सामर्थ्य की वृद्धि नही होती, तब फिर एसे धर्म मे रखा ही क्या है ?'

वे स्वप्न मे भी इस बात की कल्पना नही करते कि यही वह युक्ति है जिसके द्वारा हमारे धर्म की श्रेष्ठता प्रमाणित होती है, क्योंकि हमारा धर्म पार्थिवता पर आश्रित नही है। हमारा धर्म तो इसलिए सच्चा धर्म है कि यह सभी को इन तीन दिन के क्षुद्र इन्द्रियाश्रित सीमित ससार को ही अपना अभीष्ट और उद्दिष्ट मानने से मना करता है और इसी को हमारा सर्वोच्च ध्येय नही बताता। इस पृथ्वी का यह क्षुद्र क्षितिज, जो केवल कुछ एक हाथ ही विस्तृत है, हमारे धर्म की दृष्टि को सीमित नही कर सकता। हमारा धर्म दूर तक, बहुत दूर तक फैला हुआ है; वह इन्द्रियो की सीमा से भी आगे तक फैला है; वह देश और काल के भी परे है। वह दूर, और दूर विस्तृत होता हुआ उस सीमातीत स्थिति में पहुँचता है जहॉ इस भौतिक जगत् का कुछ भी शेष नही रहता और सारा विश्व-ब्रह्माण्ड ही आत्मा के दिगन्तव्यापी महामहिम अनन्त सागर की एक बूंद के समान दिखाई देता है। वह हमे यह सिखाता है कि एकमात्र ईश्वर ही सत्य है; ससार असत्य और क्षणभंगुर है; तुम्हारा सोने का ढेर खाक के ढेर जैसा है, तुम्हारी सारी शक्तियॉ परिमित और सीमाबद्ध हैं; बल्कि तुम्हारा यह

जीवन भी नि.सार है। यही कारण है कि हमारा धर्म ही सच्चा है। हमारा धर्म इसलिए भी सत्य है कि उसकी सर्वोच्च शिक्षा है त्याग, और युगों के अनुभव से प्राप्त अपने अगाध विज्ञान और प्रज्ञा को लेकर यह सिर ऊँचा करके खड़ा होता और उन जातियो के सामने, जो हम हिन्दुओ की तुलना मे अभी दुधमुँहे बच्चे के बराबर है, ललकारकर घोषणा करता हुआ कहता है, 'बच्चो! तुम इन्द्रिय-जनित सुखो के गुलाम हो। ये सुख सीमाबद्ध हैं, बरबादी के कारण है। भोग-विलास के ये तीन दिन अन्त मे बरबादी ही लाते हैं। इस सब को छोड़ दो, भोग-विलास की लालसा को त्याग दो, संसार की माया में न लिपटो। यही धर्म का मार्ग है।' त्याग के द्वारा ही तुम अपने अभीष्ट तक पहुँच सकते हो, भोग-विलास के द्वारा नही। इसीलिए हमारा धर्म ही सच्चा धर्म है।

हाँ, यह बडे ही मार्के की बात है कि एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा, इस तरह कितने ही राष्ट्र दुनिया के रंगमंच पर आये और कुछ दिनो तक बडे जोशोखरोश के साथ अपना नाटच दिखाकर बिना एक भी चिह्न अथवा एक भी लहर छोड़े काल के अनन्त सागर मे विलीन हो गये। और हम यहाँ इस तरह से जीवित है, मानो हमारा जीवन अनन्त है। पाश्चात्य देशवाले 'बलिष्ठ की अतिजीविता' (survival of the fittest) के नये सिद्धान्तो के विषय मे बड़ी लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं। और वे सोचते हैं कि जिसकी भुजाओं मे सब से अधिक बल है, वही सब से अधिक काल तक जीवित रहेगा। यदि यह बात सच होती, तो पुरानी दुनिया की कोई वैसी ही जाति, जिसने अपने भुजबल से कितने ही देशो पर विजय पायी

थी, आज अपने अप्रतिहत गौरव से संसार म जगमगाती हुई दिखाई देती और हमारी कमजोर हिन्दू जाति, जिसने कभी किसी जाति या राष्ट्र को पराजित नही किया है, आज पृथ्वी से विलुप्त हो गयी होती। पर अब भी हम तीस करोड़ हिन्दू जीवित हैं। (एक दिन एक अंग्रेज युवती ने मुझसे कहा कि हिन्दुओ ने किया क्या है ? उन्होने तो एक भी देश पर विजय नही पायी है !) फिर इस बात में तनिक भी सत्यता नही है कि हमारी सारी शक्तियाँ खर्च हो गयी हैं, हमारा शरीर बिलकुल अकर्मण्य हो गया है। यह बिलकुल गलत बात है। हमारे अन्दर अभी भी यथेष्ट जीवन-शक्ति विद्यमान है, जो कभी उचित समय पर आवश्यकतानुसार प्रवेग से निकलकर सारे संसार को आप्लावित कर देती है।

हमने मानो बहुत ही पुराने जमाने से सारे संसार को एक समस्यापूर्ति के लिए ललकारा है। पाश्चात्य देशवाले वहाँ इस बात की चेष्टा कर रहे है कि मनुष्य अधिक से अधिक कितना विभव संग्रह कर सकता है, और यहाँ हम लोग इस बात की चेष्टा करते हैं कि कम से कम कितने मे हमारा काम चल सकता है। यह द्वन्द्वयुद्ध और यह पार्थक्य अभी सदियो तक जारी रहेगा। परन्तु, यदि इतिहास मे कुछ भी सत्यता है और वर्तमान लक्षणो से भविष्य का कुछ आभास दिखाई देता है, तो अन्त मे उन्हीं की विजय होगी जो बहुत ही कम द्रव्यों पर निर्भर रहते हुए जीवन व्यतीत करने और अच्छी तरह से आत्मसंयम का अभ्यास करने की चेष्टा करते है; और जो भोग-विलास तथा ऐश्वर्य के उपासक हैं, वे वर्तमान मे कितने ही बलशाली क्यो न हों, अन्त मे अवश्य ही विनष्ट होंगे तथा संसार से विलुप्त हो जाएँगे।

मनुष्य मात्र के जीवन मे एक ऐसा समय आता है--नही, प्रत्यक राष्ट्र के इतिहास मे एक ऐसा समय आता है, जब संसार के प्रति एक प्रकार की वितृष्णा आ जाती है, जो अत्यन्त प्रबल तथा पीड़ाजनक प्रतीत होती है। ऐसा जान पड़ता है कि पाश्चात्य देशों मे यह संसार-विरक्ति का भाव फैलना आरम्भ हो गया है। वहाँ भी विचारशील, विवेकशील महान् व्यक्ति है जो धन और बाहुबल की इस घुड़दौड़ को बिलकुल मिथ्या समझने लग है। बहुतेरे प्राय: वहाँ के अधिकतर शिक्षित स्त्री-पुरुष, अब इस होड़ से, इस प्रतिद्वन्द्विता से ऊब गये हैं; वे अपनी इस व्यापार-वाणिज्य-प्रधान सभ्यता की पाशविकता से तंग आ गये हैं, और इससे अच्छी परिस्थिति मे पहुँचना चाहते हैं। वहाँ ऐसे मनुष्यो की भी एक श्रेणी है, जो अब भी राजनीतिक और सामाजिक उन्नति को पाश्चात्य देशो की सारी बुराइयो के लिए रामबाण समझकर उससे सटे रहना चाहते है। परन्तु वहाँ जो महान् विचारशील व्यक्ति हैं, उनकी धारणा बदल रही है, उनका आदर्श परिवर्तित हो रहा है। वे अच्छी तरह समझ गये है कि चाहे जैसी भी राजनीतिक या सामाजिक उन्नति क्यों न हो जाए, उससे मनुष्य-जीवन की बुराइयाँ दूर नहीं हो सकती। उन्नततर जीवन के लिए आमूल हृदय-परिवर्तन की आवश्यकता है; केवल इसी से मानव-जीवन का सुधार सम्भव है। चाहे जैसी बड़ी से बड़ी शक्ति का प्रयोग किया जाए, और चाहे कड़े से कड़े कायदे-कानून का आविष्कार ही क्यों न किया जाए, पर इससे किसी जाति की दशा बदली नही जा सकती। समाज या जाति की असद्वृत्तियों को सद्-वृत्तियो की ओर फेरने की शक्ति तो केवल आध्यात्मिक और नैतिक उन्नति मे ही है। इस प्रकार पश्चिम की जातिया किसी

नय विचार के लिए, किसी नवीन दर्शन के लिए उत्कण्ठित और व्यग्र सी हो रही हैं। उनका ईसाई धर्म यद्यपि कई अंशों मे बहुत अच्छा है, पर वहाँ वालों ने सम्यक् रूप से उसे समझा नही है, और अब तक जितना समझा है वह उन्हे पर्याप्त नहीं दिखाई देता। वहाँ के विचारशील मनुष्यों को हमारे यहाँ के प्राचीन दर्शनो मे, विशेषत: वेदान्त मे वह नयी विचार-प्रणाली मिली है, जिसकी वे खोज मे रहे हैं और वह आध्यात्मिक खाद्य मिला है जिसकी भूख से वे व्याकुल से रहे हैं। और ऐसा होने मे कुछ अनोखापन या आश्चर्य नही है।

ससार मे जितने भी धर्म हैं, उनमे से प्रत्येक की श्रेष्ठता स्थापित करने के अनोखे अनोखे दावे सुनने का मुझे अभ्यास हो गया है। तुमने भी शायद हाल मे मेरे एक बड़े मित्र डॉक्टर बैरोज द्वारा पेश किये गये दावे के विषय मे सुना होगा कि ईसाई धर्म ही एक ऐसा धर्म है, जिसे सार्वजनीन कह सकते हैं। मै अब इस प्रश्न की मीमांसा करूँगा और तुम्हारे सम्मुख उन तर्कों को प्रस्तुत करूँगा जिनके कारण मै वेदान्त--सिर्फ वेदान्त को ही सार्वजनीन मानता हूँ। वेदान्त के सिवा कोई अन्य धर्म सार्वजनीन नही कहला सकता। हमारे वेदान्त धर्म के सिवा दुनिया के रगमंच पर जितने भी अन्यान्य धर्म हैं, वे उनके संस्थापको के जीवन के साथ सम्पूर्णत: संश्लिष्ट और सम्बद्ध हैं। उनके सिद्धान्त, उनकी शिक्षाएँ, उनके मत और उनका आचार-शास्त्र जो कुछ है, सब किसी न किसी व्यक्तिविशेष या धर्म-संस्थापक के जीवन के आधार पर ही खड़े है और उसी से वे अपने आदेश, प्रमाण और शक्ति ग्रहण करते है। और आश्चर्य तो यह है कि उसी अधिष्ठाताविशेष के जीवन की

ऐतिहासिकता पर ही उन धर्मों की सारी नींव प्रतिष्ठित है। यदि किसी तरह उसके जीवन की ऐतिहासिकता पर आघात लगे, और उसकी नींव हिल जाए या ध्वस्त हो जाए तो उस पर खड़ा धर्म का सम्पूर्ण भवन अरराकर गिर पड़ता है और सदा के लिए अपना अस्तित्व खो देता है। और वर्तमान युग मे प्रायः ऐसा ही देखने में आता है कि बहुधा सभी धर्मसंस्थापको और अधिष्ठाताओं की जीवनी के आधे भाग पर तो विश्वास किया ही नही जाता; बाकी बचे आधे हिस्से पर भी सन्दिग्ध दृष्टि से देखा जाता है।

हमारे धर्म के सिवा संसार मे अन्य जितने बड़े धर्म हैं, सभी ऐसे ही ऐतिहासिक जीवनियो के आधार पर खड़े हैं। परन्तु हमारा धर्म कुछ तत्त्वो की नीव पर खड़ा है। पृथ्वी मे कोई भी व्यक्ति—स्त्री हो अथवा पुरुष—वेदो के निर्माण करने का दम नही भर सकता। अनन्तकाल-स्थायी सिद्धान्तों द्वारा इनका निर्माण हुआ है; ऋषियों ने इन सिद्धान्तो का पता लगाया है, और कहीं कही प्रसगानुसार उन ऋषियों के नाम-मात्र आये हैं। हम यह भी नही जानते कि वे ऋषि कौन थे और क्या थे? कितने ही ऋषियों के पिता का नाम तक नहीं मालूम होता, और इसका तो कही जिक्र भी नही आया है कि कौन ऋषि कब और कहाँ पैदा हुए हैं? पर इन ऋषियो को अपने नाम-धाम की परवाह क्या थी? वे सनातन तत्त्वो के प्रचारक थे, उन्होने अपने जीवन को ठीक वैसे ही साँचे में ढाल रखा था जैसे मत या सिद्धान्त का वे प्रचार किया करते थे। फिर जिस प्रकार हमारे ईश्वर सगुण और निर्गुण दोनो हैं, ठीक उसी प्रकार धर्म भी पूर्णतः निर्गुण है—अर्थात् किसी व्यक्तिविशेष

के ऊपर हमारा धर्म निर्भर नही करता, तो भी इसमे असंख्य अवतार और महापुरुष स्थान पा सकते है। हमारे धर्म मे जितने अवतार, महापुरुष और ऋषि है उतने और किस धर्म मे है? इतना ही नही, हमारा धर्म यहाँ तक कहता है कि वर्तमान समय तथा भविष्य मे और भी बहुतेरे महापुरुष और अवतारादि आविर्भूत होगे। श्रीमद्भागवत मे कहा है - "अवताराः ह्यसंख्येयाः।" अतएव हमारे धर्म मे नये नये धर्मप्रवर्तको के आने के मार्ग मे कोई रुकावट नही। इसीलिए भारतवर्ष के धार्मिक इतिहास मे यदि कोई एक व्यक्ति या अधिक व्यक्तियो, एक या अधिक अवतारी महापुरुषो अथवा हमारे एक या अधिक पैगम्बरों की ऐतिहासिकता अप्रमाणित हो जाए, तो भी हमारे धर्म पर किसी प्रकार का आघात नही लग सकता। वह पहले की ही तरह अटल और दृढ रहेगा, क्योंकि यह धर्म किसी व्यक्ति-विशेष के ऊपर अधिष्ठित न होकर केवल चिरन्तन तत्त्वो के ऊपर ही अधिष्ठित है। संसार भर के लोगो से किसी व्यक्ति-विशेष की महत्ता बलपूर्वक स्वीकार कराने की चेष्टा वृथा है—यहाँ तक कि सनातन और सार्वभौम तत्त्वसमूह के विषय मे भी बहुसख्यक मनुष्यों को एकमतावलम्बी बनाना भी बडा कठिन काम है। अगर कभी ससार के अधिकांश मनुष्यो को धर्म के विषय मे एकमतावलम्बी बनाना सम्भव है तो वह किसी व्यक्ति-विशेष की महत्ता स्वीकार कराने से नही हो सकता; वरन् सनातन सत्य सिद्धान्तो के ऊपर विश्वास कराने से ही हो सकता है। फिर भी हमारा धर्म विशेष व्यक्तियों की प्रामाणिकता या प्रभाव को पूर्णतया स्वीकार कर लेता है—जैसा कि मै पहले ही कह चुका हूँ। हमारे देश मे 'इष्टनिष्ठा' रूपी जो अपूर्व सिद्धान्त

प्रचलित है, उसके अनुसार इन महान् धार्मिक व्यक्तियों में से किसी को भी अपना इष्ट देवता मानने की पूरी स्वाधीनता दी जाती है। तुम चाहे जिस अवतार या आचार्य को अपने जीवन का आदर्श बनाकर विशेष रूप से उपासना करना चाहो, कर सकते हो। यहाँ तक कि तुमको यह सोचने की भी स्वाधीनता है कि जिसको तुमने स्वीकार किया है, वह सब पैगम्बरो मे महान् है और सब अवतारों मे श्रेष्ठ है, इसमे कोई आपत्ति नही है; परन्तु सनातन तत्त्वसमूह पर ही तुम्हारे धर्मसाधन की नीव होनी चाहिए। यहाँ अद्भुत तथ्य यह है कि जहाँ तक वे वैदिक सनातन सत्य सिद्धान्तों के ज्वलन्त उदाहरण है, वही तक हमारे अवतार मान्य हैं। भगवान् श्रीकृष्ण का माहात्म्य यही है, कि वे भारत मे इसी तत्त्ववादी सनातन धर्म के सर्वश्रेष्ठ प्रचारक और वेदान्त के सर्वोत्कृष्ट व्याख्याता हुए हैं।

संसार भर के लोगों को वेदान्त के विषय मे ध्यान देने का दूसरा कारण यह है कि संसार के समस्त धर्मग्रन्थों मे एकमात्र वेदान्त ही ऐसा एक धर्मग्रन्थ है जिसकी शिक्षाओं के साथ बाह्य प्रकृति के वैज्ञानिक अनुसन्धान से प्राप्त परिणामों का सम्पूर्ण सामंजस्य है। अत्यन्त प्राचीन समय मे समान आकार-प्रकार, समान वंश और सदृश भावों से पूर्ण दो विभिन्न मेधाएँ भिन्न भिन्न मार्गो से संसार के तत्त्वो का अनुसन्धान करने को प्रवृत्त हुई। एक प्राचीन हिन्दू मेधा है और दूसरी प्राचीन यूनानी मेधा। यूनानी जाति के लोग बाह्य जगत् का विश्लेषण करते हुए उसी अन्तिम लक्ष्य की ओर अग्रसर हुए थे, जिस ओर हिन्दू भी अन्तर्जगत् का विश्लेषण करते हुए आगे बढे। इन दोनों जातियों की इस विश्लेषण-क्रिया के इतिहास की विभिन्न अवस्थाओं की

आलोचना करने पर मालूम होता है कि दोनो ने उस सुदूर चरम लक्ष्य पर पहुँचकर एक ही प्रकार की प्रतिध्वनि की है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि आधुनिक भौतिक विज्ञान के सिद्धान्तसमूह को केवल वेदान्ती ही, जो हिन्दू कहे जाते हैं, अपने धर्म के साथ सामंजस्यपूर्वक ग्रहण कर सकते है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वर्तमान भौतिकवाद अपने सिद्धान्तो को छोडे बिना यदि केवल वेदान्त के सिद्धान्त को ग्रहण कर ले, तो वह आप ही आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हो सकता है। हमे और उन सब को जो जानने की चेष्टा करते हैं, यह स्पष्ट दिखाई देता है कि आधुनिक भौतिकविज्ञान उन्हीं निष्कर्षो तक पहुँचा है जिन तक वेदान्त युगो पहले पहुँच चुका था। अन्तर केवल इतना ही है कि आधुनिक विज्ञान मे ये सिद्धान्त जड़ शक्ति की भाषा मे लिखे गये हैं। वर्तमान पाश्चात्य जातियो के लिए वेदान्त की चर्चा करने का और एक कारण है वेदान्त की युक्ति-सिद्धता अर्थात् आश्चर्यजनक युक्तिवाद। पाश्चात्य देशों के कई बड़े बड़े वैज्ञानिको ने मुझसे स्वय वेदान्त के सिद्धान्तों की युक्ति-पूर्णता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। इनमे से एक वैज्ञानिक महाशय के साथ मेरा विशेष परिचय है। वे अपनी वैज्ञानिक गवेषणाओं मे इतने व्यस्त रहते हैं कि उन्हे स्थिरता के साथ खाने-पीने या कही घूमने-फिरने की भी फुरसत नही रहती, परन्तु जब कभी मैं वेदान्तसम्बन्धी विषयों पर व्याख्यान देता, तब वे घण्टो मुग्ध रहकर सुना करते थे। क्योकि उनके कथनानुसार 'वेदान्त की सब बाते अत्यन्त विज्ञानसम्मत हैं, वर्तमान वैज्ञानिक युग की आकाक्षाओ को वे बड़ी सुन्दरता के साथ पूर्ण करती हैं, और आधुनिक विज्ञान बड़े बड़े अनुसन्धानो के बाद जिन सिद्धान्तों

पर पहुँचता है, उनसे इनका बहुत सामंजस्य है।'

विभिन्न धर्मों की तुलनात्मक समालोचना करने पर हमें उसमे से जो दो वैज्ञानिक सिद्धान्त प्राप्त होते है, मैं उनकी ओर तुम लोगों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। पहला धर्मों की सार्वभौम भावना और दूसरा ससार की वस्तुओ की अभिन्नता पर आधारित है। वैविलोनियनों और यहूदियो के धार्मिक इतिहास मे हमे एक बड़ी दिलचस्प विशेषता दिखाई देती है। वैविलोनियनों और यहूदियों मे बहुतसी छोटी छोटी शाखाओ के पृथक् पृथक् देवता थे। इन सारे अलग अलग देवताओं का एक साधारण नाम भी था। वैविलोनियनों मे इन देवताओं का साधारण नाम था---'बाल'। उनमे 'वाल मेरोडक' सब से प्रधान देवता माने जाते थे। समय समय पर एक उपजातिवाले उसी जाति के अन्यान्य उपजातिवालो को जीतकर अपने मे मिला लेते थे। जो उपजातिवाले जितने समय तक औरों पर अधिकार किये रहते थे उनके देवता भी उतने समय तक औरों के देवताओं से श्रेष्ठ माने जाते थे। वहाँ की 'सेमाईट' जाति के लोग तथाकथित एकेश्वरवाद के जिस सिद्धान्त के कारण अपना गौरव समझते हैं, वह इसी प्रकार बना है। यहूदियों के सारे देवताओं का साधारण नाम 'मोलोक' था। इनमे से इसरायल जातिवालो के देवता का नाम था 'मोलोक याह्वे' या 'मोलोक याव'। इसी इसरायल उपजाति ने अपने समकक्षी कई अन्यान्य उपजातियों को जीतकर अपने देवता 'मोलोक याह्वे' को औरों के देवताओं से श्रेष्ठ होने की घोषणा की। इस प्रकार के धर्मयुद्धो मे कितनी खूनखराबी, अत्याचार तथा बर्बरता हुई है, यह बात शायद तुम लोगों में बहुतों को मालूम होगी। कुछ काल बाद वैबिलोनियनों ने यहूदियों

के इस 'मोलोक याह्वे' की प्रधानता का लोप करने की चेष्टा की थी, पर इस चेष्टा मे वे कृतकार्य नही हुए।

मै समझता हूँ कि भारत की सीमाओ मे भी पृथक् पृथक् उपजातियो मे धर्मसम्बन्धी प्रधानता पाने की चेष्टा हुई थी। और सम्भवतः भारतवर्ष मे भी प्राचीन आर्य जाति की विभिन्न शाखाओ ने परस्पर अपने अपने देवता की प्रधानता स्थापित करने की चेष्टा की थी। परन्तु भारत का इतिहास दूसरे प्रकार होना था, उसे यहूदियों के इतिहास की तरह नही होना था। समस्त देशों मे भारत को ही सहिष्णुता और आध्यात्मिकता का देश होना था और इसीलिए यहाँ की विभिन्न उपजातियो या सम्प्रदायो मे अपने देवता की प्रधानता का झगड़ा दीर्घकाल तक नही चल सका। जिस समय का हाल वताने मे इतिहास असमर्थ है, यहाँ तक कि परम्परा भी जिसका कुछ आभास नही दे सकती है, उस अति प्राचीन युग मे भारत मे एक महापुरुष प्रकट हुए और उन्होने घोषित किया, "एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" —अर्थात् वास्तव मे संसार मे एक ही वस्तु (ईश्वर) है, ज्ञानी लोग उसी एक वस्तु का नाना रूपो मे वर्णन करते है। ऐसी चिरस्मरणीय पवित्र वाणी ससार मे कभी और कही उच्चारित नही हुई थी, ऐसा महान् सत्य इसके पहले कभी आविष्कृत नही हुआ था। और यही महान् सत्य हमारे हिन्दू राष्ट्र के राष्ट्रीय जीवन का मेरुदण्डस्वरूप हो गया है। सैकड़ों सदियों तक "एक सद्विप्रा वहुधा वदन्ति"—इस तत्त्व का हमारे यहाँ प्रचार होते होते हमारा राष्ट्रीय जीवन उससे ओतप्रोत हो गया है। यह सत्य सिद्धान्त हमारे खून के साथ मिल गया है और वह जीवन के साथ एक हो गया है। हम लोग इस महान् सत्य को

बहुत पसन्द करते हैं, इसी से हमारा देश धर्मसहिष्णुता का एक उज्ज्वल दृष्टान्त बन गया है। यहाँ और केवल यही, लोग अपने धर्म के विद्वेषियों के लिए, परधर्मावलम्बी लोगो के लिए ——उपासना-गृह और गिर्जे आदि बनवा देते हैं। समग्र संसार हमसे इस धर्मसहिष्णुता की शिक्षा ग्रहण करने के इन्तजार मे बैठा हुआ है। हाँ, तुम लोग शायद नही जानते कि विदेशो में कितना परधर्म-विद्वेष है। विदेशो मे कई जगह तो मैने लोगो मे दूसरो के धर्म के प्रति ऐसा घोर विद्वेष देखा कि उनके आचरण से मुझे जान पड़ा कि यदि ये मुझे मार डालते तो भी आश्चर्य नही। धर्म के लिए किसी मनुष्य की हत्या कर डालना पाश्चात्य देशवासियो के लिए इतनी मामूली बात है कि आज नहीं तो कल गर्वित पाश्चात्य सभ्यता के केन्द्रस्थल मे ऐसी घटना हो सकती है। अगर कोई पाश्चात्य देशवासी हिम्मत बाँधकर अपने देश के प्रचलित धर्ममत के विरुद्ध कुछ कहे तो उसे समाज-बहिष्कार का भयानकतम रूप स्वीकार करना पड़ेगा। यहाँ वे हमारे जातिभेद के सम्बन्ध मे सहज भाव से बकवादी आलोचना करते दिखाई देते हैं, परन्तु मेरी तरह यदि तुम लोग भी कुछ दिनों के लिए पाश्चात्य देशों मे जाकर रहो, तो तुम देखोगे कि वहाँ के कुछ बड़े बड़े आचार्य भी, जिनका नाम तुम सुना करते हो, निरे कापुरुष हैं और धर्म के सम्बन्ध मे जिन बातो को सत्य समझकर विश्वास करते हैं, जनमत के भय से वे उनका शतांश भी कह नही सकते।

इसीलिए संसार धर्मसहिष्णुता के महान् सार्वभौम सिद्धान्त को सीखने की प्रतीक्षा कर रहा है। आधुनिक सभ्यता के अन्दर यह भाव प्रवेश करने पर उसका विशेष कल्याण होगा। वास्तव में

उस भाव का समावेश हुए बिना कोई भी सभ्यता स्थायी नही हो सकती। जब तक धर्मोन्माद, खून-खराबी और पाशविक अत्याचारों का अन्त नही होता तब तक किसी सभ्यता का विकास ही नही हो सकता। जब तक हम लोग एक दूसरे के साथ सद्भाव रखना नही सीखते, तब तक कोई भी सभ्यता सिर नही उठा सकती! और इस पारस्परिक सद्भाव-वृद्धि की पहली सीढ़ी है —एक दूसरे के धार्मिक विश्वास के प्रति सहानुभूति प्रकट करना। केवल यही नही, वास्तव मे हृदय के अन्दर यह भाव जमाने के लिए केवल मित्रता या सद्भाव से ही काम नही चलेगा, वरन् हमारे धार्मिक भावों तथा विश्वासों मे चाहे जितना ही अन्तर क्यो न हो, हमे परस्पर एक दूसरे की सहायता करनी होगी। हम लोग भारतवर्ष मे यही किया करते है, यही मैने तुम लोगों से अभी कहा है। इसी भारतवर्ष मे हिन्दुओं ने ईसाइयो के लिए गिर्जे और मुसलमानों के लिए मसजिदे बनवायी है और अब भी बनवा रहे है। ऐसा ही करना पड़ेगा। वे हमे चाहे जितनी घृणा की दृष्टि से देखे, चाहे जितनी पशुता दिखाएँ, चाहे जितनी निष्ठुरता दिखाएँ, अथवा अत्याचार करे और हमारे प्रति चाहे जैसी कुत्सित भाषा का प्रयोग करे, पर हम ईसाइयो के लिए गिर्जे और मुसलमानों के लिए मसजिदे बनवाना नही छोड़ेगे। हम तब तक यह काम न बन्द करे, जब तक हम अपने प्रेमबल से उन पर विजय न प्राप्त कर ले, जब तक हम संसार के सम्मुख यह प्रमाणित न कर दे कि घृणा और विद्वेष की अपेक्षा प्रेम के द्वारा ही राष्ट्रीय जीवन स्थायी हो सकता है। केवल पशुत्व और शारीरिक शक्ति विजय नही प्राप्त कर सकती, क्षमा और नम्रता ही संसार-सग्राम मे विजय दिला सकती है।

वहुत पसन्द करते हैं, इसी से हमारा देश धर्मसहिष्णुता का एक उज्ज्वल दृष्टान्त बन गया है! यहाँ और केवल यहीं, लोग अपने धर्म के विद्वेषियो के लिए, परधर्मावलम्बी लोगो के लिए ——उपासना-गृह और गिर्जे आदि बनवा देते हैं। समग्र संसार हमसे इस धर्मसहिष्णुता की शिक्षा ग्रहण करने के इन्तजार मे बैठा हुआ है। हाँ, तुम लोग शायद नही जानते कि विदेशो में कितना परधर्म-विद्वेष है। विदेशों मे कई जगह तो मैंने लोगों मे दूसरों के धर्म के प्रति ऐसा घोर विद्वेष देखा कि उनके आचरण से मुझे जान पड़ा कि यदि ये मुझे मार डालते तो भी आश्चर्य नही। धर्म के लिए किसी मनुष्य की हत्या कर डालना पाश्चात्य देशवासियों के लिए इतनी मामूली बात है कि आज नही तो कल गर्वित पाश्चात्य सभ्यता के केन्द्रस्थल मे ऐसी घटना हो सकती है। अगर कोई पाश्चात्य देशवासी हिम्मत बाँधकर अपने देश के प्रचलित धर्ममत के विरुद्ध कुछ कहे तो उसे समाज-बहिष्कार का भयानकतम रूप स्वीकार करना पड़ेगा। यहाँ वे हमारे जातिभेद के सम्बन्ध मे सहज भाव से बकवादी आलोचना करते दिखाई देते हैं, परन्तु मेरी तरह यदि तुम लोग भी कुछ दिनों के लिए पाश्चात्य देशों मे जाकर रहो, तो तुम देखोगे कि वहाँ के कुछ बड़े बड़े आचार्य भी, जिनका नाम तुम सुना करते हो, निरे कापुरुष हैं और धर्म के सम्बन्ध मे जिन बातों को सत्य समझकर विश्वास करते हैं, जनमत के भय से वे उनका शतांश भी कह नहीं सकते।

इसीलिए संसार धर्मसहिष्णुता के महान् सार्वभौम सिद्धान्त को सीखने की प्रतीक्षा कर रहा है। आधुनिक सभ्यता के अन्दर यह भाव प्रवेश करने पर उसका विशष कल्याण होगा। वास्तव में

उस भाव का समावेश हुए बिना कोई भी सभ्यता स्थायी नही हो सकती। जब तक धर्मोन्माद, खून-खराबी और पाशविक अत्याचारों का अन्त नही होता तब तक किसी सभ्यता का विकास ही नही हो सकता। जब तक हम लोग एक दूसरे के साथ सद्भाव रखना नही सीखते, तब तक कोई भी सभ्यता सिर नही उठा सकती! और इस पारस्परिक सद्भाव-वृद्धि की पहली सीढी है ---एक दूसरे के धार्मिक विश्वास के प्रति सहानुभूति प्रकट करना। केवल यही नही, वास्तव मे हृदय के अन्दर यह भाव जमाने के लिए केवल मित्रता या सद्भाव से ही काम नही चलेगा, वरन् हमारे धार्मिक भावो तथा विश्वासों मे चाहे जितना ही अन्तर क्यों न हो, हमे परस्पर एक दूसरे की सहायता करनी होगी। हम लोग भारतवर्ष मे यही किया करते हैं, यही मैंने तुम लोगों से अभी कहा है। इसी भारतवर्ष मे हिन्दुओं ने ईसाइयो के लिए गिर्जे और मुसलमानों के लिए मसजिदे बनवायी है और अब भी बनवा रहे है। ऐसा ही करना पड़ेगा। वे हमे चाहे जितनी घृणा की दृष्टि से देखे, चाहे जितनी पशुता दिखाएँ, चाहे जितनी निष्ठुरता दिखाएँ, अथवा अत्याचार करे और हमारे प्रति चाहे जैसी कुत्सित भाषा का प्रयोग करे, पर हम ईसाइयो के लिए गिर्जे और मुसलमानों के लिए मसजिदे बनवाना नही छोड़ेगे। हम तब तक यह काम न बन्द करे, जब तक हम अपने प्रेमबल से उन पर विजय न प्राप्त कर ले, जब तक हम संसार के सम्मुख यह प्रमाणित न कर दे कि घृणा और विद्वेष की अपेक्षा प्रेम के द्वारा ही राष्ट्रीय जीवन स्थायी हो सकता है। केवल पशुत्व और शारीरिक शक्ति विजय नही प्राप्त कर सकती, क्षमा और नम्रता ही संसार-सग्राम मे विजय दिला सकती है।

हमे संसार को—युरोप के ही नही वरन् सारे संसार के विचारशील मनुष्यों को—एक और महान् तत्त्व की शिक्षा देनी होगी। समग्र संसार का आध्यात्मिक एकत्वरूपी यह महान् सनातन तत्त्व सम्भवतः ऊँची जातियों की अपेक्षा छोटी जातियों के लिए, शिक्षितों की अपेक्षा अशिक्षित मूक जनता के लिए और बलवानों की अपेक्षा दुर्बलो के लिए ही अधिक आवश्यक है। मद्रास विश्वविद्यालय के शिक्षित सज्जनों को विस्तारपूर्वक यह बताना नही पड़ेगा कि यूरोप की वर्तमान वैज्ञानिक अनुसन्धान-प्रणाली किस तरह भौतिक दृष्टि से सारे जगत् का एकत्व सिद्ध कर रही है! भौतिक दृष्टि से भी हम, तुम, सूर्य, चन्द्र और सितारे इत्यादि सब अनन्त जड-समुद्र की छोटी छोटी तरंगों के समान हैं। इधर सैकड़ो सदियों पहले भारतीय मनोविज्ञान ने जड़विज्ञान की तरह यह प्रमाणित कर दिया है कि शरीर और मन दोनों ही समष्टि रूप मे जड़समुद्र की क्षुद्र तरंगे हैं, फिर एक कदम आगे बढकर वेदान्त मे दिखाया गया है कि जगत् के इस एकत्वभाव के पीछे जो आत्मा है, वह भी एक ही है। समस्त ब्रह्माण्ड मे केवल एक आत्मा ही विद्यमान है—सब कुछ एक उसी की सत्ता है। विश्वब्रह्माण्ड की जड़ मे वास्तव मे एकत्व है, इस महान् सत्य को सुनकर बहुतेरे लोग डर जाते हैं। दूसरे देशों की बात दूर रही, इस देश मे भी इस सिद्धान्त के माननेवालों की अपेक्षा इसके विरोधियों की संख्या ही अधिक है। तो भी तुम लोगों से मेरा कहना है कि यदि संसार हमसे कोई तत्त्व ग्रहण करना चाहता है और भारत की मूक जनता अपनी उन्नति के लिए चाहती है तो वह यही जीवनदायी तत्त्व है। क्योंकि कोई भी हमारी इस मातृभूमि का पुनरु-

स्थान अद्वैतवाद को व्यावहारिक और कारगर तरीके से कार्यरूप में परिणत किये बिना नही कर सकता ।

युक्तिवादी पाश्चात्य जाति अपने यहाँ के सारे दर्शनों और आचारशास्त्रों का मुख्य प्रयोजन खोजने की प्राणपण से चेष्टा कर रही है। पर तुम सब भलीभाँति जानते हो कि कोई व्यक्ति-विशेष, चाहे वह कितना महान् देवोपम क्यों न हो—जब वह जन्म-मरण के अधीन है, तो उसके द्वारा अनुमोदित होने से ही किसी धर्म या आचारशास्त्र की प्रामाणिकता नहीं मानी जा सकती। दर्शन या नीति के विषय मे यदि केवल यही एकमात्र प्रमाण पेश किया जाए, तो संसार के उच्च कोटि के चिन्तन-शील लोगों को वह प्रमाण स्वीकृत नही हो सकता। वे किसी व्यक्तिविशेष द्वारा अनुमोदित होने को प्रामाणिकता नही मान सकते, पर वे उसी दार्शनिक या नैतिक सिद्धान्त को मानने के लिए तैयार हैं, जो सनातन तत्त्वों के आधार पर खड़ा हो। आचारशास्त्र की नीव सनातन आत्मतत्त्व के सिवा और क्या हो सकती है? यही एक ऐसा सत्य और अनन्त तत्त्व है जो तुममें, हममे और हम सब की आत्माओं मे विद्यमान है। आत्मा का अनन्त एकत्व ही सब तरह के आचरण की नीव है। हममे और तुममे केवल 'भाई-भाई' का ही सम्बन्ध नही है—मनुष्यजाति को दासता के बन्धन से मुक्त करने की चेष्टा से जितने भी ग्रन्थ लिखे गये हैं, उन सब मे मनुष्य के इस परस्पर 'भाई-भाई' के सम्बन्ध का उल्लेख है—परन्तु वास्तविक बात तो यह है कि तुम और हम बिलकुल एक हैं। भारतीय दर्शन का यही आदेश है। सब तरह के आचारशास्त्र और धर्मविज्ञान का एकमात्र तार्किक आधार यही है।

जिस प्रकार पैरों तले कुचले हुए हमारे जनसमूह को, उसी प्रकार यूरोप के लोगो को भी इस सिद्धान्त की चाहना है। सच तो यह है कि इंग्लैंड, जर्मनी, फ्रान्स और अमेरिका मे जिस तरीके से राजनीतिक और सामाजिक उन्नति की चेष्टा की जा रही है, उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उसकी जड़ में—यद्यपि वे इसे नही जानते—यही महान् तत्त्व मौजूद है। और भाइयो ! तुम यह भी देख पाओगे कि साहित्य मे जहाँ मनुष्य की मुक्ति—विश्व की मुक्ति प्राप्त करने की चेष्टा की चर्चा की गयी है, वही भारतीय वेदान्ती सिद्धान्त भी परिस्फुटित होते हैं। कही कही लेखकों को अपने भावों के मूल प्रेरणा-स्रोत का पता नही है। फिर कही कही प्रतीत होता है कि कुछ लेखकों ने अपनी मौलिकता प्रकट करने की चेष्टा की है। और कुछ ऐसे साहसी और कृतज्ञहृदय लेखक भी है, जिन्होंने स्पष्ट शब्दो मे अपने प्रेरणा-स्रोत का उल्लेख किया है और उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त की है।

जब मै अमेरिका मे था, तब कई बार लोगों ने मेरे ऊपर यह अभियोग लगाया था कि मै द्वैतवाद पर विशेष जोर नही देता, बल्कि केवल अद्वैतवाद का ही प्रचार किया करता हूँ। द्वैतवाद के प्रेम, भक्ति और उपासना मे कैसा अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है, यह मै जानता हूँ। उसकी अपूर्व महिमा को मै भलीभाँति समझता हूँ। परन्तु भाइयो ! हमारे आनन्दपुलकित होकर आँखों से प्रेमाश्रु बरसाने का अब समय नहीं है। हमने बहुत बहुत आँसू बहाये है। अब हमारे कोमल भाव धारण करने का समय नही है। कोमलता की साधना करते करते हम लोग रुई के ढेर की तरह कोमल और मृतप्राय हो गये हैं। हमारे देश के लिए इस समय आवश्यकता है, लोहे की तरह ठोस मांस-पेशियों और मज-

वृत स्नायुवाले शरीरो की। आवश्यकता है इस तरह के दृढ़ इच्छा-शक्ति-सम्पन्न होने की कि कोई उसका प्रतिरोध करने मे समर्थ न हो। आवश्यकता है ऐसी अदम्य इच्छाशक्ति की, जो ब्रह्माण्ड के सारे रहस्यों को भेद सकती हो। यदि यह कार्य करने के लिए अथाह समुद्र के मार्ग मे जाना पड़े, सदा सब तरह से मौत का सामना करना पड़े, तो भी हमे यह काम करना ही पड़ेगा। यही हमारे लिए परम आवश्यक है और इसका आरम्भ, स्थापना और दृढीकरण अद्वैतवाद अर्थात् सर्वात्मभाव के महान् आदर्श को समझने तथा उसके साक्षात्कार से ही सम्भव है। श्रद्धा श्रद्धा! अपने आप पर श्रद्धा, परमात्मा मे श्रद्धा—यही महानता का एकमात्र रहस्य है। यदि पुराणों मे कहे गये तैतीस करोड़ देवताओं के ऊपर, और विदेशियों ने बीच बीच मे जिन देवताओं को तुम्हारे बीच घुसा दिया है उन सब पर भी, तुम्हारी श्रद्धा हो, और अपने आप पर श्रद्धा न हो, तो तुम कदापि मोक्ष के अधिकारी नही हो सकते। अपने आप पर श्रद्धा करना सीखो! इसी आत्मश्रद्धा के बल से अपने पैरों आप खड़े होओ, और शक्तिशाली बनो। इस समय हमे इसी की आवश्यकता है। हम तैंतीस करोड़ भारतवासी हजारों वर्ष से मुठ्ठी भर विदेशियों के द्वारा शासित और पददलित क्यो है? इसका यही कारण है कि
ऊपर शासन करनेवालों मे अपने आप पर श्रद्धा थी; पर
वह बात नही थी। मैंने पाश्चात्य देशों मे जाकर क्या
ीखा? ईसाई धर्मसम्प्रदायो के इन निरर्थक कथनो के पीछे
मनुष्य पापी था और सदा से निरुपाय पापी था, मैंने उनकी
उन्नति का कारण क्या देखा? देखा कि अमेरिका और
दोनों के राष्ट्रीय हृदय के अन्तरतम प्रदेश मे महान्

से पैरों तले कुचलते रहे। इसके फलस्वरूप वे बेचारे एकदम असहाय हो गये। यहाँ तक कि वे अपने आपको मनुष्य मानना भी भूल गये। सदियों तक वे धनी-मानियों की आज्ञा सिर-आँखों पर रखकर केवल लकड़ी काटते और पानी भरते रहे हैं। उनकी यह धारणा बन गयी कि मानो उन्होंने गुलाम के रूप में ही जन्म लिया है। और यदि कोई व्यक्ति इन पददलित निर्धन लोगों के प्रति सहानुभूति का शब्द कहता है, तो मैं प्राय: देखता हूँ कि आधुनिक शिक्षा की डींग हाँकने के बावजूद हमारे देश के लोग इनके उन्नयन के दायित्व से तुरन्त पीछे हट जाते हैं। यही नहीं, मैं यह भी देखता हूँ कि यहाँ के धनी-मानी और नवशिक्षित लोग पाश्चात्य देशों के आनुवंशिक संक्रमणवाद (Hereditary Transmission) आदि अंड-बंड कमजोर मतों को लेकर ऐसी दानवीय और निर्दयतापूर्ण युक्तियाँ पेश करते हैं कि ये पददलित लोग किसी तरह उन्नति न कर सकें और उन पर उत्पीड़न एवं अत्याचार करने का उन्हें काफी सुभीता मिले। अमेरिका में जो धर्म-महासभा हुई थी, उसमें अन्यान्य जाति तथा सम्प्रदायों के लोगों के साथ ही एक अफ्रीकी युवक भी आया था। वह अफ्रीका की नीग्रो जाति का था। उसने बड़ा सुन्दर व्याख्यान भी दिया था। मुझे उस युवक को देखकर बडा कुतूहल हुआ। मैं उससे बीच बीच में बातचीत करने लगा, पर उसके बारे में विशेष कुछ मालूम न हो सका। कुछ दिन बाद इंग्लैंड में मेरे साथ कुछ अमेरिकनों की मुलाकात हुई। उन लोगों ने मुझे उस नीग्रो युवक का परिचय इस प्रकार दिया, 'यह युवक मध्य अफ्रीका के किसी नीग्रो सरदार का लड़का है। किसी कारण से वहीं के किसी दूसरे नीग्रो सरदार के साथ

उसके पिता का झगड़ा हो गया, और उसने इस युवक के पिता और माता को मार डाला, और दोनों का मांस पकाकर खा गया। उसने इस युवक को भी मारकर इसका मांस खा जाने का हुक्म दे दिया था। पर यह बड़ी कठिनाई से वहाँ से भाग निकला और सैकड़ो कोसों का रास्ता तय कर समुद्र के किनारे पहुँचा। वहाँ से यह एक अमेरिकन जहाज पर सवार होकर यहाँ आया।' उस नीग्रो नवयुवक ने ऐसा सुन्दर व्याख्यान दिया ! इसके बाद मै तुम्हारे वशानुक्रम के सिद्धान्त पर क्या विश्वास करूँ ?

हे ब्राह्मणो ! यदि वंशानुक्रम के आधार पर चण्डालो की अपेक्षा ब्राह्मण आसानी से विद्याभ्यास कर सकते हैं, तो उनकी शिक्षा पर धन व्यय मत करो, वरन् चण्डालो को शिक्षित वनाने पर वह सब धन व्यय करो। दुर्बलो की सहायता पहले करो, क्योकि उनको हर प्रकार के प्रतिदान की आवश्यकता है। यदि ब्राह्मण जन्म से ही वुद्धिमान् होते है, तो वे किसी की सहायता विना ही शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। यदि दूसरे लोग जन्म से कुशल नही हैं तो उन्हे आवश्यक शिक्षा तथा शिक्षक प्राप्त करने दो। हमे तो ऐसा करना ही न्याय और युक्तिसगत जान पडता है। भारत के इन दीन-हीन लोगो को, इन पददलित जाति के लोगो को, उनका अपना वास्तविक रूप समझा देना परमावश्यक है। जात-पाँत का भेद छोडकर, कमजोर और मजवूत का विचार छोड़कर, हर एक स्त्री-पुरुष को, प्रत्येक वालक-वालिका को, यह सन्देश सुनाओ और सिखाओ कि ऊँच-नीच, अमीर-गरीव और वड़े-छोटे सभी मे उसी एक अनन्त आत्मा का निवास है, जो सर्वव्यापी है, इसलिए सभी लोग महान् तथा सभी लोग साधु हो सकते है। आओ, हम प्रत्येक व्यक्ति मे घोषित करे--

'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत '*— ' उठो, जागो और जब तक तुम अपने अन्तिम ध्येय तक नहीं पहुँच जाते, तब तक चैन न लो '। उठो, जागो—निर्बलता की इस मोहनिद्रा से जाग जाओ। वास्तव में कोई भी दुर्बल नहीं है। आत्मा अनन्त, सर्वशक्तिसम्पन्न और सर्वज्ञ है। इसलिए उठो, अपने वास्तविक रूप को प्रकट करो। तुम्हारे अन्दर जो भगवान् है, उसकी सत्ता को ऊँचे स्वर में घोषित करो, उसे अस्वीकार मत करो। हमारी जाति के ऊपर घोर आलस्य, दुर्बलता और व्यामोह छाया हुआ है। इसलिए ऐ आधुनिक हिन्दुओ ! अपने को इस व्यामोह से मुक्त करो। इसका उपाय तुमको अपने धर्मशास्त्रों मे ही मिल जाएगा। तुम अपने को और प्रत्येक व्यक्ति को अपने सच्चे स्वरूप की शिक्षा दो और घोरतम मोहनिद्रा मे पड़ी हुई जीवात्मा को इस नीद से जगा दो। जब तुम्हारी जीवात्मा प्रवुद्ध होकर सक्रिय हो उठेगी, तब तुम आप ही शक्ति का अनुभव करोगे, महिमा और महत्ता पाओगे, साधुता आएगी, पवित्रता भी आप ही चली आएगी—मतलब यह कि जो कुछ अच्छे गुण है, वे सभी तुम्हारे पास आ पहुँचेंगे। गीता में यदि कोई ऐसी बात है, जिसे मै अत्यधिक पसन्द करता हूँ, तो ये दो श्लोक हैं। कृष्ण के उपदेश के सारस्वरूप इन श्लोकों से बड़ा भारी बल प्राप्त होता है :

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति॥
समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्॥+

---

* कठोपनिषद्, १।३।१४ + गीता, १३।२७-२८

—‘विनाश होनेवाले सब भूतो मे जो लोग अविनाशी परमात्मा को स्थित देखते है, यथार्थ मे उन्ही का देखना सार्थक है; क्योंकि ईश्वर को सर्वत्र समान भाव से देखकर वे आत्मा के द्वारा आत्मा की हिंसा नही करते, इसलिए वे परमगति को प्राप्त होते है।’

इस प्रकार इस देश और अन्यान्य देशों मे कल्याणकाय की दृष्टि से वेदान्त के प्रचार और प्रसार के लिए विस्तृत क्षेत्र है। इस देश मे, और विदेशों मे भी, मनुष्यजाति के दु ख दूर करने के लिए तथा मानव-समाज की उन्नति के लिए हमें परमात्मा की सर्वव्यापकता और सर्वत्र समान रूप से उसकी विद्यमानता का प्रचार करना होगा। जहाँ भी बुराई दिखाई देती है, वही अज्ञान भी मौजूद रहता है। मैंने अपने ज्ञान और अनुभव द्वारा मालूम किया है और यही शास्त्रो मे भी कहा गया है कि भेद-बुद्धि से ही संसार मे सारे अशुभ और अभेद-बुद्धि से ही सारे शुभ फलते हैं। यदि सारी विभिन्नताओ के अन्दर ईश्वर के एकत्व पर विश्वास किया जाए, तो सब प्रकार से संसार का कल्याण किया जा सकता है। यही वेदान्त का सर्वोच्च आदर्श है। प्रत्येक विषय मे आदर्श पर विश्वास करना एक बात है और प्रतिदिन के छोटे छोटे कामों मे उसी आदर्श के अनुसार काम करना बिलकुल दूसरी बात है। एक ऊँचा आदर्श दिखा देना अच्छी बात है, इसमे सन्देह नही; पर उस आदर्श तक पहुँचने का उपाय कौनसा है ?

स्वभावत: यहाँ वही कठिन और उद्विग्न करनेवाला जाति-भेद तथा समाज-सुधार का सवाल आ उपस्थित होता है, जो कई सदियों से सर्वसाधारण के मन मे उठता रहा है। मै तुमसे यह बात स्पष्ट शब्दों मे कह देना चाहता हूँ कि मै केवल जाति-

पाँति का भेद मिटानेवाला अथवा समाज-सुधारक मात्र नहीं हूँ। सीधे अर्थ मे जातिभेद या समाज-सुधार से मेरा कुछ मतलब नही। तुम चाहे जिस जाति या समाज के क्यों न हो, उससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं, पर तुम किसी और जातिवाले को घृणा की दृष्टि से क्यो देखो ? मैं केवल प्रेम और मात्र प्रेम की शिक्षा देता हूँ और मेरा यह कहना विश्वात्मा की सर्वव्यापकता और समतारूपी वेदान्त के सिद्धान्त पर आधारित है। प्रायः पिछले एक सौ वर्ष से हमारे देश मे समाज-सुधारकों और उनके तरह तरह के समाज-सुधार-सम्वन्धी प्रस्तावों की बाढ आ गयी है। व्यक्तिगत रूप से इन समाज-सुधारकों मे मुझे कोई दोष नहीं मिलता। अधिकांश अच्छे व्यक्ति और सदुद्देश्यवाले हैं। और किसी किसी विषय मे उनके उद्देश्य बहुत ही प्रशंसनीय हैं। परन्तु इसके साथ ही साथ यह भी बहुत ही निश्चित और प्रामाणिक बात है कि सामाजिक सुधारों के इन सौ वर्षो मे सारे देश का कोई स्थायी और बहुमूल्य हित नही हुआ है। व्याख्यान-मञ्चों से हजारो व्याख्यान दिये जा चुके हैं, हिन्दू जाति और हिन्दू सभ्यता के माथे पर कलंक और निन्दा की न जाने कितनी बौछारे हो चुकी हैं, परन्तु इतने पर भी समाज का कोई वास्तविक उपकार नहीं हुआ है। इसका क्या कारण है ? कारण ढूंढ़ निकालना बहुत मुश्किल काम नही है। यह भर्त्सना ही इसका कारण है। मैंने पहले ही तुमसे कहा है कि हमे सब से पहले अपनी ऐतिहासिक जातीय विशेषता की रक्षा करनी होगी। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि हमे अन्यान्य जातियों से बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त करनी पड़ेगी; पर मुझे बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि हमारे अधिकांश समाज-सुधार आन्दोलन केवल

पाश्चात्य कार्यप्रणाली के विवेकशून्य अनुकरणमात्र है। इस कार्यप्रणाली से भारत का कोई उपकार होना सम्भव नही है। इसलिए हमारे यहाँ जो सब समाज-सुधार के आन्दोलन हो रहे हैं, उनका कोई फल नही होता।

दूसरे, किसी की भर्त्सना करना किसी प्रकार भी दूसरे के हित का मार्ग नही है। एक छोटासा बच्चा भी जान सकता है कि हमारे समाज मे बहुतेरे दोष है—और दोष भला किस समाज मे नही है? ऐ मेरे देशवासी भाइयो! मै इस अवसर पर तुम्हे यह बात बता देना चाहता हूँ कि मैने ससार की जितनी भिन्न भिन्न जातियों को देखा है, उनकी तुलना करके मै इसी निश्चय पर पहुँचा हूँ कि अन्यान्य जातियों की अपेक्षा हमारी यह हिन्दू जाति ही अधिक नीतिपरायण और धार्मिक है। और हमारी सामाजिक प्रथाएँ ही अपने उद्देश्य तथा कार्यप्रणाली मे मानव-जाति को सुखी करने मे सब से अधिक उपयुक्त है। इसीलिए मै कोई सुधार नही चाहता। मेरा आदर्श है, राष्ट्रीय मार्ग पर समाज की उन्नति, विस्तृति तथा विकास। जब मै देश के प्राचीन इतिहास की पर्यालोचना करता हूँ, तब सारे ससार मे मुझे कोई ऐसा देश नही दिखाई देता, जिसने भारत के समान मानव-हृदय को उन्नत और सस्कृत बनाने की चेष्टा की हो। इसीलिए, मैं अपनी हिन्दू जाति की न तो निन्दा करता हूँ और न उसे अपराधी ठहराता हूँ। मै उनसे कहता हूँ, 'जो कुछ तुमने किया है, अच्छा ही किया है, पर इससे भी अच्छा करने की चेष्टा करो।' पुराने जमाने मे इस देश मे बहुतेरे अच्छे काम हुए है; पर अब भी उससे बढ़े चढे काम करने का पर्याप्त समय और अवकाश है। यह निश्चित है कि तुम जानते हो कि हम एक जगह एक अवस्था

मे चुपचाप वैठे नहीं रह सकते। यदि हम एक जगह स्थिर रहे, तो हमारी मृत्यु अनिवार्य है। हमे या तो आगे बढ़ना होगा या पीछे हटना होगा—हमे उन्नति करते रहना होगा, नही तो हमारी अवनति आप से आप होती जाएगी। हमारे पूर्वपुरुषों ने प्राचीन काल मे बहुत बडे बडे काम किये हैं, पर हमे उनकी अपेक्षा भी उच्चतर जीवन का विकास करना होगा और उनकी अपेक्षा और भी महान् कार्यों की ओर अग्रसर होना पड़ेगा। अव पीछे हटकर अवनति को प्राप्त होना कैसे हो सकता है? ऐसा कभी नहीं हो सकता। नही, हम कदापि वैसा होने नही देगे। पीछे हटने से हमारी जाति का अधःपतन और मरण होगा। अतएव 'अग्रसर होकर महत्तर कर्मो का अनुष्ठान करो'—तुम्हारे सामने यही मेरा वक्तव्य है।

मै किसी क्षणिक समाज-सुधार का प्रचारक नही हूँ। मै समाज के दोषों का सुधार करने की चेष्टा नही कर रहा हूँ। मै तुमसे केवल इतना ही कहता हूँ कि तुम आगे बढ़ो और हमारे पूर्वपुरुष समग्र मानवजाति की उन्नति के लिए जो सर्वांगसुन्दर प्रणाली बता गये है, उसी का अवलम्बन कर उनके उद्देश्य को सम्पूर्ण रूप से कार्य मे परिणत करो। तुमसे मेरा कहना यही है कि तुम लोग मानव के एकत्व और उसके नैसर्गिक ईश्वरत्व-भावरूपी वेदान्ती आदर्श के अधिकाधिक समीप पहुँचते जाओ। यदि मेरे पास समय होता, तो मै तुम लोगों को बड़ी प्रसन्नता के साथ यह दिखाता और बताता कि आज हमे जो कुछ कार्य करना है, उसे हजारों वर्ष पहले हमारे स्मृतिकारों ने बता दिया है। और उनकी बातों से हम यह भी जान सकते हैं कि आज हमारी जाति और समाज के आचार-व्यवहार मे जो सब परिवर्तन हुए

हैं और होंगे, उन्हे भी उन लोगों ने आज से हजारो वर्ष पहले जान लिया था। वे भी जातिभेद को तोडनेवाले थे, पर आजकल की तरह नही। जातिभेद को तोड़ने से उनका मतलब यह नही था कि शहर भर के लोग एक साथ मिलकर शराब-कबाब उडाएँ, या जितने मूर्ख और पागल हैं, वे सब चाहे जिसके साथ शादी कर ले और सारे देश को एक बहुत बडा पागलखाना बना दे, और न उनका यही विश्वास था कि जिस देश मे जितने ही अधिक विधवा-विवाह हो, वह देश उतना ही उन्नत समझा जाए। इस प्रकार से किसी जाति को उन्नत होते मुझे अभी देखना है।

ब्राह्मण ही हमारे पूर्वपुरुषो के आदर्श थे। हमारे सभी शास्त्रो मे ब्राह्मण का आदर्श विशिष्ट रूप से प्रतिष्ठित है। यूरोप के बड़े बड़े धर्माचार्य भी यह प्रमाणित करने के लिए हजारों रुपये खर्च कर रहे है कि उनके पूर्वपुरुष उच्च वंशों के थे और तब तक वे सन्तुष्ट नही होंगे जब तक अपनी वंशपरम्परा किसी भयानक क्रूर शासक से स्थापित नहीं कर लगे, जो पहाड़ पर रहकर राही बटोहियों की ताक मे रहते थे और मौका पाते ही उन पर आक्रमण कर लूट लेते थे। आभिजात्य प्रदान करनेवाले इन पूर्वजों का यही पेशा था और हमारे धर्माध्यक्ष कार्डिनल इनमे से किसी से अपनी वंशपरम्परा स्थापित किये बिना सन्तुष्ट नही रहते। फिर दूसरी ओर भारत के बड़े से बडे राजाओं के वशधर इस बात की चेष्टा कर रहे है कि हम अमुक कौपीनधारी, सर्वस्वत्यागी, वनवासी, फल-मूलाहारी और वेदपाठी ऋषि की सन्तान है। भारतीय राजा भी अपनी वंशपरम्परा स्थापित करने के लिए वही जाते है। अगर तुम अपनी वंशपरम्परा किसी महर्षि से स्थापित कर सकते हो, तो ऊँची जाति के माने जाओगे,

अन्यथा नही ।

अतएव, हमारा उच्च वंश का आदर्श अन्यान्य देशवासियों के आदर्श से बिलकुल भिन्न है। आध्यात्मिक साधनासम्पन्न महात्यागी ब्राह्मण ही हमारे आदर्श है। इस ब्राह्मण-आदर्श से मेरा क्या मतलब है ? आदर्श ब्राह्मणत्व वही है, जिसमे सांसारिकता एकदम न हो और असली ज्ञान पूर्ण मात्रा मे विद्यमान हो। हिन्दू जाति का यही आदर्श है। क्या तुमने नही सुना है, शास्त्रों मे लिखा है कि ब्राह्मण के लिए कोई कानून-कायदा नही है—वे राजा के शासनाधीन नही है, और उनके लिए फाँसी की सजा नही हो सकती ? यह बात बिलकुल सच है। स्वार्थपर मूढ लोगों ने जिस भाव से इस तत्त्व की व्याख्या की है, उस भाव से उसको मत समझो; सच्चे वेदान्ती भाव से इस तत्त्व को समझने की चेष्टा करो। यदि ब्राह्मण कहने से ऐसे मनुष्य का बोध हो, जिसने स्वार्थपरता का एकदम नाश कर डाला है, जिसका जीवन ज्ञान और प्रेम की शक्ति को प्राप्त करने में तथा इनका विस्तार करने मे ही बीतता है, जो देश ऐसे ही सच्चरित्र, नैष्ठिक तथा आध्यात्मिक ब्राह्मणों, स्त्री तथा पुरुषो से परिपूर्ण है, वह देश यदि विधि-निषेध के परे हो, तो इसमे आश्चर्य की कौनसी बात है ? ऐसे लोगों पर शासन करने के लिए सेना या पुलिस इत्यादि की क्या आवश्यकता है ? ऐसे आदमियों पर शासन करने का ही क्या काम है ? अथवा ऐसे लोगो को किसी शासन-तन्त्र के अधीन रहने की ही क्या जरूरत है ? ये लोग साधुस्वभाव महात्मा है—ईश्वर के अन्तरंगस्वरूप हैं, ये ही हमारे आदर्श ब्राह्मण हैं। और हम शास्त्रों मे देखते हैं—सत्ययुग मे पृथ्वी पर केवल एक जाति थी और वह ब्राह्मण थी। महाभारत मे हम देखते हैं, पुराकाल

मे सारी पृथ्वी पर केवल ब्राह्मणों का ही निवास था। क्रमशः ज्यो ज्यो उनकी अवनति होने लगी, वह जाति भिन्न भिन्न जातियो मे विभक्त होती गयी। फिर, जब कल्पचक्र घूमता-घूमता सत्य-युग आ पहुँचेगा, तब फिर से सभी ब्राह्मण ही हो जाएँगे। वर्त-मान युगचक्र भविष्य मे सत्ययुग के आने की सूचना दे रहा है, इसी बात की ओर मै तुम्हारा ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। ऊँची जातियो को नीची करने, मनचाहे आहार-विहार करने और क्षणिक सुखभोग के लिए अपने अपने वर्णाश्रम-धर्म की मर्यादा तोडने से यह जातिभेद की समस्या हल नही होगी। इसकी मीमांसा तभी होगी जब हम लोगो मे से प्रत्येक मनुष्य वेदान्ती धर्म का आदेश पालन करने लगेगा, जब हर कोई सच्चा धार्मिक होने की चेष्टा करेगा, और प्रत्येक व्यक्ति आदर्श बन जाएगा। तुम आर्य हो या अनार्य, ऋषिसन्तान हो, ब्राह्मण हो या अत्यन्त नीच अन्त्यज जाति के ही क्यो न हों, भारतभूमि के प्रत्येक निवासी के प्रति तुम्हारे पूर्वपुरुषो का दिया हुआ एक महान् आदेश है। तुम सब के प्रति बस एक ही आदेश है कि चुपचाप बैठे रहने से काम न होगा, निरन्तर उन्नति के लिए चेष्टा करते रहना होगा। ऊँची से ऊँची जाति से लेकर नीची से नीची जाति के लोगो को भी ब्राह्मण होने की चेष्टा करनी होगी। वेदान्त का यह आदर्श केवल भारतवर्ष के लिए ही नही, वरन् सारे ससार के लिए उपयुक्त है। हमारे जातिभेद का लक्ष्य यही है कि धीरे धीरे सारी मानवजाति आध्यात्मिक मनुष्य के महान् आदर्श को प्राप्त करने के लिए अग्रसर हो, जो धृति, क्षमा, शौच, शान्ति, उपासना और ध्यान का अभ्यासी है। इस आदर्श मे ईश्वरप्राप्ति अनुस्यूत है।

इस उद्देश्य को कार्यरूप मे परिणत करने का उपाय क्या है ? मै तुम लोगों को फिर एक बार याद दिला देना चाहता हूं कि कोसने, निन्दा करने या गालियों की वौछार करने से कोई सदुद्देश्य पूर्ण नही हो सकता। लगातार वर्षो तक इस प्रकार की कितनी ही चेष्टाएँ की गयी है, पर कभी अच्छा परिणाम प्राप्त नहीं हुआ। केवल पारस्परिक सद्भाव और प्रेम के द्वारा ही अच्छे परिणाम की आशा की जा सकती है। यह महान् विषय है, और मेरी दृष्टि मे जो योजनाएँ हैं उनकी व्याख्या के लिए कई भाषणों की आवश्यकता होगी, जिनमें मै प्रतिदिन उठनेवाले अपने विचारों को व्यक्त कर सकूँ। अतएव, आज मैं यहीं पर अपने भाषण का उपसंहार करता हूँ। हिन्दुओ ! मै तुम्हे केवल इतनी ही याद दिला देना चाहता हूँ कि हमारा यह राष्ट्रीय वेड़ा हम सदियों से इस पार से उस पार करता आ रहा है। शायद आजकल इसमें कुछ छेद हो गये है, शायद यह कुछ पुराना भी पड़ गया है। यदि यही बात है, तो हम सारे भारतवासियो को प्राणों की वाजी लगाकर इन छेदों को वन्द कर देने और इसका जीर्णोद्धार करने की चेष्टा करनी चाहिए। हमे अपने सभी देशभाइयो को इस खतरे की सूचना दे देनी चाहिए। वे जागे और हमारी सहायता करे। मै भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक जोर से चिल्लाकर लोगों को इस परिस्थिति और कर्तव्य के प्रति जागरूक करूँगा। मान लो, लोगों ने मेरी वात अनसुनी कर दी, तो भी मै इसके लिए उन्हे न तो कोसूँगा और न भर्त्सना ही करूँगा। पुराने जमाने मे हमारी जाति ने वहुत वड़े वड़े काम किये है, और यदि हम उनसे भी वड़े वड़े काम न कर सके, तो एक साथ ही शान्तिपूर्वक डूब मरने मे हमे सन्तोष होगा। देशभक्त वनो—

जिस जाति ने अतीत मे हमारे लिए इतने बड़े बडे काम किये हैं, उसे प्राणों से भी अधिक प्यारी समझो। हे स्वदेशवासियो ! मैं संसार के अन्यान्य राष्ट्रों के साथ अपने राष्ट्र की जितनी ही अधिक तुलना करता हूँ, उतना ही अधिक तुम लोगो के प्रति मेरा प्यार वढता जाता है। तुम लोग शुद्ध, शान्त और सत्स्वभाव हो, और तुम्ही लोग सदा अत्याचारो से पीड़ित रहते आये हो—इस मायामय जड जगत् की पहेली ही कुछ ऐसी है। जो हो, तुम इसकी परवाह मत करो। अन्त मे आत्मा की ही जय अवश्य होगी। इस बीच आओ हम काम मे सलग्न हो जाएँ। केवल देश की निन्दा करने से काम नही चलने का। हमारी इस परम पवित्र मातृभूमि के काल-जर्जर कर्मजीर्ण आचारों और प्रथाओ की निन्दा मत करो। एकदम अन्धविश्वासपूर्ण और अतार्किक प्रथाओं के विरुद्ध भी एक शब्द मत कहो, क्योकि उनके द्वारा भी अतीत मे हमारी जाति और देश का कुछ न कुछ उपकार अवश्य हुआ है। सदा याद रखना कि हमारी सामाजिक प्रथाओ के उद्देश्य ऐसे महान् हैं, जैसे ससार के किसी और देश की प्रथाओ के नही हैं। मैंने ससार मे प्राय. सर्वत्र जाति-पाँति का भेदभाव देखा है, पर उद्देश्य ऐसा महिमामय नही है। अतएव, जव जातिभेद का होना अनिवार्य है, तव उसे धन पर खडा करने की अपेक्षा पवित्रता और आत्मत्याग के ऊपर खड़ा करना कही अच्छा है। इसलिए निन्दा के शब्दों का उच्चारण एकदम छोड़ दो। तुम्हारा मुँह वन्द हो और हृदय खुल जाए। इस देश और सारे जगत् का उद्धार करो। तुम लोगो मे से प्रत्येक को यह सोचना होगा कि सारा भार तुम्हारे ही ऊपर है। वेदान्त का आलोक घर घर ले जाओ, प्रत्येक जीवात्मा मे जो ईश्वरत्व अन्तर्निहित है, उसे जगाओ।

तब तुम्हारी सफलता का परिमाण जो भी हो, तुम्हें इस बात का सन्तोष होगा कि तुमने एक महान् उद्देश्य की सिद्धि मे ही अपना जीवन बिताया है, कर्म किया है और प्राण-उत्सर्ग किया है। जैसे भी हो, महत्-कार्य की सिद्धि होने पर मानवजाति का दोनों लोकों मे कल्याण होगा।

मेरी क्रान्तिकारी योजना

मै समझता हूँ कि मुझमे अनेक दोषों के होते हुए भी थोडा साहस है। मै भारत से पाश्चात्य देशों मे कुछ सन्देश ले गया था, और उसे मैंने निर्भीकता से अमेरिका और इंग्लैड-वासियों के सामने प्रकट किया। आज का विषय आरम्भ करने के पूर्व मै साहसपूर्वक दो शब्द तुम लोगों से कहना चाहता हूँ। कुछ दिनों से मेरे चारो ओर कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उपस्थित हो रही है, जो मेरे कार्य की उन्नति मे विशेष रूप से विघ्न डालने की चेष्टा कर रही हैं; यहाँ तक कि, यदि सम्भव हो सके, तो वे मुझे एकबारगी कुचलकर मेरा अस्तित्व ही नष्ट कर डाले। पर ईश्वर को धन्यवाद कि ये सारी चेष्टाएँ विफल हो गयी है, और इस प्रकार की चेष्टाएँ सदैव विफल ही सिद्ध होती हैं। मै गत तीन वर्षो से देख रहा हूँ, कुछ लोग मेरे एवं मेरे कार्यो के सम्बन्ध मे कुछ भ्रान्त धारणाएँ बनाये हुए हैं। जब तक मै विदेश मे था, मै चुप रहा, मै एक शब्द भी नही बोला। पर आज मै अपने देश की भूमि पर खड़ा हूँ, मैं स्पष्टीकरण के रूप मे कुछ शब्द कहना चाहता हूँ। इन शब्दों का क्या फल होगा, अथवा ये शब्द तुम लोगों के हृदय मे किन किन भावो का उद्रेक करेंगे, इसकी मै परवाह नही करता। मुझे बहुत कम चिन्ता है; क्योकि मै वही संन्यासी हूँ, जिसने लगभग चार वर्ष पहले अपने दण्ड और कमण्डल के साथ तुम्हारे नगर मे प्रवेश किया था, और वही सारी दुनिया इस समय भी मेरे सामने पडी है। बिना और अधिक भूमिका के मै अब अपने

मद्रास के विक्टोरिया हॉल मे दिया गया भाषण

विषय को आरम्भ करता हूँ।

सब से पहले मुझे थियोसॉफिकल सोसायटी के सम्बन्ध मे कुछ कहना है। यह कहने की आवश्यकता नही कि उक्त सोसायटी से भारत का कुछ भला हुआ है और इसके लिए प्रत्येक हिन्दू उक्त सोसायटी और विशेषकर श्रीमती बेसेन्ट का कृतज्ञ है। यद्यपि मैं श्रीमती बेसेन्ट के सम्बन्ध मे बहुत कम ही जानता हूँ, पर जो कुछ भी मुझे उनके बारे मे मालूम है, उसके आधार पर मेरी यह धारणा है कि वे हमारी मातृभूमि की सच्ची हितचिन्तक है और यथाशक्ति उसकी उन्नति की चेष्टा कर रही है; इसलिए वे प्रत्येक सच्ची भारत-सन्तान की विशेष कृतज्ञता की अधिकारिणी हैं। प्रभु उन पर तथा उनके सम्बन्धित सब पर आशीर्वाद की वर्षा करें! परन्तु यह एक बात है, और थियोसॉफिकल सोसायटी मे सम्मिलित होना एक दूसरी बात। भक्ति, श्रद्धा और प्रेम एक बात है, और कोई मनुष्य जो कुछ कहे उसे बिना विचारे, बिना तर्क किये, बिना उसका विश्लेषण किये निगल जाना सर्वथा दूसरी बात। एक अफवाह चारों ओर फैल रही है और वह यह कि अमेरिका और इंग्लैण्ड मे जो कुछ काम मैंने किया है, उसमे थियोसॉफिस्टो ने मेरी सहायता की है। मैं तुम लोगों को स्पष्ट शब्दों मे बता देना चाहता हूँ कि इसका प्रत्येक शब्द गलत है, प्रत्येक शब्द झूठ है। हम लोग इस जगत् मे उदार भावों एवं भिन्न मतवालों के प्रति सहानुभूति के सम्बन्ध मे बड़ी लम्बी-चौड़ी बातें सुना करते है। यह है तो बहुत अच्छी बात, पर कार्यतः हम देखते हैं कि जब कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य की सब बातों मे विश्वास करता है, केवल तभी तक वह उससे सहानुभूति पाता है; पर ज्योंही वह किसी

विषय मे उससे भिन्न विचार रखने का साहस करता है, त्योंही वह सहानुभूति गायब हो जाती है, वह प्रेम खत्म हो जाता है।

फिर, कुछ ऐसे भी लोग हैं, जिनका अपना अपना स्वार्थ रहता है। और यदि किसी देश मे ऐसी कोई बात हो जाए, जिससे उनके स्वार्थ मे कुछ धक्का लगता हो, तो उनके हृदय में इतनी ईर्ष्या और घृणा उत्पन्न हो जाती है कि वे उस समय क्या कर डालेंगे, कुछ कहा नही जा सकता। यदि हिन्दू अपने घरो को साफ करने की चेष्टा करते हो, तो इससे ईसाई मिशनरियो का क्या बिगडता है ? यदि हिन्दू प्राणपण से अपना सुधार करने का प्रयत्न करते हों, तो इसमे ब्राह्मसमाज और अन्यान्य सुधार-सस्थाओं का क्या जाता है ? ये लोग हिन्दुओं के सुधार के विरोध मे क्यो खडे हो ? ये लोग इस आन्दोलन के प्रबलतम शत्रु क्यों हो ? क्यों ?——यही मेरा प्रश्न है। मेरी समझ मे तो उनकी घृणा और ईर्ष्या की मात्रा इतनी अधिक है कि इस विषय मे उनसे किसी प्रकार का प्रश्न करना भी सर्वथा निरर्थक है।

आज से चार वर्ष पहले जब मै अमेरिका जा रहा था—— सात समुद्र पार, बिना किसी परिचय-पत्र के, बिना किसी जान-पहचान के, एक धनहीन, मित्रहीन, अज्ञात सन्यासी के रूप में——तब मैंने थियोसॉफिकल सोसायटी के नेता से भेंट की। स्वभावत: मैंने सोचा था कि जब ये अमेरिका-वासी है और भारत-भक्त हैं, तो सम्भवत. अमेरिका के किसी सज्जन के नाम मुझे एक परिचय-पत्र दे देगे। किन्तु जब मैने उनके पास जाकर इस प्रकार के परिचय-पत्र के लिए प्रार्थना की, तो उन्होंने पूछा, "क्या आप हमारी सोसायटी के सदस्य बनेगे ?" मैने उत्तर

दिया, "नही, मै किस प्रकार आपकी सोसायटी का सदस्य हो सकता हूँ ? मैं तो आपके अधिकांश सिद्धान्तों पर विश्वास नही करता।" उन्होने कहा, "तब मुझे खेद है, मै आपके लिए कुछ भी नही कर सकता।" क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था ? जो हो, मै अपने कतिपय मद्रासी मित्रों की सहायता से अमेरिका गया। उन मित्रों मे से अनेक यहाँ पर उपस्थित है, केवल एक ही अनुपस्थित है---न्यायाधीश सुब्रह्मण्य अय्यर---जिनके प्रति अपनी परम कृतज्ञता प्रकट करना शेष है। उनमे प्रतिभाशाली पुरुष की अन्तर्दृष्टि विद्यमान है। इस जीवन मे मेरे सच्चे मित्रों में से वे एक हैं, वे भारतमाता के सच्चे सपूत हैं। अस्तु, धर्म-महासभा के कई मास पूर्व ही मै अमेरिका पहुँच गया। मेरे पास रुपये बहुत कम थे, और वे शीघ्र ही समाप्त हो गये। इधर जाड़ा भी आ गया, और मेरे पास थे सिर्फ गरमी के कपड़े। उस घोर शीतप्रधान देश मे मै आखिर क्या करूँ, यह कुछ सूझता न था। यदि मै मार्ग मे भीख माँगने लगता, तो परिणाम यही होता कि मै जेल भेज दिया जाता। उस समय मेरे पास केवल कुछ ही डालर बचे थे। मैंने अपने मद्रासवासी मित्रों के पास तार भेजा। यह बात थियोसॉफिस्टों को मालूम हो गयी और उनमे से एक ने लिखा, 'अब शैतान शीघ्र ही मर जाएगा; ईश्वर की कृपा से अच्छा हुआ, बला टली!' तो क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था ? मै ये बाते इस समय कहना नही चाहता था, किन्तु मेरे देशवासी यह सब जानने के इच्छुक थे, अतः कहनी पड़ी। गत तीन वर्षो तक इस सम्बन्ध मे एक शब्द भी मैंने मुँह से नही निकाला। चुपचाप रहना ही मेरा मूलमन्त्र रहा, किन्तु आज ये बाते मुँह से निकल पड़ी। पर

बात यही पर पूरी नही हो जाती। मैंने धर्म-महासभा मे कई थियोसॉफिस्टों को देखा। मैंने उनसे बातचीत करने और मिलने-जुलने की चेष्टा की। उन लोगो ने जिस अवज्ञा भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा, वह आज भी मेरी नजरो पर नाच रही है—मानो वह कह रही थी, "यह कहाँ का क्षुद्र कीडा, यहाँ देवताओं के बीच आ गया?" मै पूछता हूँ, क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था? हाँ, तो धर्म-महासभा मे मेरा बहुत नाम तथा यश हो गया, और तब से मेरे ऊपर अत्यधिक कार्यभार आ गया। पर प्रत्येक स्थान पर इन लोगो ने मुझे दबाने की चेष्टा की। थियोसॉफिकल सोसायटी के सदस्यों को मेरे व्याख्यान सुनने की मनाही कर दी गयी। यदि वे मेरा व्याख्यान सुनने आते, तो वे सोसायटी की सहानुभूति खो देते; क्योंकि इस सोसायटी के गुप्त (Esoteric) विभाग का यह नियम ही है कि जो मनुष्य उक्त विभाग का सदस्य होता है, उसे केवल कुथमी और मोरिया (वे जो भी हो) के पास से ही शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है—अवश्य इनके दृश्य प्रतिनिधि, मिस्टर जज और मिसेज बेसेन्ट से। अत: उक्त विभाग के सदस्य होने का अर्थ यह है कि मनुष्य अपना स्वाधीन विचार बिलकुल छोड़कर पूर्ण रूप से इन लोगो के हाथ मे आत्मसमर्पण कर दे। निश्चय ही मै ये सब बाते नहीं कर सकता था, और जो मनुष्य ऐसा करे, उसे मै हिन्दू कह भी नही सकता। मेरे हृदय मे स्वर्गीय मिस्टर जज के लिए बड़ी श्रद्धा है। वे गुणवान्, उदार, सरल और थियोसॉफिस्टो के योग्यतम प्रतिनिधि थे। उनमे और श्रीमती बेसेन्ट मे जो विरोध हुआ था, उसके सम्बन्ध मे कुछ भी राय देने का मुझे अधिकार नही है, क्योंकि दोनो ही अपने अपने 'महात्मा' की

सत्यता का दावा करते है। और यहाँ आश्चर्य की बात तो यह है कि दोनो एक ही 'महात्मा' का दावा करते हैं। ईश्वर जानें, सत्य क्या है—वे ही एकमात्र निर्णायक है। और जब दोनों पक्षों मे प्रमाण की मात्रा बराबर है, तब ऐसी अवस्था मे किसी भी पक्ष मे अपनी राय प्रकट करने का किसी को अधिकार नही।

हाँ, तो इस प्रकार उन लोगो ने समस्त अमेरिका मे मेरे लिए मार्ग प्रशस्त किया। पर वे यही पर नही रुके, वे दूसरे विरोधी पक्ष—ईसाई मिशनरियो—से जा मिले। इन ईसाई मिशनरियो ने मेरे विरुद्ध ऐसे ऐसे भयानक झूठ गढे, जिनकी कल्पना तक नही की जा सकती। यद्यपि मैं उस परदेश मे अकेला और मित्रहीन था, तथापि उन्होंने प्रत्येक स्थान मे मेरे चरित्र पर दोषारोपण किया। उन्होंने मुझे प्रत्येक मकान से बाहर निकाल देने की चेष्टा की, और जो भी मेरा मित्र बनता, उसे मेरा शत्रु बनाने का प्रयत्न किया। उन्होंने मुझे भूखों मार डालने की कोशिश की, और यह कहते मुझे दुःख होता है कि इस काम मे मेरे एक भारतवासी भाई का भी हाथ था। वे भारत मे एक सुधारक दल के नेता है। ये सज्जन प्रतिदिन घोषित करते हैं कि 'ईसा भारत मे आये हैं।' तो क्या इसी प्रकार ईसा भारत मे आएँगे? क्या इसी प्रकार भारत का सुधार होगा? इन सज्जन को मैं अपने बचपन से ही जानता था। ये मेरे परम मित्र भी थे। जब मै उनसे मिला, तो बड़ा ही प्रसन्न हुआ, क्योंकि मैने बहुत दिनों से अपने किसी देशभाई को नही देखा था। पर उन्होने मेरे प्रति ऐसा व्यवहार किया! जिस दिन धर्म-महासभा ने मुझे सम्मानित किया, जिस दिन शिकागो

मे मै लोकप्रिय हो गया, उसी दिन से उनका स्वर बदल गया और छिपे छिपे मुझे हानि पहुँचाने मे उन्होने कोई कसर उठा नही रखी। मै पूछता हूँ, क्या इसी तरह ईसा भारतवर्ष मे आएँगे ? क्या बीस वर्ष ईसा की उपासना कर उन्होने यही शिक्षा पायी है ? हमारे ये वडे बडे सुधारकगण कहते है कि ईसाई धर्म और ईसाई लोग भारतवासियो को उन्नत बनाएँगे। तो क्या वह इसी प्रकार होगा ? यदि उक्त सज्जन को इसका एक उदाहरण लिया जाए, तो निस्सन्देह स्थिति कोई आशाजनक प्रतीत नही होती।

एक वात और। मैने समाज-सुधारको के मुखपत्र मे पढा था कि मै शूद्र हूँ, और मुझसे पूछा गया कि एक शूद्र को सन्यासी होने का क्या अधिकार है ? तो इस पर मेरा उत्तर यह है कि मै उन महापुरुष का वशधर हूँ, जिनके चरणकमलो पर प्रत्येक ब्राह्मण 'यमाय धर्मराजाय चित्रगुप्ताय वै नम' उच्चारण करते हुए पुष्पाजलि प्रदान करता है और जिनके वंशज विशुद्ध क्षत्रिय हैं। यदि अपने पुराणो पर विश्वास हो, तो इन समाज-सुधारको को जान लेना चाहिए कि मेरी जाति ने पुराने जमाने मे अन्य सेवाओ के अतिरिक्त, कई शताब्दियों तक आधे भारतवर्ष का शासन किया था। यदि मेरी जाति की गणना छोड़ दी जाए, तो भारत की वर्तमान सभ्यता का क्या शेष रहेगा ? अकेले बंगाल मे ही, मेरी जाति मे सब से बड़े दार्शनिक, सब से बड़े कवि, सब से बड़े इतिहासज्ञ, सब से बड़े पुरातत्त्ववेत्ता और सब से बडे धर्मप्रचारक उत्पन्न हुए है। मेरी ही जाति ने वर्तमान समय के सब से बडे वैज्ञानिको से भारतवर्ष को विभूषित किया है। इन निन्दको को थोड़ा अपने देश के

इतिहास का तो ज्ञान प्राप्त करना था, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य इन तीनों वर्णों के सम्बन्ध में जरा अध्ययन तो करना था; जरा यह तो जानना था कि तीनो ही वर्णों को संन्यासी होने और वेद के अध्ययन करने का समान अधिकार है। ये बातें मैंने यो ही प्रसंगवश कह दी। वे जो मुझे शूद्र कहते हैं, इसकी मुझे तनिक भी पीडा नही। मेरे पूर्वजो ने गरीबों पर जो अत्याचार किया था, इससे उसका कुछ परिशोध हो जाएगा। यदि मै चाण्डाल होता, तो मुझे और भी आनन्द आता, क्योकि मै उन महापुरुष का शिष्य हूँ, जिन्होने सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण होते हुए भी एक चाण्डाल के घर को साफ करने की अपनी इच्छा प्रकट की थी। अवश्य वह इस पर सहमत हुआ नही—और भला होता भी कैसे ? एक तो ब्राह्मण, फिर उस पर संन्यासी, वे आकर घर साफ करेंगे, इस पर क्या वह कभी राजी हो सकता था ? निदान, एक दिन आधी रात को उठकर गुप्त रूप से उन्होने उस चाण्डाल के घर मे प्रवेश किया और उसका पाखाना साफ कर दिया, उन्होंने अपने लम्बे लम्बे बालों से उस स्थान को पोंछ डाला। और यह काम वे लगातार कई दिनों तक करते रहे, ताकि वे अपने को सब का दास बना सके। मैं उन्ही महापुरुष के श्रीचरणों को अपने मस्तक पर धारण किये हूँ। वे ही मेरे आदर्श हैं—मै उन्ही आदर्श पुरुष के जीवन का अनुकरण करने की चेष्टा करूँगा। सब का सेवक बनकर ही एक हिन्दू अपने को उन्नत करने की चेष्टा करता है। उसे इसी प्रकार, न कि विदेशी प्रभाव की सहायता से, सर्वसाधारण को उन्नत करना चाहिए। बीस वर्ष की पश्चिमी सभ्यता मेरे मन मे उस मनुष्य का दृष्टान्त उपस्थित कर देती है, जो विदेश में

अपने मित्र को भूखा मार डालना चाहता है। क्यो ?—केवल इसीलिए कि उसका मित्र लोकप्रिय हो गया है और उसके विचार मे वह मित्र उसके धनोपार्जन मे बाधक होता है। और असल, सनातन हिन्दू धर्म के उदाहरणस्वरूप हैं ये दूसरे व्यक्ति, जिनके सम्वन्ध मे मैने अभी कहा है। इससे विदित हो जाएगा कि सच्चा हिन्दू धर्म किस प्रकार कार्य करता है। हमारे इन सुधारको मे से एक भी, ऐसा जीवन गठन करके दिखाए तो सही जो एक चाण्डाल की भी सेवा के लिए तत्पर हो। फिर तो मै उसके चरणों के समीप बैठकर शिक्षा ग्रहण करूँ, पर हॉ, उसके पहले नही। लम्बी-चौडी बातो की अपेक्षा थोड़ा कुछ कर दिखाना लाख गुना अच्छा है।

अब मै मद्रास की समाज-मुधारक समितियो के बारे मे कुछ कहूँगा। उन्होने मेरे साथ वड़ा सदय व्यवहार किया है। उन्होने मेरे लिए अनेक मधुर शव्दो का प्रयोग किया है और मुझे बताया है कि मद्रास और बगाल के समाज-सुधारको मे वड़ा अन्तर है। मै उनसे इस बात मे सहमत हूँ। मैने अक्सर तुम लोगो से कहा है, और यह तुम लोगो मे से बहुतों को याद भी होगा कि मद्रास इस समय बड़ी अच्छी अवस्था मे है। बंगाल मे जैसी क्रिया-प्रतिक्रिया चल रही है, वैसी मद्रास मे नही है। यहॉ पर धीरे धीरे स्थायी रूप से सब विषयो मे उन्नति हो रही है, यहॉ पर समाज का क्रमशः विकास हो रहा है, किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नही। बगाल मे कही कही कुछ कुछ पुनरुत्थान हुआ है, पर मद्रास मे यह पुनरुत्थान नही है, यह है समाज की स्वाभाविक उन्नति। अतएव दोनो प्रदेशो के निवासियो की विभिन्नता के सम्वन्ध मे समाज-सुधारक जो कुछ कहते है, उनसे मै सर्वथा

सहमत हूँ। परन्तु एक विभिन्नता और है, जिसे वे नही समझते। इन संस्थाओ मे से कुछ मुझे डराकर अपना सदस्य बनाना चाहती हैं। ये लोग ऐसा करे, यह एक आश्चर्यजनक बात है। जो मनुष्य अपने जीवन मे चौदह वर्ष तक लगातार फाकाकशी का मुकाबला करता रहा हो, जिसे यह भी न मालूम रहा हो कि दूसरे दिन का भोजन कहाँ से आएगा, सोने के लिए स्थान कहाँ मिलेगा, वह इतनी सरलता से धमकाया नही जा सकता। जो मनुष्य बिना कपड़ों के और बिना यह जाने कि दूसरे समय भोजन कहाँ से मिलेगा, उस स्थान पर रहा हो, जहाँ का तापमान शून्य से भी तीस डिग्री कम हो, वह भारत मे इतनी सरलता से नहीं डराया जा सकता। यही पहली बात है, जो मै उनसे कहूँगा---मुझमें अपनी थोड़ी दृढ़ता है, मेरा थोड़ा निज का अनुभव भी है और मेरे पास संसार के लिए एक सन्देश है, जो मै बिना किसी डर के, बिना भविष्य की चिन्ता किये सब को दूँगा। सुधारको से मै कहूँगा कि मै स्वयं उनसे कही बढ़कर सुधारक हूँ। वे लोग केवल इधर-उधर थोडा सुधार करना चाहते हैं। और मैं चाहता हूँ आमूल सुधार। हम लोगों का मतभेद है केवल सुधार की प्रणाली में। उनकी प्रणाली विनाशात्मक है, और मेरी संघटनात्मक। मैं सुधार मे विश्वास नही करता, मैं विश्वास करता हूँ स्वाभाविक उन्नति मे। मै अपने को ईश्वर के स्थान पर प्रतिष्ठित कर अपने समाज के लोगों के सिर पर यह उपदेश मढ़ने का साहस नहीं कर सकता कि 'तुम्हें इसी भाँति चलना होगा, दूसरी तरह नहीं।' मै तो सिर्फ उस गिलहरी की भाँति होना चाहता हूँ, जो राम के सेतु बाँधने के समय अपने योगदानस्वरूप थोडी बालू लाकर सन्तुष्ट हो गयी थी। यही मेरा भाव है। यह

अद्भुत राष्ट्र-जीवनरूपी यन्त्र युग युग से कार्य करता आ रहा है, राष्ट्रीय जीवन का यह अद्भुत प्रवाह हम लोगो के सम्मुख वह रहा है। कौन जानता है, कौन साहसपूर्वक कह सकता है कि यह अच्छा है या बुरा, और यह किस प्रकार चलेगा ? हजारों घटनाचक्र उसके चारों ओर उपस्थित होकर उसे एक विशिष्ट प्रकार की स्फूर्ति देकर कभी उसकी गति को मन्द और कभी उसे तीव्र कर देते हैं। उसके वेग को नियमित करने का कौन साहस कर सकता है ? हमारा काम तो फल की ओर दृष्टि न रख केवल काम करते जाना है, जैसा कि गीता मे कहा है। राष्ट्रीय जीवन को जिस ईंधन की जरूरत है, देते जाओ, बस वह अपने ढग से उन्नति करता जाएगा; कोई उसकी उन्नति का मार्ग निर्दिष्ट नही कर सकता। हमारे समाज मे बहुतसी बुराइयाँ हैं, पर इस तरह बुराइयाँ तो दूसरे समाजो मे भी है। यहाँ की भूमि विधवाओ के आँसू से कभी कभी तर होती है, तो पाश्चात्य देश का वायुमण्डल अविवाहित स्त्रियो की आहों से भरा रहता है। यहाँ का जीवन गरीबी की चपेटो से जर्जरित है, तो वहाँ पर लोग विलासिता के विष से जीवन्मृत हो रहे हैं। यहाँ पर लोग इसलिए आत्महत्या करना चाहते हैं कि उनके पास खाने को कुछ नही है, तो वहाँ खाद्यान्न (भोग) की प्रचुरता के कारण लोग आत्महत्या करते हैं। बुराइयाँ सभी जगह हैं। यह तो पुराने वातरोग की तरह है। यदि उसे पैर से हटाओ, तो वह सिर मे चला जाता है। वहाँ से हटाने पर वह दूसरी जगह भाग जाता है। बस उसे केवल एक जगह से दूसरी जगह ही भगा सकते है। ऐ बच्चो, बुराइयो के निराकरण की चेष्टा करना ही सही उपाय नही है। हमारे दर्शनशास्त्रो मे लिखा है कि अच्छे और

वुरे का नित्य सम्बन्ध है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू है। यदि तुम्हारे पास एक है, तो दूसरा अवश्य रहेगा। जव समुद्र मे एक स्थान पर लहर उठती है तो दूसरे स्थान पर गड्ढा होना अनिवार्य है। इतना ही नही, सारा जीवन ही दोषयुक्त है। विना किसी की हत्या किये एक साँस तक नही ली जा सकती, विना किसी का भोजन छीने हम एक कौर भी नही खा सकते। यही प्रकृति का नियम है, यही दार्शनिक सिद्धान्त है।

इसलिए हमे केवल यह समझ लेना होगा कि सामाजिक दोषों के निराकरण का कार्य उतना वस्तुनिष्ठ नही है, जितना आत्मनिष्ठ। हम कितनी भी लम्वी-चौड़ी डीग क्यो न हाँके, समाज के दोषों को दूर करने का कार्य जितना स्वयं के लिए शिक्षात्मक है, उतना समाज के लिए वास्तविक नही। समाज के दोष दूर करने के सम्वन्ध मे सव से पहले इस तत्त्व को समझ लेना होगा, और इसे समझकर अपने मन को शान्त करना होगा, अपने खून की चढती गरमी को रोकना होगा, अपनी उत्तेजना को दूर करना होगा। संसार का इतिहास भी हमे यह वताता है कि जहाँ कही इस प्रकार की उत्तेजना से समाज के सुधार करने का प्रयत्न हुआ है, वहाँ केवल यही फल हुआ कि जिस उद्देश्य से वह किया गया था, उस उद्देश्य को ही उसने विफल कर दिया। दासत्व को नष्ट कर देने के लिए अमेरिका मे जो लड़ाई ठनी थी, उसकी अपेक्षा, अधिकार और स्वतन्त्रता की स्थापना के लिए किसी बड़े सामाजिक आन्दोलन की कल्पना ही नही की जा सकती। तुम सभी लोग उसे जानते हो। पर उसका फल क्या हुआ? यही कि आजकल के दास इस युद्ध के पूर्व के दासो की अपेक्षा सौगुनी अधिक वुरी दशा को पहुँच गये। इस युद्ध के

पूर्व ये बेचारे नीग्रो कम से कम किसी की सम्पत्ति तो थे, और सम्पत्ति होने के नाते इनकी देखभाल की जाती थी कि ये कही दुर्बल और बेकाम न हो जाएँ। पर आज तो ये किसी की सम्पत्ति नही है। इनके जीवन का कुछ भी मूल्य नही है। मामूली बातों के लिए ये जीते जी जला दिये जाते है, गोली से उडा दिये जाते हैं, और इनके हत्यारों पर कोई कानून ही लागू नही होता। क्यों? इसीलिए कि ये 'निगर' है। मानो ये मनुष्य तो क्या पशु भी नही हैं! समाज के दोषों को प्रबल उत्तेजनापूर्ण आन्दोलन द्वारा अथवा कानून के बल पर सहसा हटा देने का यही परिणाम होता है। इतिहास इस बात का साक्षी है—इस प्रकार का आन्दोलन चाहे किसी भले उद्देश्य से ही क्यों न किया गया हो। यह मेरा प्रत्यक्ष अनुभव है। प्रत्यक्ष अनुभव से ही मैंने यह सीखा है। यही कारण है कि मै केवल दोष ही देखनेवाली इन संस्थाओं का सदस्य नही हो सकता। दोषारोपण अथवा निन्दा करने की भला आवश्यकता क्या? ऐसा कौनसा समाज है, जिसमे दोष न हों? सभी समाज में तो दोष हैं। यह तो सभी कोई जानते है। आज का एक बच्चा भी इसे जानता है; वह भी सभामंच पर खड़ा होकर हमारे सामने हिन्दू धर्म की भयानक बुराइयों पर एक लम्बा भाषण दे सकता है। जो भी अशिक्षित विदेशी पृथ्वी की प्रदक्षिणा करता हुआ भारत मे पहुँचता है, वह रेल पर से भारत को उड़ती नजर से देख भर लेता है, और बस, फिर भारत की भयानक बुराइयों पर बड़ा सारगर्भित व्याख्यान देने लगता है! हम जानते है कि यहाँ बुराइयाँ हैं। पर बुराई तो हर कोई दिखा सकता है। मानवसमाज का सच्चा हितैषी तो वह है, जो इन कठिनाइयो से बाहर निकलने का उपाय बताए। यह तो इस

प्रकार है कि कोई एक दार्शनिक एक डूबते हुए लड़के को गम्भीर भाव से उपदेश दे रहा था, तो लड़के ने कहा, "पहले मुझे पानी से बाहर निकालिए, फिर उपदेश दीजिए।" बस ठीक इसी तरह भारतवासी भी कहते हैं, "हम लोगों ने बहुत व्याख्यान सुन लिये, बहुतसी संस्थाएँ देख ली, बहुतसे पत्र पढ लिये; अब तो ऐसा मनुष्य चाहिए, जो अपने हाथ का सहारा दे, हमे इन दुःखों के बाहर निकाल दे। कहाँ है वह मनुष्य जो हमसे वास्तविक प्रेम करता है, जो हमारे प्रति सच्ची सहानुभूति रखता है?" बस उसी आदमी की हमे जरूरत है। यही पर मेरा इन समाज-सुधारक आन्दोलनों से सर्वथा मतभेद है। आज सौ वर्ष हो गये ये आन्दोलन चल रहे हैं, पर सिवाय निन्दा और विद्वेषपूर्ण साहित्य की रचना के इनसे और क्या लाभ हुआ है? ईश्वर करता, यहाँ ऐसा न होता। इन्होंने पुराने समाज की कठोर आलोचना की है, उस पर तीव्र दोषारोपण किया है, उसकी कटु निन्दा की है, और अन्त मे पुराने समाज ने भी इनके समान स्वर उठाकर ईंट का जवाब ईंट से दिया है। इसके फलस्वरूप प्रत्येक भारतीय भाषा मे ऐसे साहित्य की रचना हो गयी है, जो जाति के लिए, देश के लिए कलंकस्वरूप है। क्या यही सुधार है? क्या इसी तरह देश गौरव के पथ पर बढेगा? यह दोष है किसका?

इसके बाद एक और महत्त्वपूर्ण विषय पर हमे विचार करना है। भारतवर्ष मे हमारा शासन सदैव राजाओं द्वारा हुआ है, राजाओ ने ही हमारे सब कानून बनाये हैं। अब वे राजा नही हैं, और इस विषय मे अग्रसर होने के लिए हमे मार्ग दिखलानेवाला अब कोई नही रहा। सरकार साहस नही करती। वह

तो जनमत की गति देखकर ही अपनी कार्यप्रणाली निश्चित करती है। अपनी समस्याओ को हल कर लेनेवाला एक कल्याण-कारी और प्रवल लोकमत स्थापित करने मे समय लगता है—काफी लम्वा समय लगता है। और इस बीच हमे प्रतीक्षा करनी होगी। अतएव सामाजिक सुधार की सम्पूर्ण समस्या यह रूप लेती है : कहाँ हैं वे लोग, जो सुधार चाहते हैं? पहले उन्हे तैयार करो। सुधार चाहनेवाले लोग हैं कहाँ? कुछ थोडेसे लोग किसी बात को उचित समझते हैं और बस उसे अन्य सब पर जवरदस्ती लादना चाहते हैं। इन अल्पसंख्य व्यक्तियों के अत्याचार के समान दुनिया मे और कोई अत्याचार नहीं। मुट्ठी भर लोग, जो सोचते हैं कि कतिपय बातें दोषपूर्ण हैं, राष्ट्र को गतिशील नही कर सकते। राष्ट्र मे आज प्रगति क्यों नही है? क्यों वह जड़भावापन्न है? पहले राष्ट्र को शिक्षित करो, अपनी निजी विधायक संस्थाएँ बनाओ, फिर तो कानून आप ही आ जाएँगे। जिस शक्ति के वल से, जिसके अनुमोदन से कानून का गठन होगा, पहले उसकी सृष्टि करो। आज राजा नही रहे; जिस नयी शक्ति से, जिस नये दल की सम्मति से नयी व्यवस्था गठित होगी, वह लोकशक्ति कहाँ है? पहले उसी लोकशक्ति को संगठित करो। अतएव समाज-सुधार के लिए भी प्रथम कर्तव्य है—लोगों को शिक्षित करना। और जब तक यह कार्य सम्पन्न नही होता, तव तक प्रतीक्षा करनी ही पडेगी। गत शताब्दी मे सुधार के लिए जो भी आन्दोलन हुए हैं, उनमे से अधिकाश केवल ऊपरी दिखावा मात्र रहे हैं। उनमे से प्रत्येक ने केवल प्रथम दो वर्णो से ही सम्वन्ध रखा है, शेष दो से नही। विधवा-विवाह के प्रश्न से ७० प्रतिशत भारतीय स्त्रियों का कोई सम्वन्ध

नहीं है। और देखो, मेरी बात पर ध्यान दो, इस प्रकार के सब आन्दोलनों का सम्बन्ध भारत के केवल उच्च वर्णो से ही रहा है, जो जनसाधारण का तिरस्कार करके स्वयं शिक्षित हुए हैं। इन लोगो ने अपने अपने घर को साफ करने एवं अंग्रेजों के सम्मुख अपने को सुन्दर दिखाने में कोई कसर बाकी नहीं रखी। पर यह तो सुधार नहीं कहा जा सकता। सुधार करने मे हमें चीज के भीतर, उसकी जड़ तक पहुँचना होता है। इसी को मैं आमूल सुधार कहता हूँ। आग जड़ मे लगाओ और क्रमशः ऊपर उठने दो एवं एक अखण्ड भारतीय राष्ट्र संगठित करो। पर यह एक बड़ी भारी समस्या है, और इसका समाधान भी कोई सरल नहीं है। अतएव शीघ्रता करने की आवश्यकता नहीं। यह समस्या तो गत कई शताब्दियों से हमारे देश के महापुरुषों को ज्ञात थी।

आजकल, विशेषतः दक्षिण मे, बौद्ध धर्म और उसके अज्ञेयवाद की आलोचना करने की एक प्रथा-सी चल पड़ी है। यह उन्हे स्वप्न में भी ध्यान नहीं आता कि जो विशेष दोष आजकल हमारे समाज मे वर्तमान है, वे सब बौद्ध धर्म द्वारा ही छोड़े गये हैं। बौद्ध धर्म ने हमारे लिए यही वसीयत छोड़ी है। जिन लोगों ने बौद्ध धर्म की उन्नति और अवनति का इतिहास कभी नहीं पढ़ा, उनके द्वारा लिखी गयी पुस्तकों में हम पढ़ते हैं कि बौद्ध धर्म के इतने विस्तार का कारण था---गौतम बुद्ध द्वारा प्रचारित अपूर्व आचार-शास्त्र और उनका लोकोत्तर चरित्र। भगवान् बुद्धदेव के प्रति मेरी यथेष्ट श्रद्धा-भक्ति है। पर मेरे शब्दों पर ध्यान दो, बौद्ध धर्म का विस्तार उक्त महापुरुष के मत और अपूर्व चरित्र के कारण उतना नही हुआ, जितना बौद्धों

द्वारा निर्माण किय गये बडे बडे मन्दिरो एवं भव्य प्रतिमाओ के कारण, समग्र देश के सम्मुख किये गये भडकीले उत्सवों के कारण। इसी भाँति बौद्ध धर्म ने उन्नति की। इन सब बड़े बडे मन्दिरों एवं आडम्बर भरे क्रियाकलापो के सामने घरों मे हवन के लिए प्रतिष्ठित छोटे छोटे अग्निकुण्ड ठहर न सके। पर अन्त मे इन सब क्रियाकलापों मे भारी अवनति हो गयी—ऐसी अवनति कि उसका वर्णन भी श्रोताओं के सामने नही किया जा सकता। जो इस सम्बन्ध मे जानने के इच्छुक हों, वे इसे किंचित् परिमाण मे दक्षिण भारत के नाना प्रकार के कलाशिल्प से युक्त बड़े बड़े मन्दिरों मे देख लें। और बौद्धों से उत्तराधिकार के रूप मे हमने केवल यही पाया।

इसके बाद महान् सुधारक श्रीशंकराचाय और उनके अनुयायिओं का अभ्युदय हुआ। उस समय से आज तक इन कई सौ वर्षो मे भारतवर्ष की सर्वसाधारण जनता को धीरे धीरे उस मौलिक विशुद्ध वेदान्त के धर्म की ओर लाने की चेष्टा की गयी है। उन सुधारकों को बुराइयों का पूरा ज्ञान था, पर उन्होने समाज की निन्दा नहीं की। उन्होंने यह नही कहा कि 'जो कुछ तुम्हारे पास है, वह सभी गलत है, उसे तुम फेक दो।' ऐसा कभी नहीं हो सकता था। आज मैंने पढ़ा, मेरे मित्र डाक्टर बैरोज कहते हैं कि ईसाई धर्म के प्रभाव ने ३०० वर्षो मे यूनानी और रोमन धर्म के प्रभाव को उलट दिया। पर जिसने कभी यूरोप, यूनान और रोम को देखा है, वह ऐसा कभी नहीं कह सकता। रोमन और यूनानी धर्मो का प्रभाव प्रोटेस्टेन्ट देशों तक मे सर्वत्र व्याप्त है। प्राचीन देवता नये वेश मे वर्तमान हैं—केवल नाम भर बदल दिये गये हैं। देवियाँ हो गयी है 'मेरी', देवता हो गये हैं

'सन्त' (saints) और अनुष्ठानों ने नये नये रूप धारण कर लिये है। यहाँ तक कि प्राचीन उपाधि पॉटिफेक्स मैक्सिमस* पूर्ववत् ही विद्यमान है। अतएव, अचानक परिवर्तन नहीं हो सकते। शंकराचार्य और रामानुज इसे जानते थे। इसलिए उस समय प्रचलित धर्म को धीरे धीरे उच्चतम आदर्श तक पहुँचा देना ही उनके लिए एक उपाय शेष था। यदि वे दूसरी प्रणाली का सहारा लेते, तो वे पाखण्डी सिद्ध होते, क्योंकि उनके धर्म का प्रधान मत ही है क्रमविकासवाद। उनके धर्म का मूलतत्त्व यही है कि इन सब नाना प्रकार की अवस्थाओं मे से होकर आत्मा उच्चतम लक्ष्य पर पहुँचती है। अतः ये सभी अवस्थाएँ आवश्यक और हमारी सहायक हैं। भला कौन इनकी निन्दा करने का साहस कर सकता है?

आजकल मूर्तिपूजा को गलत बताने की प्रथा-सी चल पड़ी है, और सब लोग बिना किसी आपत्ति के उसमे विश्वास भी करने लग गये है। मैंने भी एक समय ऐसा ही सोचा था और उसके दण्डस्वरूप मुझे ऐसे व्यक्ति के चरणकमलों मे बैठकर शिक्षा ग्रहण करनी पड़ी, जिन्होने सब कुछ मूर्तिपूजा के ही द्वारा प्राप्त किया था—मेरा अभिप्राय श्रीरामकृष्णदेव से है। यदि मूर्तिपूजा के द्वारा श्रीरामकृष्ण जैसे व्यक्ति उत्पन्न हो सकते है, तब तुम क्या पसन्द करोगे—सुधारको का धर्म, या मूर्तिपूजा? मै इस प्रश्न का उत्तर चाहता हूँ। यदि मूर्तिपूजा के द्वारा इस प्रकार श्रीरामकृष्ण उत्पन्न हो सकते हों, तो और हजारों मूर्तियों की

---

* रोम मे पुरोहित विद्यालय के प्रधानाध्यापक इसी नाम से पुकारे जाते है। इसका अर्थ है—प्रधान पुरोहित। अभी पोप इसी नाम से सम्बोधित किये जाते है।

पूजा करो। प्रभु तुम्हे सिद्धि दे! जिस किसी भी उपाय से हो सके, इस प्रकार के महापुरुषो की सृष्टि करो। और इतने पर भी मूर्तिपूजा की निन्दा की जाती है! क्यो? यह कोई नही जानता। शायद इसलिए कि हजारो वर्ष पहले किसी यहूदी ने इसकी निन्दा की थी। अर्थात् उसने अपनी मूर्ति को छोड़कर और सब की मूर्तियों की निन्दा की थी। उस यहूदी ने कहा था, यदि ईश्वर का भाव किसी विशेष प्रतीक या सुन्दर प्रतिमा द्वारा प्रकट किया जाए, तो यह भयानक दोष है, एक जघन्य पाप है, परन्तु यदि उसका अकन एक सन्दूक के रूप मे किया जाए, जिसके दोनों किनारों पर दो देवदूत बैठे है और ऊपर बादल का एक टुकड़ा लटक रहा है, तो वह बहुत ही पवित्र, पवित्रतम होगा। यदि ईश्वर पेडुकी का रूप धारण करके आए, तो वह महापवित्र होगा; पर यदि वह गाय का रूप लेकर आए, तो यह मूर्तिपूजको का कुसंस्कार होगा!—उसकी निन्दा करो। दुनिया का बस यही भाव है। इसीलिए कवि ने कहा है, 'हम मर्त्य जीव कितने निर्बोध है!' परस्पर एक दूसरे के दृष्टिकोण से देखना और विचार करना कितना कठिन है! और यही मनुष्यसमाज की उन्नति मे घोर विघ्नस्वरूप है। यही है ईर्ष्या, घृणा और लडाई-झगड़े की जड। अरे बालको, अपरिपक्व बुद्धिवाले नासमझ लड़को, तुम लोग कभी मद्रास के बाहर तो गये नही, और खड़े होकर सहस्रों प्राचीन संस्कारो से नियन्त्रित तीस करोड़ मनुष्यों पर कानून चलाना चाहते हो! क्या तुम्हे लज्जा नही आती? दूर हो जाओ धर्मनिन्दा के इस कुकर्म से, और पहले खुद अपना सबक सीखो। श्रद्धाहीन बालको, तुम कागज पर कुछ पक्तियाँ घसीट सकने मे और किसी मूर्ख को पकड़कर उन्हे छपवा लेने

मे अपने को समथ समझकर सोचते हो कि तुम जगत् के शिक्षक हो, तुम्हारा मत ही भारत का जनमत है ! तो क्या एसी बात है ? इसीलिए मै मद्रास के समाज-सुधारकों से कहना चाहता हूँ कि मुझमे उनके प्रति बड़ी श्रद्धा और प्रेम है। उनके विशाल हृदय, उनकी स्वदेश-प्रीति, पीड़ित और निर्धन के प्रति उनके प्रेम के कारण ही मै उनसे प्यार करता हूँ। किन्तु भाई जैसे भाई से स्नेह करता है और साथ ही उसके दोष भी दिखा देता है, ठीक इसी तरह मै उनसे कहता हूँ कि उनकी कार्यप्रणाली ठीक नहीं है। यह प्रणाली भारत मे सौ वर्ष तक आजमायी गयी, पर वह कामयाब न हो सकी। अब हमें किसी नयी प्रणाली का सहारा लेना होगा।

क्या भारतवर्ष में कभी सुधारकों का अभाव था ? क्या तुमने भारत का इतिहास पढा है ? रामानुज, शकर, नानक, चैतन्य, कबीर और दादू कौन थे ? ये सब बड़े बड़े धर्माचार्य, जो भारत-गगन में अत्यन्त उज्ज्वल नक्षत्रों की तरह एक के बाद एक उदित हुए और फिर अस्त हो गये, कौन थे ? क्या रामानुज के हृदय में नीच जातियों के लिए प्रेम नहीं था ? क्या उन्होंने अपने सारे जीवन भर चाण्डाल तक को अपने सम्प्रदाय मे ले लेने का प्रयत्न नही किया ? क्या उन्होने अपने सम्प्रदाय मे मुसलमान तक को मिला लेने की चेष्टा नही की ? क्या नानक ने मुसलमान और हिन्दू दोनों को समान भाव से शिक्षा देकर समाज मे एक नयी अवस्था लाने का प्रयत्न नही किया ? इन सब ने प्रयत्न किया, और उनका काम आज भी जारी है। भेद केवल इतना है कि वे आज के समाज-सुधारकों की तरह दम्भी नहीं थे; वे इनके समान अपने मुँह से कभी अभिशाप नही उगलते थे। उनके मुँह

से केवल आशीर्वाद ही निकलता था। उन्होने कभी भर्त्सना नही की। उन्होने लोगो से कहा कि जाति को सतत उन्नतिशील होना चाहिए। उन्होने अतीत मे दृष्टि डालकर कहा, "हिन्दुओ, तुमने अभी तक जो किया अच्छा ही किया, पर भाइयो, तुम्हे अब इससे भी अच्छा करना होगा।" उन्होने यह नही कहा, "पहले तुम दुष्ट थ, और अब तुम्हे अच्छा होना होगा।" उन्होंने यही कहा, "पहले तुम अच्छे थे, अब और भी अच्छे बनो।" इससे जमीन-आसमान का फर्क पैदा हो जाता है। हम लोगों को अपनी प्रकृति के अनुसार उन्नति करनी होगी। विदेशी सस्थाओ ने बलपूर्वक जिस कृत्रिम प्रणाली को हममे प्रचलित करने की चेष्टा की है, उसके अनुसार काम करना वृथा है। वह असम्भव है। जय हो प्रभु! हम लोगो को तोड़-मरोड़कर नये सिरे से दूसरे राष्ट्रो के ढाँचे मे गढना असम्भव है! मै दूसरी कौमों की सामाजिक प्रथाओं की निन्दा नही करता। वे उनके लिए अच्छी हैं, पर हमारे लिए नही। उनके लिए जो कुछ अमृत है, हमारे लिए वही विष हो सकता है। पहले यही बात सीखनी होगी। अन्य प्रकार के विज्ञान, अन्य प्रकार के परम्परागत संस्कार और अन्य प्रकार के आचारों से उनकी वर्तमान सामाजिक प्रथा गठित हुई है। और हम लोगों के पीछे हैं हमारे अपने परम्परागत संस्कार और हजारों वर्षो के कर्म। अतएव हमे स्वभावत. अपने संस्कारो के अनुसार ही चलना पड़ेगा; और यह हमे करना ही होगा।

तब फिर मेरी योजना क्या है? मेरी योजना है—प्राचीन महान् आचार्यो के उपदेशो का अनुसरण करना। मैने उनके कार्य का अध्ययन किया है, और जिस प्रणाली से उन्होने कार्य किया, उनके आविष्कार करने का मुझे सौभाग्य मिला। वे

सब महान् समाज-संस्थापक थे। बल, पवित्रता और जीवन-शक्ति के वे अद्भुत आधार थे। उन्होंने सब से अद्भुत कार्य किया ---समाज मे बल, पवित्रता और जीवन-शक्ति संचारित की। हमे भी सब से अद्भुत कार्य करना है। आज अवस्था कुछ बदल गयी है, इसलिए कार्यप्रणाली मे कुछ थोड़ासा परिवर्तन करना होगा; बस इतना ही, इससे अधिक कुछ नहीं। मै देखता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति की भाँति प्रत्येक राष्ट्र का भी एक विशेष जीवनोद्देश्य है। वही उसके जीवन का केन्द्र है, उसके जीवन का प्रधान स्वर है, जिसके साथ अन्य सब स्वर मिलकर समरसता उत्पन्न करते है। किसी देश मे, जैसे इंग्लैंड मे, राजनीतिक सत्ता ही उसकी जीवन-शक्ति है। कलाकौशल की उन्नति करना किसी दूसरे राष्ट्र का प्रधान लक्ष्य है। ऐसे ही और दूसरे देशों का भी समझो। किन्तु भारतवर्ष मे धार्मिक जीवन ही राष्ट्रीय जीवन का केन्द्र है और वही राष्ट्रीय जीवनरूपी संगीत का प्रधान स्वर है। यदि कोई राष्ट्र अपनी स्वाभाविक जीवन-शक्ति को दूर फेक देने की चेष्टा करे---शताब्दियों से जिस दिशा की ओर उसकी विशेष गति हुई है, उससे मुड़ जाने का प्रयत्न करे---और यदि वह अपने इस कार्य मे सफल हो जाए, तो वह राष्ट्र मृत हो जाता है। अतएव यदि तुम धर्म को फेककर राजनीति, समाजनीति अथवा अन्य किसी दूसरी नीति को अपनी जीवन-शक्ति का केन्द्र बनाने मे सफल हो जाओ, तो उसका फल यह होगा कि तुम्हारा अस्तित्व तक न रह जाएगा। यदि तुम इससे बचना चाहो, तो अपनी जीवन-शक्तिरूपी धर्म के भीतर से ही तुम्हे अपने सारे कार्य करने होंगे---अपनी प्रत्येक क्रिया का केन्द्र इस धर्म को ही बनाना होगा। तुम्हारे स्नायुओं

का प्रत्येक स्पन्दन तुम्हारे इस धर्मरूपी मेरुदण्ड के भीतर से होकर गुजरे। मैने देखा है कि 'सामाजिक जीवन पर धर्म का कैसा प्रभाव पडेगा', यह बिना दिखाये मै अमेरिकावासियो मे धर्म का प्रचार नही कर सकता था। इग्लैड मे भी बिना यह बताये कि 'वेदान्त के द्वारा कौन-कौनसे आश्चर्यजनक राजनीतिक परिवर्तन हो सकेगे', मै धर्मप्रचार नही कर सका। इसी भॉति भारत मे सामाजिक सुधार का प्रचार तभी हो सकता है, जब यह दिखा दिया जाए कि उस नयी प्रथा से आध्यात्मिक जीवन की उन्नति मे कौनसी विशेष सहायता मिलेगी। राजनीति का प्रचार करने के लिए हमे दिखाना होगा कि उसके द्वारा हमारे राष्ट्रीय जीवन की आकांक्षा--आध्यात्मिक उन्नति--की कितनी अधिक पूर्ति हो सकेगी। इस ससार मे प्रत्येक व्यक्ति को अपना अपना मार्ग चुन लेना पड़ता है, उसी भॉति प्रत्येक राष्ट्र को भी। हमने युगों पूर्व अपना पथ निर्धारित कर लिया था, और अब हमे उसी से लगे रहना चाहिए--उसी के अनुसार चलना चाहिए। फिर, हमारा यह चयन भी तो उतना कोई बुरा नही। जड़ के बदले चैतन्य का, मनुष्य के बदले ईश्वर का चिन्तन करना क्या ससार मे इतनी बुरी चीज है? परलोक मे दृढ़ आस्था, इस लोक के प्रति तीव्र विरक्ति, प्रबल त्याग-शक्ति एवं ईश्वर और अविनाशी आत्मा मे दृढ विश्वास तुम लोगों मे सतत विद्यमान है। क्या तुम इसे छोड सकते हो? नही, तुम इसे कभी नही छोड़ सकते। तुम कुछ दिन भौतिकवादी होकर और भौतिकवाद की चर्चा करके भले ही मुझमे विश्वास जमाने की चेष्टा करो, पर मै जानता हूँ कि तुम क्या हो। तुमको थोड़ा धर्म अच्छी तरह समझा देने भर की देर है कि तुम परम आस्तिक हो

जाओगे। सोचो, अपना स्वभाव भला कैसे बदल सकते हो ?

अत. भारत मे किसी प्रकार का सुधार या उन्नति की चेष्टा करने के पहले धर्मप्रचार आवश्यक है। भारत को समाजवादी अथवा राजनीतिक विचारों से प्लावित करने के पहले आवश्यक है कि उसमे आध्यात्मिक विचारों की बाढ़ ला दी जाए। सर्वप्रथम, हमारे उपनिषदों, पुराणों और अन्य सब शास्त्रो मे जो अपूर्व सत्य छिपे हुए हैं, उन्हे इन सब ग्रन्थों के पन्नो से बाहर निकालकर, मठों की चहारदीवारियाँ भेदकर, वनों की शून्यता से दूर लाकर, कुछ सम्प्रदाय-विशेषों के हाथों से छीनकर देश मे सर्वत्र बिखेर देना होगा, ताकि ये सत्य दावानल के समान सारे देश को चारों ओर से लपेट ले—उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक सब जगह फैल जाएँ—हिमालय से कन्याकुमारी और सिन्धु से ब्रह्मपुत्र तक सर्वत्र वे धधक उठे। सब से पहले हमे यही करना होगा। सभी को इन सब शास्त्रों में निहित उपदेश सुनाने होंगे, क्योकि उपनिषद् में कहा है, "पहले इसे सुनना होगा, फिर मनन करना होगा और उसके बाद निदिध्यासन।"* पहले लोग इन सत्यों को सुनें। और जो भी व्यक्ति अपने शास्त्र के इन महान् सत्यों को दूसरों को सुनाने म सहायता पहुँचाएगा, वह आज एक ऐसा कर्म करेगा, जिसके समान कोई दूसरा कर्म ही नहीं। महर्षि व्यास ने कहा है, "इस कलियुग मे मनुष्यों के लिए एक ही कर्म शेष रह गया है। आजकल यज्ञ और कठोर तपस्याओं से कोई फल नही होता।

* आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते इदं सर्वं विदितम्। (बृहदारण्यक उपनिषद् ४।५।६)

इस समय दान ही एकमात्र कर्म है।" * और दानों में धर्मदान, अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान का दान ही सर्वश्रेष्ठ है। दूसरा दान है विद्यादान, तीसरा प्राणदान और चौथा अन्नदान। इस अपूर्व दानशील हिन्दू जाति की ओर देखो! इस निर्धन, अत्यन्त निर्धन देश मे लोग कितना दान करते है, इसकी ओर जरा नजर डालो। यहाँ के लोग इतने अतिथिसेवी हैं कि एक व्यक्ति बिना एक कौड़ी अपने पास रखे उत्तर से दक्षिण तक यात्रा करके आ सकता है। और हर स्थान मे उसका ऐसा सत्कार होगा, मानो वह परम मित्र हो। यदि यहाँ कही पर रोटी का एक टुकड़ा भी है, तो कोई भिक्षुक भूख से नही मर सकता।

इस दानशील देश मे हमे पहले प्रकार के दान के लिए अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान के विस्तार के लिए साहसपूर्वक अग्रसर होना होगा। और यह ज्ञान-विस्तार भारतवर्ष की सीमा मे ही आवद्ध नही रहेगा, इसका विस्तार तो सारे संसार भर मे करना होगा। और अभी तक यही होता भी रहा है। जो लोग कहते है कि भारत के विचार कभी भारत से वाहर नहीं गये, जो सोचते है कि मै ही पहला संन्यासी हूँ जो भारत के वाहर धर्म-प्रचार करने गया, वे अपनी जाति के इतिहास को नही जानते। यह कई वार घटित हो चुका है। जव कभी भी संसार को इसकी आवश्यकता हुई, उसी समय इस निरन्तर वहनेवाले आध्यात्मिक ज्ञानस्रोत ने संसार को प्लावित कर दिया। राजनीति-सम्वन्धी विद्या का विस्तार रणभेरियों और सुसज्जित सेनाओं के वल पर

* निम्नलिखित श्लोक भी इसी आशय का है—

तपः पर कृते युगे त्रेताया ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेक कलौ युगे॥ (मनुसहिता १।८६)

किया जा सकता है। लौकिक एवं समाज-सम्बन्धी विद्या का विस्तार आग और तलवारों के बल पर हो सकता है। पर आध्यात्मिक विद्या का विस्तार तो शान्ति द्वारा ही सम्भव है। जिस प्रकार चक्षु और कर्ण के गोचर न होता हुआ भी मृदु ओस-बिन्दु गुलाब की कलियों को विकसित कर देता है, बस वैसा ही आध्यात्मिक ज्ञान के विस्तार के सम्बन्ध मे भी समझो। यही एक दान है, जो भारत दुनिया को बार बार देता आया है। जब कभी कोई दिग्विजयी जाति उठी, जिसने संसार के विभिन्न देशों को एक साथ ला दिया और आपस मे यातायात तथा संचार की सुविधा कर दी, त्योंही भारत उठा और उसने संसार की समग्र उन्नति में अपने आध्यात्मिक ज्ञान का भाग भी प्रदान कर दिया। बुद्धदेव के जन्म के बहुत पहले से ही ऐसा होता आया है, और इसके चिह्न आज भी चीन, एशिया माइनर और मलय द्वीपसमूह में मौजूद हैं। जब उस महाबलशाली दिग्विजयी यूनानी ने उस समय के ज्ञात संसार के सब भागों को एक साथ ला दिया था, तब भी यही घटना घटी थी—भारत के आध्यात्मिक ज्ञान की बाढ़ ने बाहर उमड़कर संसार को प्लावित कर दिया था। आज पाश्चात्य देशवासी जिस सभ्यता का गर्व करते हैं, वह उसी प्लावन का अवरोध मात्र है। आज फिर से वही सुयोग उपस्थित हुआ है। इंग्लैंड की शक्ति ने सारे संसार की जातियों को एकता के सूत्र मे इस प्रकार बाँध दिया है, जैसा पहले कभी नही हुआ था। अग्रेजो के यातायात और संचार के साधन संसार के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक फैले हुए हैं। आज अंग्रेजों की प्रतिभा के कारण संसार अपूर्व रूप से एकता की डोर में बँध गया है। इस समय संसार के भिन्न भिन्न स्थानों मे

जिस प्रकार के व्यापारिक केन्द्र स्थापित हुए हैं, वैसे मानवजाति के इतिहास मे पहले कभी नही हुए थे। अतएव इस सुयोग मे भारत फौरन उठकर ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से जगत् को अपने आध्यात्मिक ज्ञान का दान दे रहा है। अब इन सब मार्गो के सहारे भारत की यह भावराशि समस्त ससार मे फैलती रहेगी। मै जो अमेरिका गया, वह मेरी या तुम्हारी इच्छा से नही हुआ, वरन् भारत के भाग्यविधाता भगवान् ने मुझे अमेरिका भेजा, और वे ही इसी भाँति सैकड़ों आदमियो को ससार के अन्य सब देशो मे भेजेगे। इसे दुनिया की कोई ताकत नही रोक सकती। अतएव तुमको भारत के बाहर भी धर्मप्रचार के लिए जाना होगा। इसका प्रचार जगत् की सब जातियों और मनुष्यो में करना होगा। पहले यही धर्मप्रचार आवश्यक है। धर्मप्रचार करने के बाद उसके साथ ही साथ लौकिक विद्या और अन्यान्य आवश्यक विद्याएँ आप ही आ जाएँगी। पर यदि तुम लौकिक विद्या, बिना धर्म के ग्रहण करना चाहो, तो मै तुमसे साफ कहे देता हूँ कि भारत मे तुम्हारा ऐसा प्रयास व्यर्थ सिद्ध होगा, वह लोगों के हृदयों मे स्थान प्राप्त न कर सकेगा। यहाँ तक कि इतना बड़ा बौद्ध धर्म भी कुछ अशो मे इसी कारणवश यहाँ अपना प्रभाव न जमा सका।

इसलिए, मेरे मित्रो, मेरा विचार है कि मै भारत म कुछ ऐसे शिक्षालय स्थापित करूँ, जहाँ हमारे नवयुवक अपने शास्त्रों के ज्ञान मे शिक्षित होकर भारत तथा भारत के बाहर अपने धर्म का प्रचार कर सके। मनुष्य, केवल मनुष्य भर चाहिए। बाकी सब कुछ अपने आप हो जाएगा। आवश्यकता है वीर्यवान्, तेजस्वी, श्रद्धासम्पन्न और दृढविश्वासी निष्कपट नवयुवको की

ऐसे सौ मिल जाएँ, तो संसार का कायाकल्प हो जाए। इच्छा-शक्ति संसार में सब से अधिक बलवती है। उसके सामने दुनिया की कोई चीज नही ठहर सकती; क्योंकि वह भगवान्—साक्षात् भगवान्—से आती है। विशुद्ध और दृढ़ इच्छाशक्ति सर्वशक्तिमान् है। क्या तुम इसमे विश्वास नही करते? सब के समक्ष अपने धर्म के महान् सत्यों का प्रचार करो, संसार इनकी प्रतीक्षा कर रहा है। सैकड़ों वर्षो से लोगों को मनुष्य की हीनावस्था का ही ज्ञान कराया गया है। उनसे कहा गया है कि वे कुछ नहीं हैं। संसार भर में सर्वत्र सर्वसाधारण से कहा गया है कि तुम लोग मनुष्य ही नहीं हो। शताब्दियों से इस प्रकार डराये जाने के कारण वे बेचारे सचमुच ही करीब करीब पशुत्व को प्राप्त हो गये है। उन्हे कभी आत्मतत्त्व के विषय मे सुनने का मौका नही दिया गया। अब उनको आत्मतत्त्व सुनने दो, यह जान लेने दो कि उनमे से नीच से नीच मे भी आत्मा विद्यमान है—वह आत्मा, जो न कभी मरती है, न जन्म लेती है, जिसे न तलवार काट सकती है न आग जला सकती है और न हवा सुखा सकती है,* जो अमर है, अनादि और अनन्त है, जो शुद्धस्वरूप, सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापी है। उन्हे अपने मे विश्वास करने दो। आखिर अंग्रेजों मे और तुममे किसलिए इतना अन्तर है? उन्हें अपने धर्म अपने कर्तव्य आदि के सम्बन्ध मे कहने दो। पर मुझे अन्तर मालूम हो गया है। अन्तर यही है कि अंग्रेज अपने ऊपर विश्वास करता है, और तुम नही। जब वह सोचता है कि मैं अंग्रेज हूँ, तो वह उस विश्वास के बल पर जो चाहता है वही कर सकता

---

* नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥ (गीता २।२३)

है। इस विश्वास के आधार पर उसके अन्दर छिपा हुआ ईश्वर-भाव जाग उठता है। और तब वह उसकी जो भी इच्छा होती है, वही कर सकने मे समर्थ होता है। इसके विपरीत, लोग तुमसे कहते आये हैं, तुम्हे सिखाते आये हैं कि तुम कुछ भी नही हो, तुम कुछ भी नही कर सकते, और फलस्वरूप तुम आज इस प्रकार अकर्मण्य हो गये हो। अतएव आज हम जो चाहते है, वह है—बल, अपने मे अटूट विश्वास। हम लोग शक्तिहीन हो गये हैं। इसीलिए गुप्तविद्या और रहस्यविद्या—इन रोमांचक वस्तुओ ने धीरे धीरे हममे घर कर लिया है। भले ही उनमे अनेक सत्य हों, पर उन्होने लगभग हमें नष्ट कर डाला है। अपने स्नायु वलवान् वनाओ। आज हमे जिसकी आवश्यकता है, वह है—लोहे के पुट्ठे और फौलाद के स्नायु। हम लोग बहुत दिन रो चुके। अव और रोने की आवश्यकता नहीं। अब अपने पैरों पर खड़े हो जाओ और 'मर्द' बनो। हमे ऐसे धर्म की आवश्यकता है, जिससे हम मनुष्य वन सकें। हमे ऐसे सिद्धान्तों की जरूरत है, जिससे हम मनुष्य हो सके। हमे ऐसी सर्वांगसम्पन्न शिक्षा चाहिए, जो हमे मनुष्य बना सके। और यह रही सत्य की कसौटी—जो भी तुमको शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से दुर्वल बनाये उसे जहर की भाँति त्याग दो, उसमें जीवन-शक्ति नही है, वह कभी सत्य नही हो सकता। सत्य तो वलप्रद है, वह पवित्रता है, वह ज्ञानस्वरूप है। सत्य तो वह है जो शक्ति दे, जो हृदय के अन्धकार को दूर कर दे, जो हृदय मे स्फूर्ति भर दे। भले ही इन रहस्यविद्याओं मे कुछ सत्य हो, पर ये तो साधारणतया मनुष्य को दुर्वल ही वनाती है। मेरा विश्वास करो, मेरा यह जीवन भर का अनुभव है। मै भारत

के लगभग सभी स्थानों मे घूम चुका हूँ, सभी गुफाओ का अन्वेषण कर चुका हूँ और हिमालय पर भी रह चुका हूँ। मै ऐसे लोगों को भी जानता हूँ, जो जीवन भर वही रहे हैं। और अन्त मे मै इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि इन सब रहस्यविद्याओं से मनुष्य दुर्बल ही होता है। मै अपने देश से प्रेम करता हूँ; मै तुम्हे और अधिक पतित और ज्यादा कमजोर नही देख सकता। अतएव तुम्हारे कल्याण के लिए, सत्य के लिए और जिससे मेरी जाति और अधिक अवनत न हो जाए, इसलिए मै जोर से चिल्लाकर कहने के लिए बाध्य हो रहा हूँ—बस ठहरो। अवनति की ओर और न बढ़ो—जहाँ तक गये हो, बस उतना ही काफी हो चुका। अब वीर्यवान् होने का प्रयत्न करो, कमजोर बनानेवाली इन सब रहस्यविद्याओं को तिलांजलि दे दो, और अपने उपनिषदों का—उस बलप्रद, आलोकप्रद, दिव्य दर्शनशास्त्र का—आश्रय ग्रहण करो। सत्य जितना ही महान् होता है, उतना ही सहज बोधगम्य होता है—स्वयं अपने अस्तित्व के समान सहज। जैसे अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए और किसी की आवश्यकता नही होती, बस वैसा ही। उपनिषद् के सत्य तुम्हारे सामने हैं। इनका अवलम्बन करो, इनकी उपलब्धि कर इन्हें कार्य मे परिणत करो। बस देखोगे, भारत का उद्धार निश्चित है।

एक बात और कहकर मै समाप्त करूँगा। लोग देशभक्ति की चर्चा करते हैं। मै भी देशभक्ति मे विश्वास करता हूँ, और देशभक्ति के सम्बन्ध में मेरा भी एक आदर्श है। बड़े काम करने के लिए तीन बातों की आवश्यकता होती है। पहला है हृदय की अनुभव-शक्ति। बुद्धि या विचारशक्ति मे क्या है? वह तो कुछ

दूर जाती है और बस वही रुक जाती है। पर हृदय तो प्रेरणास्रोत है! प्रेम असम्भव द्वारो को भी उद्घाटित कर देता है। यह प्रेम ही जगत् के सब रहस्यों का द्वार है। अतएव, ऐ मेरे भावी सुधारको, मेरे भावी देशभक्तो, तुम अनुभव करो। क्या तुम अनुभव करते हो? क्या तुम हृदय से अनुभव करते हो कि देव और ऋषियों की करोड़ों सन्ताने आज पशुतुल्य हो गयी है? क्या तुम हृदय से अनुभव करते हो कि लाखों आदमी आज भूखों मर रहे हैं, और लाखों लोग शताब्दियों से इसी भाँति भूखों मरते आये हैं? क्या तुम अनुभव करते हो कि अज्ञान के काले बादल ने सारे भारत को ढक लिया है? क्या तुम यह सब सोचकर बेचैन हो जाते हो? क्या इस भावना ने तुमको निद्राहीन कर दिया है? क्या यह भावना तुम्हारे रक्त के साथ मिलकर तुम्हारी धमनियों मे बहती है? क्या वह तुम्हारे हृदय के स्पन्दन से मिल गयी है? क्या उसने तुम्हे पागल-सा बना दिया है? क्या देश की दुर्दशा की चिन्ता ही तुम्हारे ध्यान का एकमात्र विषय बन बैठी है? और क्या इस चिन्ता मे विभोर हो जाने से तुम अपने नाम-यश, पुत्र-कलत्र, धन-सम्पत्ति, यहाँ तक कि अपने शरीर की भी सुध बिसर गये हो? क्या तुमने ऐसा किया है? यदि 'हाँ', तो जानो कि तुमने देशभक्त होने की पहली सीढ़ी पर पैर रखा है—हाँ, केवल पहली ही सीढ़ी पर! तुममे से अधिकांश जानते हैं, मै अमेरिका धर्म-महासभा के लिए नहीं गया, वरन् इस भावना का दैत्य मुझमे, मेरी आत्मा मे था। मै पूरे बारह वर्ष सारे देश भर भ्रमण करता रहा, पर अपने देशवासियों के लिए कार्य करने का मुझे कोई रास्ता ही नहीं मिला। यही कारण था कि मै अमेरिका गया। तुममे से

अधिकांश, जो मुझे उस समय जानते थे, इस बात को अवश्य जानते हैं। इस धर्म-महासभा की कौन परवाह करता था? यहाँ मेरे देशवासी, मेरे ही रक्त-मांसमय देहस्वरूप मेरे देशवासी, दिन पर दिन डूबते जा रहे थे। उनकी कौन खबर ले? बस यही मेरा पहला सोपान था।

अच्छा, माना कि तुम अनुभव करते हो; पर पूछता हूँ, क्या केवल व्यर्थ की बातों में शक्तिक्षय न करके इस दुर्दशा का निवारण करने के लिए तुमने कोई यथार्थ कर्तव्य-पथ निश्चित किया है? क्या लोगो की भर्त्सना न कर उनकी सहायता का कोई उपाय सोचा है? क्या स्वदेशवासियो को उनकी इस जीवन्मृत अवस्था से बाहर निकालने के लिए कोई मार्ग ठीक किया है? क्या उनके दु:खों को कम करने के लिए दो सान्त्वना-दायक शब्दों को खोजा है? यही दूसरी बात है। किन्तु इतने ही से पूरा न होगा। क्या तुम पर्वताकार विघ्न-बाधाओं को लाँघकर कार्य करने के लिए तैयार हो? यदि सारी दुनिया हाथ मे नंगी तलवार लेकर तुम्हारे विरोध मे खड़ी हो जाए, तो भी क्या तुम जिसे सत्य समझते हो, उसे पूरा करने का साहस करोगे? यदि तुम्हारे पुत्र-कलत्र तुम्हारे प्रतिकूल हो जाएँ, भाग्यलक्ष्मी तुमसे रूठकर चली जाए, नाम की कीर्ति भी तुम्हारा साथ छोड़ दे, तो भी क्या तुम उस सत्य मे संलग्न रहोगे? फिर भी क्या तुम उसके पीछे लगे रहकर अपने लक्ष्य की ओर सतत बढ़ते रहोगे? जैसा कि महान् राजा भर्तृहरि ने कहा है, 'चाहे नीतिनिपुण लोग निन्दा करे या प्रशंसा, लक्ष्मी आए या जहाँ उसकी इच्छा हो चली जाए, मृत्यु आज हो या सौ वर्ष बाद, धीर पुरुष तो वह है जो न्याय के पथ से तनिक भी

विचलित नही होता ।'* क्या तुममे ऐसी दृढ़ता है ? बस यही तीसरी बात है । यदि तुममे ये तीन बाते है, तो तुममे से प्रत्येक अद्‌भुत कार्य कर सकता है । तब फिर तुम्हे समाचारपत्रों मे छपवाने की अथवा व्याख्यान देते हुए फिरते रहने की आवश्यकता न होगी । स्वय तुम्हारा मुख ही दीप्त हो उठेगा ! फिर तुम चाहे पर्वत की कन्दरा मे रहो, तो भी तुम्हारे विचार पर्वत की चट्टानों को भेदकर बाहर निकल आएँगे और सैकड़ो वर्ष तक सारे संसार मे प्रतिध्वनित होते रहेगे । और हो सकता है, तब तक ऐसे ही रहे, जब तक उन्हे किसी मस्तिष्क का आधार न मिल जाए, और वे उसी के माध्यम से कार्यशील हो उठे । विचार, निष्कपटता और पवित्र उद्देश्य मे ऐसी ही जबरदस्त शक्ति है ।

मुझे डर है कि तुम्हे देर हो रही है, पर एक बात और । ऐ मेरे स्वदेशवासियो, मेरे मित्रो, मेरे बच्चो, राष्ट्रीय जीवनरूपी यह जहाज लाखों लोगो को जीवनरूपी समुद्र के पार करता रहा है । कई शताब्दियों से इसका यह कार्य चल रहा है और इसकी सहायता से लाखो आत्माएँ इस सागर के उस पार अमृतधाम मे पहुँची है । पर आज शायद तुम्हारे ही दोष से इस पोत मे कुछ खराबी हो गयी है, इसमे एक-दो छेद हो गये है । तो क्या तुम इसे कोसोगे ? ससार मे जिसने तुम्हारा सब से अधिक उपकार किया है, उसके विरुद्ध खड़े होकर उस पर गाली बरसाना क्या तुम्हारे लिए उचित है ? यदि हमारे इस समाज मे, इस राष्ट्रीय जीवन-रूपी जहाज मे छेद है, तो हम तो उसकी सन्तान है । आओ चलें,

* निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।।
(नीतिशतकम् ७४)

उन छेदों को बन्द कर दे—उसके लिए हँसते हँसते अपने हृदय का रक्त बहा दें। और यदि हम ऐसा न कर सकें तो हमें मर जाना ही उचित है। हम अपना भेजा निकालकर उसकी डाट बनाएँगे और जहाज के उन छेदों में भर देंगे। पर उसकी कभी भर्त्सना न करें! इस समाज के विरुद्ध एक कड़ा शब्द तक न निकालो। उसकी अतीत की गौरव-गरिमा के लिए मेरा उस पर प्रेम है। मैं तुम सब को प्यार करता हूँ, क्योंकि तुम देवताओं की सन्तान हो, महिमाशाली पूर्वजों के वंशज हो। तब भला मैं तुम्हें कैसे कोस सकता हूँ? यह असम्भव है। तुम्हारा सब प्रकार से कल्याण हो। ऐ मेरे बच्चो, मैं तुम्हारे पास आया हूँ अपनी सारी योजनाएँ तुम्हारे सामने रखने के लिए। यदि तुम उन्हें सुनो, तो मैं तुम्हारे साथ काम करने को तैयार हूँ। पर यदि तुम उनको न सुनो, और मुझे ठुकराकर अपने देश के बाहर भी निकाल दो, तो भी मैं तुम्हारे पास वापस आकर यही कहूँगा, "भाई, हम सब डूब रहे हैं।" मैं आज तुम्हारे बीच बैठने आया हूँ। और यदि हमें डूबना है, तो आओ, हम सब साथ ही डूबें, पर एक भी कटु शब्द हमारे ओठों पर न आने पाएँ।

भारतीय जीवन में वेदान्त का प्रभाव

हमारी जाति और धर्म को व्यक्त करने के लिए एक शब्द 'हिन्दू' बहुत प्रचलित हो गया है। वेदान्त धर्म से मेरा क्या अभिप्राय है, इसको समझाने के लिए इस 'हिन्दू' शब्द की किंचित् व्याख्या करना आवश्यक है। प्राचीन फारस देशनिवासी सिन्धु-नद के लिए 'हिन्दू' इस नाम का प्रयोग करते थे। संस्कृत भाषा में जहाँ 'स' आता है, प्राचीन फारसी भाषा मे वही 'ह' रूप में परिणत हो जाता है, इसलिए सिन्धु का 'हिन्दू' हो गया। तुम सभी लोग जानते हो कि यूनानी लोग 'ह' का उच्चारण नहीं कर सकते थे, इसलिए उन्होने 'ह' को छोड़ दिया और इस प्रकार हम 'इन्डियन' नाम से जाने गये। प्राचीन काल मे इस शब्द का अर्थ जो भी हो, अब इस हिन्दू शब्द की, जो सिन्धुनद के दूसरे किनारे के निवासियो के लिए प्रयुक्त होता था, कोई सार्थकता नही है, क्योकि सिन्धुनद के इस ओर रहनेवाले सभी एक धर्म के माननेवाले नही हैं। इस समय यहाँ हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, बौद्ध और जैन भी वास करते हैं। 'हिन्दू' शब्द के व्यापक अर्थ के अनुसार इन सब को हिन्दू कहना होगा, किन्तु धर्म के हिसाब से इन सब को हिन्दू नहीं कहा जा सकता। हमारा धर्म भिन्न भिन्न प्रकार के धार्मिक विश्वास, भाव तथा अनुष्ठान और क्रियाकर्मो का समष्टि-स्वरूप है। सब एक साथ मिला हुआ है, किन्तु यह कोई साधारण नियम से सगठित नही हुआ, इसका कोई एक साधारण नाम भी नही है और न इसका कोई सघ ही है। कदाचित् केवल एक यही विषय है जहाँ सारे सम्प्रदाय एकमत

मद्रास मे दिया गया भाषण

हैं कि हम सभी अपने शास्त्र वेदों पर विश्वास करते है। यह भी निश्चित है कि जो व्यक्ति वेदों की सर्वोच्च प्रामाणिकता को स्वीकार नहीं करता, उसे अपने को हिन्दू कहने का अधिकार नही है। तुम जानते हो कि ये वेद दो भागों मे विभक्त हैं--- कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। कर्मकाण्ड में नाना प्रकार के याग-यज्ञ और अनुष्ठान-पद्धतियाँ हैं, जिनका अधिकांश आजकल प्रचलित नही है। ज्ञानकाण्ड मे वेदों के आध्यात्मिक उपदेश लिपिबद्ध हैं— वे उपनिषद् अथवा 'वेदान्त' के नाम से परिचित हैं और द्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी अथवा अद्वैतवादी समस्त दार्शनिकों और आचार्यो ने उनको ही उच्चतम प्रमाण कहकर स्वीकार किया है। भारत के समस्त दर्शन और सम्प्रदायों को यह प्रमाणित करना होता है कि उसका दर्शन अथवा सम्प्रदाय उपनिषद्रूपी नीव के ऊपर प्रतिष्ठित है। यदि कोई ऐसा करने मे समर्थ न हो सके तो वह दर्शन अथवा सम्प्रदाय धर्मविरुद्ध गिना जाता है; इसलिए वर्तमान समय में समग्र भारत के हिन्दुओं को यदि किसी साधारण नाम से परिचित करना हो तो उनको 'वेदान्ती' अथवा 'वैदिक' कहना उचित होगा। मै वेदान्ती धर्म और वेदान्त इन दोनों शब्दों का व्यवहार सदा इसी अभिप्राय से करता हूँ।

मैं इसको और भी स्पष्ट करके समझाना चाहता हूँ, कारण यह है कि आजकल कुछ लोग वेदान्त दर्शन की 'अद्वैत' व्याख्या को ही 'वेदान्त' शब्द के समानार्थक रूप में प्रयोग करते हैं। हम सब जानते हैं कि उपनिषदों के आधार पर जिन समस्त विभिन्न दर्शनों की सृष्टि हुई है, अद्वैतवाद उनमे से एक है। अद्वैतवादियों की उपनिषदों के ऊपर जितनी श्रद्धा-भक्ति है, विशिष्टाद्वैतवादियों की भी उतनी ही है और अद्वैतवादी अपने दर्शन को वेदान्त की

नीव पर प्रतिष्ठित कहकर जितना अपनाते हैं, विशिष्टाद्वैतवादी भी उतना ही। द्वैतवादी और भारतीय अन्यान्य समस्त सम्प्रदाय भी ऐसा ही करते हैं। ऐसा होने पर भी साधारण मनुष्यो के मन मे 'वेदान्ती' और 'अद्वैतवादी' समानार्थक हो गये हैं और शायद इसका कुछ कारण भी है। यद्यपि वेद ही हमारे प्रधान शास्त्र है, हमारे पास वेदों के सिद्धान्तो की व्याख्या दृष्टान्त रूप से करनेवाले परवर्ती स्मृति और पुराण भी निश्चित रूप से वेदों के समान प्रामाणिक नहीं है। यह शास्त्र का नियम है कि जहाँ श्रुति एव पुराण और स्मृति मे मतभेद हो, वहाँ श्रुति के मत का ग्रहण और स्मृति के मत का परित्याग करना चाहिए। इस समय हम देखते है कि अद्वैत दार्शनिक शंकराचार्य और उनके मतावलम्बी आचार्यो की व्याख्या मे अधिक परिमाण मे उपनिषद् प्रमाणस्वरूप उद्धृत हुए हैं। केवल जहाँ ऐसे विषय की व्याख्या का प्रयोजन हुआ, जिसको श्रुति मे किसी रूप मे पाने की आशा न हो, ऐसे थोडेसे स्थानों मे ही स्मृति-वाक्य उद्धृत हुए है। अन्यान्य मतावलम्बी स्मृति के ऊपर ही अधिकाधिक निर्भर रहते है, श्रुति का आश्रय कम ही लेते है। और ज्यों ज्यों हम द्वैतवादियों की ओर ध्यान देते हैं, हमको विदित होता है कि उनके उद्धृत स्मृति-वाक्यों के अनुपात का परिमाण इतना अधिक है कि वेदान्तियों से इस अनुपात की आशा नही की जाती। ऐसा प्रतीत होता है कि इनके स्मृति-पुराणादि प्रमाणो के ऊपर इतना अधिक निर्भर रहने के कारण, अद्वैतवादी ही क्रमशः विशुद्ध वेदान्ती कहे जाने लगे।

जो हो, हमने प्रथम ही यह दिखा दिया है कि वेदान्त शब्द से भारत के समस्त धर्म समष्टिरूप से समझे जाते हैं, और यह

वेदान्त वेदो का एक भाग होने के कारण सभी लोगों द्वारा स्वीकृत हमारा सब से प्राचीन ग्रन्थ है। आधुनिक विद्वानों के विचार जो भी हों, एक हिन्दू यह विश्वास करने को कभी तैयार नहीं है कि वेदों का कुछ अंश एक समय मे और कुछ अन्य समय में लिखा गया है। उनका अब भी यह दृढ़ विश्वास है कि समग्र वेद एक ही समय में उत्पन्न हुए थे, अथवा, यदि मैं कह सकूं, उनकी सृष्टि कभी नही हुई, वे चिरकाल से सृष्टिकर्ता के मन मे वर्तमान थे। 'वेदान्त' शब्द से मेरा यही अभिप्राय है और भारत के द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद और अद्वैतवाद सभी उसके अन्तर्गत हैं। सम्भवतः हम बौद्ध धर्म, यहाँ तक कि जैन धर्म के भी अंशविशेषो को ग्रहण कर सकते हैं, यदि उक्त धर्मावलम्बी अनुग्रहपूर्वक हमारे मध्य मे आने को सहमत हों। हमारा हृदय पर्याप्त प्रशस्त है, हम उनको ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत हैं; वे ही आने को राजी नही हैं। हम उनको ग्रहण करने के लिए सदा प्रस्तुत हैं; कारण यह है कि विशिष्ट रूप से विश्लेषण करने पर तुम देखोगे कि बौद्ध धर्म का सार भाग इन्हीं उपनिषदों से लिया गया है; यहाँ तक कि, बौद्ध धर्म का तथाकथित अद्भुत और महान् आचार-शास्त्र किसी न किसी उपनिषद् मे ज्यों का त्यों विद्यमान है। इसी प्रकार जैन धर्म के उत्तमोत्तम सिद्धान्त भी उपनिषदों मे वर्तमान है; केवल असंगत और मनमानी बातों को छोड़कर इसके पश्चात् भारतीय धार्मिक विचारों का जो समस्त विकास हुआ है, उसका बीज हम उपनिषदों मे देखते हैं। कभी कभी इस प्रकार का निर्मूल अभियोग लगाया जाता है कि उपनिषदों मे भक्ति का आदर्श नही है। जिन्होंने उपनिषदों का अध्ययन अच्छी तरह किया है, वे जानते हैं कि यह अभियोग

बिलकुल सत्य नही है। प्रत्येक उपनिषद् मे अनुसन्धान करने से यथेष्ट भक्ति का विषय पाया जाता है, किन्तु इनमे से अधिकांश भाव, जो परवर्ती काल मे पुराण तथा अन्यान्य स्मृतियों मे इतनी पूर्णता से विकसित पाये जाते हैं, उपनिषदो मे बीजरूप मे विद्यमान हैं। उपनिषदों मे मानो उसका ढाँचा, उसकी रूपरेखा ही वर्तमान है। किसी किसी पुराण मे यह ढाँचा पूर्ण किया गया है, किन्तु कोई भी ऐसा पूर्ण विकसित भारतीय आदर्श नही है, जिसका मूल स्रोत उपनिषदों मे खोजा न जा सकता हो। बिना उपनिषद्-विद्या के विशेष ज्ञान के अनेक व्यक्तियो ने भक्तिवाद को विदेशी स्रोत से विकसित सिद्ध करने की हास्यास्पद चेष्टा की है, किन्तु तुम सब जानते हो कि उनकी सम्पूर्ण चेष्टा विफल हुई है। तुम्हें जितनी भक्ति की आवश्यकता है, सब उपनिषदों मे ही क्यों, सहिता पर्यन्त सब मे विद्यमान है—उपासना, प्रेम, भक्ति और जो कुछ आवश्यक है सब विद्यमान है। केवल भक्ति का आदर्श अधिकाधिक उच्च होता रहा है। सहिता के भागों मे भय और क्लेशयुक्त धर्म के चिह्न पाये जाते है। संहिता के किसी किसी स्थल पर देखा जाता है कि उपासक वरुण अथवा अन्य किसी देवता के सम्मुख भय से कॉप रहा है। और कई स्थलों पर यह भी देखा जाता है कि उपासक अपने को पापी समझकर अधिक क्लेश पाते है। किन्तु उपनिषदों मे इस प्रकार के वर्णन के लिए कोई स्थान नही है। उपनिषदों मे भय का धर्म नहीं है, उपनिषदों मे प्रेम और ज्ञान का धर्म है।

ये उपनिषद् ही हमारे शास्त्र है। इनकी व्याख्या भिन्न भिन्न रूप से हुई है और मै तुमसे पहले कह चुका हूँ कि जहाँ परवर्ती पौराणिक ग्रन्थों और वेदों मे मतभेद होता है, वहाँ

पुराणों के मत को अग्राह्य कर वेदो का मत ग्रहण करना पड़ेगा। किन्तु कार्यरूप मे हममें से नव्वे प्रतिशत मनुष्य पौराणिक और शेप दस प्रतिशत वैदिक है, और इतने भी है या नही, इसमे भी सन्देह है। साथ ही हम यह भी देखते हैं कि हमारे बीच नाना प्रकार के अत्यन्त विरोधी आचार भी विद्यमान हैं—हमारे समाज में ऐसे भी धार्मिक विचार प्रचलित हैं, जिनका हिन्दू शास्त्रों में कोई प्रमाण नही है। शास्त्रों का अध्ययन करके हमें यह देखकर आश्चर्य होता है कि हमारे देश मे अनेक स्थानों पर ऐसे कई आचार प्रचलित हैं, जिनका प्रमाण वेद, स्मृति अथवा पुराण आदि में कही भी नही पाया जाता, वे केवल लोकाचार हैं। तथापि प्रत्येक अबोध ग्रामवासी सोचता है कि यदि उसका ग्राम्य आचार उठ जाए, तो वह हिन्दू नहीं रह सकता। उसकी धारणा यही है कि वेदान्त धर्म और इस प्रकार के समस्त क्षुद्र लोकाचार परस्पर घुल-मिलकर एकरूप हो गये हैं। शास्त्रों का अध्ययन करने पर भी वे नही समझ सकते कि वे जो करते है, उसमे शास्त्रों की सम्मति नहीं है। उनके लिए यह समझना बड़ा कठिन होता है कि ऐसे समस्त आचारों का परित्याग करने से उनकी कुछ क्षति नही होगी, वरन् इससे वे अधिक अच्छे मनुष्य बनेगे। इसके अतिरिक्त एक और कठिनाई है—हमारे शास्त्र बहुत विस्तृत हैं। पतंजलिप्रणीत 'महाभाष्य' नामक भाषाविज्ञान ग्रन्थ मे लिखा है कि सामवेद की सहस्र शाखाएँ थी। वे सब कहाँ हैं? कोई नही जानता। प्रत्येक वेद का यही हाल है। इन समस्त ग्रन्थों के अधिकांश का लोप हो गया है, सामान्य अंश ही हमारे निकट वर्तमान हैं। एक एक ऋषिपरिवार ने एक एक शाखा का भार ग्रहण किया

था। इन परिवारों मे से अधिकांशों का स्वाभाविक नियम के अनुसार वंशलोप हो गया, अथवा वे विदेशी अत्याचार से मारे गये या अन्य कारणों से उनका नाश हो गया। और उन्ही के साथ साथ जिस वेद की शाखाविशेष की रक्षा का भार उन्होंने ग्रहण किया था, उसका भी लोप हो गया। यह बात हमको विशेष रूप से स्मरण रखनी चाहिए, कारण यह है कि जो कोई नये विषय का प्रचार अथवा वेदो के विरोधी भी किसी विषय का समर्थन करना चाहते है, उनके लिए यह युक्ति प्रधान सहायक है। जब भारत मे श्रुति और लोकाचार को लेकर तर्क होता है अथवा जब यह सिद्ध किया जाता है कि यह लोकाचार श्रुति-विरुद्ध है, तब दूसरा पक्ष यही उत्तर देता है,—नही, यह श्रुति-विरुद्ध नही है, यह श्रुति की उस शाखा मे था, जिसका इस समय लोप हो गया है, अतः यह प्रथा भी वेद-सम्मत है। शास्त्रों की ऐसी समस्त टीका और टिप्पणियो मे किसी ऐसे सूत्र को पाना वास्तव मे बड़ा कठिन है, जो सब मे समान रूप से मिलता हो। किन्तु हमको इस बात का सहज ही मे विश्वास हो जाता है कि इन नाना प्रकार के विभागो तथा उपविभागो में कही न कही अवश्य ही कोई सम्मिलित भूमि अन्तर्निहित है। भवनो के ये छोटे छोटे खण्ड अवश्य किसी विशेष आदर्श योजना तथा सामंजस्य के आधार पर निर्मित किये गये होगे। इस आपाततः निराशा-जनक प्रतीत होनेवाले भ्रमजाल के, जिसको हम अपना धर्म कहते है, मूल मे अवश्य कोई न कोई एक समन्वय निहित है। अन्यथा यह इतने समय तक कदापि खडा नही रह सकता था, यह अब तक रक्षित नही रह सकता था।

अपने भाष्यकारो के भाष्यो को देखने से हमे एक दूसरी

कठिनाई का सामना करना पड़ता है। अद्वैतवादी भाष्यकार जब अद्वैतसम्बन्धी श्रुति की व्याख्या करता है, उस समय वह उसके वैसे ही भाव रहने देता है, किन्तु वही भाष्यकार जब द्वैतभावात्मक सूत्रों की व्याख्या करने में प्रवृत्त होता है, उस समय वह उसके शब्दों की खींचातानी करके अद्‌भुत अर्थ निकालता है। भाष्यकारों ने समय समय पर अपना अभीष्ट अर्थ व्यक्त करने के लिए 'अजा' (जन्मरहित) शब्द का अर्थ 'बकरी' भी किया है—कैसा अद्‌भुत परिवर्तन है! इसी प्रकार, यहाँ तक कि इससे भी बुरी तरह, द्वैतवादी भाष्यकारों ने भी श्रुति की व्याख्या की है। जहाँ उनको द्वैत के अनुकूल श्रुति मिली है, उसको उन्होंने सुरक्षित रखा है, किन्तु जहाँ भी अद्वैतवाद के अनुसार पाठ आया है, वहीं उन्होंने उस श्रुति के अंश की मनमाने ढंग से विकृत व्याख्या की है। यह संस्कृत भाषा इतनी जटिल है, वैदिक संस्कृत इतनी प्राचीन है, संस्कृत भाषाशास्त्र इतना पूर्ण है कि एक शब्द के अर्थ के सम्बन्ध मे युग-युगान्तर तक तर्क चल सकता है। यदि कोई पण्डित चाहे तो वह किसी व्यक्ति की बकवाद को भी युक्तिबल से अथवा शास्त्र और व्याकरण के नियम उद्‌धृत करके शुद्ध संस्कृत सिद्ध कर सकता है। उपनिषदों को समझने के मार्ग मे इस प्रकार की कई विघ्न-बाधाएँ उपस्थित होतीं हैं। विधाता की इच्छा से मुझे एक ऐसे व्यक्ति के साथ रहने का अवसर प्राप्त हुआ था जो जैसे ही पक्के द्वैतवादी थे, वैसे ही अद्वैतवादी भी थे, जैसे ही परम भक्त थे, वैसे ही ज्ञानी भी थे। इसी व्यक्ति के साथ रहने के फलस्वरूप प्रथम बार मेरे मन में आया कि उपनिषदों और अन्यान्य शास्त्रों को केवल अन्धविश्वास से भाष्यकारों का अनुसरण न करके, स्वाधीन

और उत्तम रूप से समझना चाहिए। और मैं अपने मत में तथा अपने अनुसन्धान में इसी सिद्धान्त पर पहुँचा हूँ कि ये समस्त शास्त्र परस्परविरोधी नही हैं; इसलिए हमको शास्त्रों की विकृत व्याख्या करने का कोई प्रयोजन नहीं होना चाहिए। समस्त श्रुतिवाक्य अत्यन्त मनोरम हैं, अत्यन्त अद्‌भुत हैं और वे परस्परविरोधी नही है, उनमे अपूर्व सामजस्य विद्यमान है, एक तत्त्व मानो दूसरे का सोपानस्वरूप है। मैंने इन समस्त उपनिषदों मे एक यही भाव देखा है कि प्रथम द्वैत भाव का वर्णन उपासना आदि से आरम्भ हुआ है, अन्त मे अपूर्व अद्वैत भाव के उच्छ्‌वास मे वह समाप्त हुआ है।

इसीलिए अब मै इसी व्यक्ति के जीवन के प्रकाश मे देखता हूँ कि द्वैतवादी और अद्वैतवादियो को परस्पर विवाद करने की कोई आवश्यकता नही है, दोनों का ही राष्ट्रीय जीवन म विशेष स्थान है। द्वैतवादी का रहना आवश्यक है; अद्वैतवादी के समान द्वैतवादी का भी राष्ट्रीय धार्मिक जीवन मे विशेष स्थान है। एक के विना दूसरा नही रह सकता; एक दूसरे का पूरक है; एक मानो गृह है, दूसरा छत। एक मानो मूल है और दूसरा फलस्वरूप। इसलिए उपनिषदो का मनमाना विकृत अर्थ करने की चेष्टा को मै अत्यन्त हास्यास्पद समझता हूँ। कारण, मैं देखता हूँ कि उनकी भाषा ही अपूर्व है। श्रेष्ठतम दर्शन रूप मे उनके गौरव के बिना भी, मानवजाति के मुक्तिपथ-प्रदर्शक धर्मविज्ञान रूप मे उनके अद्‌भुत गौरव को छोड़ देने पर भी, उपनिषदों के साहित्य मे उदात्त भावों का ऐसा अत्यन्त अपूर्व चित्रण है, जैसा संसार भर मे और कही नहीं है। यहीं मानवीय मन के उस प्रबल विशेषत्व का, अन्तर्दृष्टिपरायण, अन्तःप्रेरणा-

पूर्ण उस हिन्दू मन का विशेष परिचय पाया जाता है। अन्यत्र अन्य जातियों के भीतर भी इस उदात्त भाव के चित्र को अंकित करने की चेष्टा देखी जाती है; किन्तु प्रायः सर्वत्र ही तुम देखोगे कि उनका आदर्श बाह्य प्रकृति के महान् भाव को ग्रहण करना है। उदाहरणस्वरूप मिल्टन, दान्ते, होमर अथवा अन्य किसी पाश्चात्य कवि को लिया जा सकता है। उनके काव्यों मे स्थान स्थान पर उदात्त भावव्यंजक अपूर्व स्थल हैं, किन्तु उनमें सर्वत्र ही बाह्य प्रकृति की अनन्तता को इन्द्रियों के माध्यम से ग्रहण करने की चेष्टा है——बाह्य प्रकृति के अनन्त विस्तार, देश की अनन्तता के आदर्श को प्राप्त करने का प्रयत्न है। हम वेदों के संहिताभाग मे भी यही चेष्टा देखते है। कुछ अपूर्व ऋचाओं मे जहाँ सृष्टि का वर्णन है, बाह्य प्रकृति के विस्तार का उदात्त भाव, देश का अनन्तत्व, अभिव्यक्ति की उच्चतम भूमियाँ उपलब्ध कर सका है। किन्तु उन्होंने शीघ्र ही जान लिया कि इन उपायों से अनन्तत्व को प्राप्त नही किया जा सकता। उन्होंने समझ लिया कि अपने मन के जिन सब भावो को वे भाषा में व्यक्त करने की चेष्टा कर रहे थे, उनको अनन्त देश, अनन्त विस्तार और अनन्त बाह्य प्रकृति प्रकाशित करने मे असमर्थ है। तब उन्होंने जगत्-समस्या की व्याख्या के लिए अन्य मार्गों का अवलम्बन किया। उपनिषदों की भाषा ने नया रूप धारण किया। उपनिषदों की भाषा एक प्रकार से नेति-वाचक है, स्थान स्थान पर अस्फुट है, मानो वह तुम्हें अतीन्द्रिय राज्य मे ले जाने की चेष्टा करती है; केवल तुम्हे एक ऐसी वस्तु दिखा देती है, जिसे तुम ग्रहण नही कर सकते, जिसका तुम इन्द्रियों से बोध नही कर पाते, फिर भी उस वस्तु के सम्बन्ध मे तुमको साथ

ही यह निश्चय भी है कि उसका अस्तित्व है। संसार मे ऐसा स्थल कहाँ है जिसके साथ इस श्लोक की तुलना हो सके ?—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम् ।
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ॥[1]

—'वहाँ सूर्य की किरण नहीं पहुँचती, वहाँ चन्द्रमा और तारे भी नही चमकते, बिजली भी उस स्थान को प्रकाशित नही कर सकती, इस सामान्य अग्नि का तो कहना ही क्या ?'

पुनश्च, समस्त संसार के समग्र दार्शनिक भाव की ऐसी अत्यन्त पूर्ण अभिव्यक्ति संसार मे और कहाँ पाओगे ? हिन्दू जाति के समग्र चिन्तन का साराश, मानवजाति की मोक्षाकांक्षा की समस्त कल्पना जिस प्रकार अद्भुत भाषा मे अकित हुई है, जिस प्रकार अपूर्व रूपक मे वर्णित हुई है, ऐसी तुम और कहाँ पाओगे ? यथा :

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः ।
जुष्ट यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥[2]

—एक ही वृक्ष के ऊपर सुन्दर पंखवाले दो पक्षी रहते हैं—दोनों वडे मित्र हैं; उनमे एक उसी वृक्ष के फल खाता है, दूसरा फल न खाकर स्थिर भाव से चुपचाप बैठा है। नीचे की शाखा मे बैठा पक्षी कभी मीठे, कभी कड़वे फल खाता है—और इसी कारण कभी सुखी अथवा कभी दु.खी होता है; किन्तु ऊपर की शाखा मे बैठा हुआ पक्षी स्थिर और गम्भीर है, वह अच्छे-वुरे कोई फल नहीं खाता; वह सुख और दु.ख की परवाह नही

१. कठोपनिषद् २।२।१५ २. मुण्डकोपनिषद् ३।१।१–३

करता; वह अपनी ही महिमा मे मग्न है। ये दोनों पक्षी जीवात्मा और परमात्मा है। मनुष्य इस जीवन के मीठे और कड़वे फल खाता है, वह धन की खोज में मस्त है, वह इन्द्रियसुख के पीछे दौड़ता है; सांसारिक क्षणिक वृथा सुख के लिए उन्मत्त होकर पागल के समान दौड़ता है। उपनिषदों ने एक और स्थान पर सारथि और उसके असंयत दुष्ट घोड़ों के साथ मनुष्य के इस इन्द्रिय-सुखान्वेषण की तुलना की है। वृथा सुख के अनुसन्धान की चेष्टा मे मनुष्य का जीवन ऐसा ही बीतता है। बच्चे कितने सुनहले स्वप्न देखते हैं; अन्ततः केवल यह जानने के लिए कि ये निरर्थक हैं। वृद्धावस्था मे वे अपने अतीत कर्मो की पुनरावृत्ति करते हैं, और फिर भी नहीं जानते कि इस जंजाल से कैसे निकला जाए। संसार यही है। किन्तु सभी मनुष्यों के जीवन मे समय समय पर ऐसे स्वर्णिम क्षण आते हैं—मनुष्य के अत्यन्त शोक में, यहाँ तक कि महा आनन्द के समय ऐसे उत्तम सुअवसर आ उपस्थित होते हैं, जब सूर्य के प्रकाश को छिपानेवाला मेघखण्ड मानो थोड़ी देर के लिए हट जाता है। उस समय इस क्षणकाल के लिए वह अपने इस सीमाबद्ध भाव के परे उस सर्वातीत सत्ता की एक झलक पा जाता है जो अत्यन्त दूर है, जो पचेन्द्रियाबद्ध जीवन से परे बहुत दूर है, जो इस संसार के व्यर्थ भोग और इसके सुख-दुःख से परे बहुत ही दूर है, जो प्रकृति के उस पार दूर है, जो इहलोक अथवा परलोक मे हम जिस सुखभोग की कल्पना करते हैं उससे भी बहुत दूर है, जो धन, यश और सन्तान की तृष्णा से भी परे बहुत दूर है। मनुष्य क्षणकाल के लिए दिव्य दृश्य देखकर स्थिर होता है—और देखता है कि दूसरा पक्षी शान्त और महिमामय है, वह

खट्टे या मीठे कोई भी फल नही खाता, वह अपनी महिमा मे स्वयं आत्मतृप्त है, जैसा गीता मे कहा है :

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ।। *

—'जो आत्मा मे रत है, जो आत्मतृप्त है और जो आत्मा मे ही सन्तुष्ट है, उसके करने के लिए और कौन कार्य शेष रह गया है ?'

वह वृथा कार्य करके क्यों समय गँवाए ? एक बार अचानक ब्रह्मदर्शन प्राप्त करने के पश्चात् मनुष्य पुनः भूल जाता है, पुनः जीवन के खट्टे और मीठे फल खाता है—और उस समय उसको कुछ भी स्मरण नहीं रहता। कदाचित् कुछ दिनों के पश्चात् वह पुनः ब्रह्म के दर्शन प्राप्त करता है और जितनी चोट खाता है, उतना ही नीचे का पक्षी ऊपर बैठे हुए पक्षी के निकट आता जाता है। यदि वह सौभाग्य से संसार के तीव्र आघात पाता रहे, तो वह अपने साथी, अपने प्राण, अपने सखा उसी दूसरे पक्षी के निकट क्रमशः आता है। और वह जितना ही निकट आता है, उतना ही देखता है कि उस ऊपर बैठे हुए पक्षी की देह की ज्योति आकार उसके पंखों के चारों ओर खेल रही है। और वह जितना ही निकट आता जाता है, उतना ही रूपान्तरण घटित होता है। धीरे धीरे वह जब अत्यन्त निकट पहुँच जाता है, तब देखता है कि मानो वह क्रमशः मिटता जा रहा है—अन्त मे उसका पूर्ण रूप से लोप हो जाता है। उस समय वह समझता है कि उसका पृथक् अस्तित्व भी न था, वह उसी हिलते हुए पत्तों के भीतर शान्त और गम्भीर भाव से बैठे हुए दूसरे पक्षी का प्रतिबिम्ब मात्र था। उस समय वह जानता है

* गीता, ३।१७

कि वह स्वयं ही वही ऊपर बैठा हुआ पक्षी है, वह सदा से शान्त भाव में बैठा हुआ था—यह उसी की महिमा है। वह निर्भय हो जाता है, उस समय वह सम्पूर्ण रूप से तृप्त होकर धीर और शान्त भाव में निमग्न रहता है। इसी रूपक मे उपनिषद् द्वैत भाव से आरम्भ कर पूर्ण अद्वैत भाव में हमें ले जाते है।

उपनिषदों के अपूर्व कवित्व, उदात्त चित्रण तथा उच्चतम भावसमूह दिखलाने के लिए अनन्त उदाहरण उद्धृत किये जा सकते हैं, किन्तु इस व्याख्यान मे इसके लिए समय नही है। तो भी मै एक बात और कहूँगा—उपनिषदों की भाषा और भाव की गति सरल है, उनकी प्रत्येक बात तलवार की धार के समान, हथौड़े की चोट के समान साक्षात् भाव से हृदय मे आघात करती है। उनके अर्थ समझने मे कुछ भी भूल होने की सम्भावना नही—उस संगीत के प्रत्येक सुर मे शक्ति है, और वह हृदय पर पूरा असर करता है। उनमे अस्पष्टता नहीं, असम्बद्ध कथन नहीं, किसी प्रकार की जटिलता नही, जिससे दिमाग घूम जाए। उनमें अवनति के चिह्न नहीं हैं, अन्योक्तियों द्वारा वर्णन की भी ज्यादा चेष्टा नहीं की गयी है। उपनिषदों मे इस प्रकार के वर्णन भी नही मिलेंगे कि विशेषण के पश्चात् विशेषण देकर क्रमागत भाव को जटिल करने से प्रकृत विषय का पता न लगे, दिमाग चक्कर खाने लगे, और उस साहित्यिक गोरखधंधा के बाहर निकलने का उपाय ही न सूझे। यदि यह मानवप्रणीत है, तो यह एक ऐसी जाति का साहित्य है, जिसमे अभी अपनी जातीय तेजस्विता का ह्रास नहीं हुआ।

उपनिषदों का प्रत्येक पृष्ठ मुझे शक्ति का सन्देश देता है। यह विषय विशेष रूप से स्मरण रखने योग्य है, समस्त जीवन

मे मैंने यही महाशिक्षा प्राप्त की है—उपनिषद् कहते हैं, हे मानव, तेजस्वी बनो, वीर्यवान् बनो, दुर्बलता को त्यागो। मनुष्य प्रश्न करता है, क्या मनुष्य मे दुर्बलता नही है? उपनिषद् कहते हैं, अवश्य है, किन्तु अधिक दुर्बलता द्वारा क्या यह दुर्बलता दूर होगी? क्या तुम मैल से मैल धोने का प्रयत्न करोगे? क्या पाप के द्वारा पाप अथवा निर्बलता द्वारा निर्बलता दूर होती है? उपनिषद् कहते हैं, हे मनुष्य, तेजस्वी बनो, वीर्यवान् बनो, उठकर खड़े हो जाओ। जगत् के साहित्य मे केवल इन्ही उपनिषदों मे 'अभीः' (भयशून्य) यह शब्द बार बार व्यवहृत हुआ है—और संसार के किसी शास्त्र मे ईश्वर अथवा मानव के प्रति 'अभी.'—'भयशून्य' यह विशेषण प्रयुक्त नहीं हुआ है। 'अभीः'—निर्भय बनो! मेरे मन मे अत्यन्त अतीत काल के उस पाश्चात्य सम्राट् सिकन्दर का चित्र उदित होता है और मै देख रहा हूँ—वह महाप्रतापी सम्राट् सिन्धुनद के तट पर खड़ा होकर अरण्यवासी, शिलाखण्ड पर बैठे हुए वृद्ध, नग्न, हमारे ही एक संन्यासी के साथ बात कर रहा है। सम्राट् संन्यासी के अपूर्व ज्ञान से विस्मित होता है और उसको अर्थ और मान का प्रलोभन दिखाकर यूनान देश मे आने के लिए निमन्त्रित करता है। पर वह व्यक्ति उसके स्वर्ण पर मुसकराता है, उसके प्रलोभनो पर मुसकराता है और अस्वीकार कर देता है। और तब सम्राट् ने अपने अधिकार-बल से कहा, "यदि आप नहीं आएँगे तो मै आपको मार डालूँगा।" यह सुनकर संन्यासी ने खिलखिलाकर कहा, "तुमने इस समय जसा मिथ्या भाषण किया, जीवन मे ऐसा कभी नहीं किया। मुझको कौन मार सकता है? जड जगत् के सम्राट्, तुम मुझको मारोगे? कदापि

नहीं! मैं चैतन्यस्वरूप, अज और अक्षय हूँ! मेरा कभी जन्म नहीं हुआ और न कभी मेरी मृत्यु हो सकती है! मैं अनन्त, सर्वव्यापी और सर्वज्ञ हूँ। क्या तुम मुझको मारोगे? निरे बच्चे हो तुम!" यही सच्चा तेज है, यही सच्चा वीर्य है! हे बन्धु-गण, हे स्वदेशवासियो, मैं जितना ही उपनिषदों को पढ़ता हूँ, उतना ही मैं तुम्हारे लिए आँसू बहाता हूँ; क्योंकि उपनिषदों में वर्णित इस तेजस्विता को ही हमको विशेष रूप से जीवन में चरितार्थ करना आवश्यक हो गया है। शक्ति, शक्ति—यही हमको चाहिए, हमको शक्ति की बड़ी आवश्यकता है। कौन प्रदान करेगा हमको शक्ति? हमको दुर्बल करने के लिए सहस्रों विषय हैं, कहानियाँ भी बहुत हैं। हमारे प्रत्येक पुराण में इतनी कहानियाँ हैं कि जिससे संसार में जितने पुस्तकालय हैं, उनका तीन चौथाई भाग पूर्ण हो सकता है। जो हमारी जाति को शक्तिहीन कर सकती हैं, ऐसी दुर्बलताओं का प्रवेश हममें विगत एक हजार वर्ष से ही हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है, विगत एक हजार वर्ष से हमारे जातीय जीवन का यही एकमात्र लक्ष्य था कि किस प्रकार हम अपने को दुर्बल से दुर्बलतर बना सकेंगे। अन्त में हम वास्तव में हर एक के पैर के पास रेंगनेवाले ऐसे केंचुओं के समान हो गये हैं कि इस समय जो चाहे वही हमको कुचल सकता है। हे बन्धुगण, तुम्हारी और मेरी नसों में एक ही रक्त का प्रवाह हो रहा है, तुम्हारा जीवन-मरण मेरा भी जीवन-मरण है। मैं तुमसे पूर्वोक्त कारणों से कहता हूँ कि हमको शक्ति, केवल शक्ति ही चाहिए। और उपनिषद् शक्ति की विशाल खान हैं। उपनिषदों में ऐसी प्रचुर शक्ति विद्यमान है कि वे समस्त संसार को तेजस्वी बना सकते हैं। उनके द्वारा

समस्त संसार पुनरुज्जीवित, सशक्त और वीर्यसम्पन्न हो सकता है। समस्त जातियो को, सकल मतो को, भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के दुर्बल, दु.खी, पददलित लोगों को स्वय अपने पैरों खडे होकर मुक्त होने के लिए वे उच्च स्वर मे उद्घोष कर रहे हैं। मुक्ति अथवा स्वाधीनता—दैहिक स्वाधीनता, मानसिक स्वाधीनता, आध्यात्मिक स्वाधीनता यही उपनिषदों के मूल मन्त्र हैं।

ससार भर मे ये ही एकमात्र शास्त्र हैं, जिनमे उद्धार (salvation) का वर्णन नही, किन्तु मुक्ति का वर्णन है। प्रकृति के बन्धन से मुक्त हो जाओ, दुर्बलता से मुक्त हो जाओ। और उपनिषद् तुमको यह भी बतलाते हैं कि यह मुक्ति तुममे पहले से ही विद्यमान है। उपनिषदों के उपदेश की यह और भी एक विशेषता है। तुम द्वैतवादी हो—कुछ चिन्ता नही, किन्तु तुमको यह स्वीकार करना ही होगा कि आत्मा स्वभाव ही से पूर्णस्वरूप है, केवल कुछ कार्यो के द्वारा वह संकुचित हो गयी है। आधुनिक विकासवादी (evolutionist) जिसको क्रमविकास (evolution) और क्रमसंकोच (atavism) कहते हैं, रामानुज का सकोच और विकास का सिद्धान्त भी ठीक ऐसा ही है। आत्मा स्वाभाविक पूर्णता से भ्रष्ट होकर मानो संकोच को प्राप्त होती है, उसकी शक्ति अव्यक्त भाव धारण करती है; सत्कर्म और अच्छे विचारो द्वारा वह पुन: विकास को प्राप्त होती है और उसी समय उसकी स्वाभाविक पूर्णता प्रकट हो जाती है। अद्वैतवादी के साथ द्वैतवादी का इतना ही मतभेद है कि अद्वैतवादी आत्मा के विकास को नही, किन्तु प्रकृति के विकास को स्वीकार करता है। उदाहरणार्थ, एक परदा है और इस परदे मे एक छोटा सूराख। मै इस परदे के भीतर से इस

भारी जनसमुदाय को देख रहा हूँ। मै प्रथम केवल थोड़ेसे मनुष्यों को देख सकूँगा। मान लो, छेद बढ़ने लगा, छिद्र जितना ही बड़ा होगा, उतना ही मै इन एकत्र व्यक्तियों मे से अधिकांश को देख सकूँगा। अन्त में छिद्र बढ़ते बढ़ते परदा और छिद्र एक हो जाएँगे; तब इस स्थिति में तुम्हारे और मेरे बीच कुछ भी नहीं रह जाएगा। यहाँ तुममे और मुझमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। जो कुछ परिवर्तन हुआ, वह परदे मे ही हुआ। तुम आरम्भ से अन्त तक एक से थे, केवल परदे मे ही परिवर्तन हुआ था। विकास के सम्बन्ध मे अद्वैतवादियों का यही मत है—प्रकृति का विकास और आत्मा की आभ्यन्तर अभिव्यक्ति। आत्मा किसी प्रकार भी संकोच को प्राप्त नही हो सकती। यह अपरिवर्तनशील और अनन्त है। वह मानो मायारूपी परदे से ढँकी हुई है—जितना ही यह मायारूपी परदा क्षीण होता जाता है, उतनी ही आत्मा की स्वयंसिद्ध स्वाभाविक महिमा अभिव्यक्त होती है और क्रमशः वह अधिकाधिक प्रकाशमान होती है। संसार इसी एक महान् तत्त्व को भारत से सीखने की अपेक्षा कर रहा है। वे चाहे जो कहें, वे कितना ही अहंकार करने की चेष्टा करे, पर वे क्रमशः दिन-प्रतिदिन जान लेंगे कि बिना इस तत्त्व का स्वीकार किये कोई समाज टिक नहीं सकता। क्या तुम नही देख रहे हो कि समस्त पदार्थो मे कैसा भीषण परिवर्तन हो रहा है? क्या तुम नहीं जानते कि पहले यह प्रथा थी कि जब तक कोई वस्तु अच्छी कहकर प्रमाणित न हो जाए तब तक उसे निश्चित रूप से बुरी माना जाए? शिक्षाप्रणाली मे, अपराधियों की दण्ड-व्यवस्था मे, पागलों की चिकित्सा मे, यहाँ तक कि साधारण रोग की चिकित्सा पर्यन्त सब मे इसी प्राचीन नियम को लागू

किया जाता था। आधुनिक नियम क्या है ? आधुनिक नियम के अनुसार शरीर स्वभाव ही से स्वस्थ है, वह अपनी प्रकृति से ही रोगों को दूर करता है। औषधि अधिक से अधिक शरीर मे सार पदार्थो के संचय मे सहायता कर सकती है। अपराधियो के सम्बन्ध मे यह आधुनिक नियम क्या कहता है ? आधुनिक नियम यह स्वीकार करता है कि कोई अपराधी, वह कितना ही हीन क्यो न हो, उसमे भी ईश्वरत्व है, जिसका कभी परिवर्तन नही होता है और इसलिए अपराधियों के प्रति हमको तदनुरूप व्यवहार करना चाहिए। अब पहले के ये सब भाव बदल रहे है और अब सुधारालय तथा प्रायश्चित्त-गृहो की स्थापना की जा रही है। ऐसा ही सर्वत्र है। जानकर कहो अथवा बिना जाने, यह भारतीय भाव कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर ईश्वरत्व वर्तमान है, नाना भावों से व्यक्त हो रहा है। और तुम्हारे शास्त्रों मे ही इसकी व्याख्या है, उनको यह स्वीकार करना पड़ेगा। मनुष्य के प्रति मनुष्य के व्यवहार मे महान् परिवर्तन हो जाएगा और मनुष्य की दुर्बलताओं को बतलानेवाले ये प्राचीन विचार नही रहेगे। इसी शताब्दी मे इन भावो का लोप हो जाएगा। इस समय लोग हमारे विरोध मे खड़े होकर हमारी आलोचना कर सकते है। 'संसार मे पाप नही है' इस घोर पैशाचिक सिद्धान्त का मै प्रचार कर रहा हूँ ऐसा कहकर ससार के प्रत्येक भाग मे मेरी निन्दा की गयी है। वहुत अच्छा, किन्तु इस समय जिन्होने मुझको वुरा-भला कहा है, उनके ही वशज मुझको अधर्म का प्रचारक नही, किन्तु धर्म का प्रचारक कहकर आशीर्वाद देगे। मै धर्म का प्रचारक हूँ, अधर्म का नही। मैने अज्ञानान्धकार का प्रचार नही किया, किन्तु ज्ञानप्रकाश के विस्तार की चेष्टा की है, इसे मै

अपना गौरव समझता हूँ।

समग्र ससार का अखण्डत्व, जिसको ग्रहण करने के लिए संसार प्रतीक्षा कर रहा है, हमारे उपनिषदों का दूसरा महान् भाव है। प्राचीन काल की हदबन्दी और पार्थक्य इस समय तेजी से कम होते जा रहे हैं। बिजली और भाप की शक्ति, यातायात तथा संचार की सुविधाएँ बढ़ाकर संसार के विभिन्न देशो का परस्पर परिचय करा रही है। इसके फलस्वरूप, हम हिन्दू इस समय अपने देश के अतिरिक्त अन्य सब देशों को केवल भूत-प्रेत, राक्षस, पिशाचों से पूर्ण नही देख रहे हैं और ईसाई-धर्म-प्रधान देशों के लोग भी नहीं कहते कि भारत मे केवल नरमांसभोजी और असभ्य लोग रहते है। अपने देश से बाहर जाकर हम देखते है कि वहाँ भी बन्धुभाव से पूर्ण मानव हमारी सहायता के लिए अपना हाथ बढ़ा रहा है और मुख से हमें प्रोत्साहित कर रहा है। जिस देश मे हमने जन्म लिया है उसकी अपेक्षा कभी कभी अन्य देशो मे अधिक अच्छे लोग मिल जाते है। जब वे यहाँ आते है, वे भी यहाँ वैसा ही भ्रातृभाव, प्रोत्साहन और सहानुभूति पाते हैं। हमारे उपनिषदों ने ठीक ही कहा है, अज्ञान ही सर्व प्रकार के दुःखों का कारण है। सामाजिक अथवा आध्यात्मिक, अपने जीवन को चाहे जिस अवस्था में देखो, यह बिलकुल सही उतरता है। अज्ञान से ही हम परस्पर घृणा करते है, अज्ञान से ही हम एक दूसरे को जानते नही और इसलिए प्यार नही करते। जब हम एक दूसरे को जान लेगे, तो प्रेम का उदय होगा। प्रेम का उदय निश्चित है; क्योंकि क्या हम सब एक नही है ? इसलिए हम देखते हैं कि चेष्टा न करने पर भी, हम सब का एकत्वभाव स्वभाव ही

से आ जाता है। यहाँ तक कि राजनीति और समाजनीति के क्षेत्रों मे भी जो समस्याएँ बीस वर्ष पहले केवल राष्ट्रीय थीं, इस समय उनकी मीमासा केवल राष्ट्रीयता के आधार पर ही नही की जा सकती। उक्त समस्याएँ क्रमश. कठिन हो रही हैं और विशाल आकार धारण कर रही हैं। केवल अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर उदार दृष्टि से विचार करने पर ही उनको हल किया जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, अन्तर्राष्ट्रीय संघ, अन्तर्राष्ट्रीय विधान, ये ही आजकल के मूलमन्त्रस्वरूप हैं। सब लोगों के भीतर एकत्वभाव किस प्रकार विस्तृत हो रहा है, यही उसका प्रमाण है। विज्ञान मे भी जड तत्त्व के सम्बन्ध मे ऐसे सार्वभौम भाव ही इस समय आविष्कृत हो रहे है। इस समय तुम समग्र जड वस्तु को, समस्त संसार को एक अखण्ड वस्तुरूप मे, वृहत् जड-समुद्र सा वर्णन करते हो, जिसमे तुम, मै, चन्द्र, सूर्य और शेष सब कुछ, सभी विभिन्न क्षुद्र भँवर मात्र हैं, और कुछ नही। मानसिक दृष्टि से देखने पर वह एक अनन्त विचार-समुद्र प्रतीत होता है, तुम और मै उस विचार-समुद्र के अत्यन्त छोटे छोटे भॅवरों के सदृश हैं। आत्मपरक दृष्टि से देखने पर समग्र जगत् एक अचल, अपरिवर्तनशील सत्ता अर्थात् आत्मा प्रतीत होता है। नैतिकता का स्वर भी आ रहा है और यह भी हमारे ग्रन्थो मे विद्यमान है। नैतिकता की व्याख्या और आचार-शास्त्र के मूल स्रोत के लिए भी संसार व्याकुल है, यह भी हमारे शास्त्रो से ही मिलेगा।

हम भारत मे क्या चाहते है? यदि विदेशियो को इन पदार्थों की आवश्यकता है, तो हमको इनकी आवश्यकता बीस गुनी अधिक है। क्योकि हमारे उपनिषद् कितने ही महत्त्वपूर्ण

क्यो न हों, अन्यान्य जातियो के साथ तुलना म हम अपने पूर्वपुरुष ऋषिगणों पर कितना ही गर्व क्यों न करें, मै तुम लोगों से स्पष्ट भाषा मे कहे देता हूँ कि हम दुर्बल हैं, अत्यन्त दुर्बल हैं। प्रथम तो है हमारी शारीरिक दुर्बलता। यह शारीरिक दुर्बलता कम से कम हमारे एक तिहाई दुःखों का कारण है। हम आलसी हैं, हम कार्य नहीं कर सकते; हम पारस्परिक एकता स्थापित नही कर सकते; हम एक दूसरे से प्रेम नहीं करते, हम बड़े स्वार्थी हैं, हम तीन मनुष्य एकत्र होते ही एक दूसरे से घृणा करते हैं, ईर्ष्या करते हैं। हमारी इस समय ऐसी अवस्था है कि हम पूर्ण रूप से असंगठित है, घोर स्वार्थी हो गये हैं, सैकड़ों शताब्दियों से इसीलिए झगड़ते है कि तिलक इस तरह धारण करना चाहिए या उस तरह। अमुक व्यक्ति की नजर पडने से हमारा भोजन दूषित होगा या नहीं, ऐसी गुरुतर समस्याओं के ऊपर हम बड़े बड़े ग्रन्थ लिखते हैं। पिछली कई शताब्दियों से हमारा यही कारनामा रहा है। जिस जाति के मस्तिष्क की समस्त शक्ति ऐसी अपूर्व सुन्दर समस्याओं और गवेषणाओ में लगी है, उससे किसी उच्च कोटि की सफलता ी क्या आशा की जाए! और क्या हमको अपने पर शर्म भी नही आती? हाँ, कभी कभी हम शर्मिन्दा होते भी हैं। यद्यपि हम उनकी निस्सारता को समझते हैं, पर उनका त्याग नहीं कर पाते। हम अनेक बातें सोचते हैं, किन्तु उनके अनुसार कार्य नहीं कर सकते। इस प्रकार तोते के समान बातें करना हमारा अभ्यास हो गया है—आचरण मे हम बहुत पिछड़े हुए हैं। इसका कारण क्या है? शारीरिक दौर्बल्य। दुर्बल मस्तिष्क कुछ नहीं कर सकता, हमको अपने मस्तिष्क को बलवान् बनाना

होगा। प्रथम तो हमारे युवकों को बलवान् बनना होगा। धर्म पीछे आएगा। हे मेरे युवक बन्धुओ, तुम बलवान् बनो—यही तुम्हारे लिए मेरा उपदेश है। गीतापाठ करने की अपेक्षा तुम्हें फुटबाल खेलने से स्वर्ग-सुख अधिक सुलभ होगा। मैंने अत्यन्त साहसपूर्वक ये बातें कही हैं, और इनको कहना अत्यावश्यक है, कारण मैं तुमको प्यार करता हूँ। मैं जानता हूँ कि कंकड़ कहाँ चुभता है। मैंने कुछ अनुभव प्राप्त किया है। बलवान् शरीर से अथवा सदृढ़ स्नायुओं से तुम गीता को अधिक समझ सकोगे। शरीर में ताजा रक्त होने से तुम कृष्ण की महती प्रतिभा और महान् तेजस्विता को अच्छी तरह समझ सकोगे। जिस समय तुम्हारा शरीर तुम्हारे पैरों के बल दृढ़ भाव से खड़ा होगा, जब तुम अपने को मनुष्य समझोगे, तब तुम उपनिषद् और आत्मा की महिमा भलीभाँति समझोगे। इस तरह वेदान्त को अपनी आवश्यकताओं के अनुसार काम में लगाना होगा।

लोग मेरे अद्वैतवाद के प्रचार से बहुधा खीज जाते हैं। अद्वैतवाद, द्वैतवाद अथवा अन्य किसी वाद का प्रचार करना मेरा उद्देश्य नहीं है। हमें इस समय आवश्यकता है केवल आत्मा की—उसके अपूर्व तत्त्व, उसकी अनन्त शक्ति, अनन्त वीर्य, अनन्त शुद्धता और अनन्त पूर्णता के तत्त्व को जानने की। यदि मेरे कोई सन्तान होती तो मैं उसे जन्म के समय से ही सुनाता 'त्वमसि निरंजनः'। तुमने अवश्य ही पुराण में रानी मदालसा की वह सुन्दर कहानी पढी होगी। उसके सन्तान होते ही वह उसको अपने हाथ से झूले पर रखकर झुलाते हुए उसके निकट गाती थी, 'तुम हो मेरे लाल निरंजन अतिपावन निष्पाप; तुम हो सर्वशक्तिशाली, तेरा है अमित प्रताप।' इस कहानी में महान्

सत्य छिपा हुआ है। अपने को महान् समझो और तुम सचमुच महान् हो जाओगे। सभी लोग पूछते हैं, आपने समग्र संसार में भ्रमण करके क्या अनुभव प्राप्त किया? अंग्रेज लोग पापियों की बातें करते हैं; पर वास्तव मे यदि सभी अंग्रज अपने को पापी समझते, तो वे अफ्रीका के मध्य भाग के रहनेवाले हब्शी जैसे हो जाते। ईश्वर की कृपा से इस बात पर वे विश्वास नहीं करते। इसके विपरीत अंग्रेज तो यह विश्वास करता है कि संसार के अधीश्वर होकर उसने जन्म धारण किया है। वह अपनी श्रेष्ठता पर पूरा विश्वास रखता है। उसकी धारणा है कि वह सब कुछ कर सकता है, इच्छा होने पर सूर्यलोक और चन्द्रलोक की भी सैर कर सकता है। इसी इच्छा के बल से वह वड़ा हुआ है। यदि वह अपने पुरोहितों के इन वाक्यों पर कि मनुष्य क्षुद्र है, हतभाग्य और पापी है, अनन्तकाल तक वह नरकाग्नि मे दग्ध होगा, विश्वास करता, तो वह आज वही अंग्रेज न होता जैसा वह आज है। यही बात मै प्रत्येक जाति के भीतर देखता हूँ। उनके पुरोहित लोग चाहे जो कुछ कहें, और वे कितने ही कुसंस्कारपूर्ण क्यों न हों, किन्तु उनके अभ्यन्तर का ब्रह्मभाव लुप्त नहीं होता, उसका विकास अवश्य होता है। हम श्रद्धा खो बैठे हैं। क्या तुम मेरे इस कथन पर विश्वास करोगे कि हम अंग्रेजों की अपेक्षा कम आत्मश्रद्धा रखते हैं—सहस्रगुण कम आत्मश्रद्धा रखते हैं? मैं साफ साफ कह रहा हूँ। बिना कहे दूसरा उपाय भी मैं नहीं देखता। तुम देखते नहीं?—अंग्रेज जब हमारे धर्मतत्त्व को कुछ कुछ समझने लगते हैं तब वे मानो उसी को लेकर उन्मत्त हो जाते हैं। यद्यपि वे शासक हैं, तथापि अपने देशवासियों की हँसी और उपहास की उपेक्षा करके भारत मे

हमारे ही धर्म का प्रचार करने के लिए वे आते हैं। तुम लोगो मे से कितने ऐसे हैं जो ऐसा काम कर सकते हैं ? तुम क्यो ऐसा नही कर सकते ? क्या तुम जानते नही, इसलिए नही कर सकते ? नही, उनकी अपेक्षा तुम अधिक ही जानते हो। और इसी से तुम लोग काम नहीं कर सकते। जितना जानने से कल्याण होगा उससे तुम ज्यादा जानते हो, यही आफत है। तुम्हारा रक्त पानी जैसा हो गया है, मस्तिष्क मुर्दार और शरीर दुर्बल ! इस शरीर को बदलना होगा। शारीरिक दुर्बलता ही सब अनिष्टों की जड़ है, और कुछ नही। गत कई सदियों से तुम नाना प्रकार के सुधार, आदर्श आदि की बातें कर रहे हो और जब काम करने का समय आता है तब तुम्हारा पता ही नहीं मिलता। अतः तुम्हारे आचरणों से सारा संसार क्रमशः हताश हो रहा है और समाज-सुधार का नाम तक समस्त ससार के उपहास की वस्तु हो गयी है ! इसका कारण क्या है ? क्या तुम जानते नही हो ? तुम अच्छी तरह जानते हो। ज्ञान की कमी तो तुममे है ही नही ! सब अनर्थों का मूल कारण यही है कि तुम दुर्बल हो, अत्यन्त दुर्बल हो; तुम्हारा शरीर दुर्बल है, मन दुर्बल है, और अपने पर आत्मश्रद्धा भी बिलकुल नही है। सैकड़ों सदियों से ऊँची जातियों, राजाओं और विदेशियों ने तुम्हारे ऊपर अत्याचार करके, तुमको चकनाचूर कर डाला है। भाइयो ! तुम्हारे ही स्वजनो ने तुम्हारा सब बल हर लिया है। तुम इस समय मेरुदण्डहीन और पददलित कीड़ों के समान हो। इस समय तुमको शक्ति कौन देगा ? मै तुमसे कहता हूँ, इसी समय हमको बल और वीर्य की आवश्यकता है। इस शक्ति को प्राप्त करने का पहला उपाय है—उपनिषदों पर विश्वास करना और यह विश्वास

करना कि 'मैं आत्मा हूँ।' 'मुझे न तो तलवार काट सकती है, न बरछी छेद सकती है, न आग जला सकती है और न हवा सुखा सकती है, मैं सर्वशक्तिमान् हूँ, सर्वज्ञ हूँ।'* इन आशाप्रद और परित्राणप्रद वाक्यों का सर्वदा उच्चारण करो। मत कहो—हम दुर्बल हैं। हम सब कुछ कर सकते हैं। हम क्या नही कर सकते? हमसे सब कुछ हो सकता है। हम सब के भीतर एक ही महिमामय आत्मा है। हमें इस पर विश्वास करना होगा। नचिकेता के समान श्रद्धाशील बनो। नचिकेता के पिता ने जब यज्ञ किया था, उसी समय नचिकेता के भीतर श्रद्धा का प्रवेश हुआ। मेरी इच्छा है—तुम लोगों के भीतर इसी श्रद्धा का आविर्भाव हो, तुममें से हर एक आदमी खड़ा होकर इशारे से संसार को हिला देनेवाला प्रतिभासम्पन्न महापुरुष हो, हर प्रकार से अनन्त ईश्वरतुल्य हो। मैं तुम लोगों को ऐसा ही देखना चाहता हूँ। उपनिषदों से तुमको ऐसी ही शक्ति प्राप्त होगी और वही से तुमको ऐसा विश्वास प्राप्त होगा।

प्राचीन काल मे केवल अरण्यवासी सन्यासी ही उपनिषदों की चर्चा करते थे। वे रहस्य के विषय बन गय थे। उपनिषद् संन्यासियों तक ही सीमित थे। शंकर ने कुछ सदय हो कहा है, 'गृही मनुष्य भी उपनिषदो का अध्ययन कर सकते हैं; इससे उनका कल्याण ही होगा, कोई अनिष्ट न होगा।' परन्तु अभी तक यह संस्कार कि उपनिषदों में वन, जंगल अथवा एकान्तवास का ही वर्णन है, मनुष्यों के मन से नहीं हटा। मैंने तुम लोगो से उस दिन कहा था कि जो स्वयं वेदों के प्रकाशक हैं, उन्ही श्रीकृष्ण

---

* नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥ (गीता २।२३)

के द्वारा वेदो की एकमात्र प्रामाणिक टीका, गीता, एक ही बार चिरकाल के लिए वनी है, यह सब के लिए और जीवन की सभी अवस्थाओ के लिए उपयोगी है। तुम कोई भी काम करो, तुम्हारे लिए वेदान्त की आवश्यकता है। 'वेदान्त के इन सब महान् तत्त्वो का प्रचार आवश्यक है, ये केवल अरण्य मे अथवा गिरि-गुहाओ मे आवद्ध नही रहेगे; वकीलो और न्यायाधीशों मे, प्रार्थना-मन्दिरो मे, दरिद्रों की कुटियों मे, मछुओ के घरो मे, छात्रो के अध्ययन स्थानो मे--सर्वत्र ही इन तत्त्वो की चर्चा होगी और ये काम मे लाये जाएँगे। हर एक व्यक्ति, हर एक सन्तान चाहे जो काम करे, चाहे जिस अवस्था मे हो---उनकी पुकार सव के लिए है। भय का अव कोई कारण नही है। उप-निषदो के सिद्धान्तो को मछुए आदि साधारण जन किस प्रकार काम मे लाएँगे? इसका उपाय शास्त्रो मे बताया गया है। मार्ग अनन्त है, धर्म अनन्त है; कोई इसकी सीमा के वाहर नही जा सकता। तुम निष्कपट भाव से जो कुछ करते हो, तुम्हारे लिए वही अच्छा है। अत्यन्त छोटा कर्म भी यदि अच्छे भाव से किया जाए, तो उससे अद्भुत फल की प्राप्ति होती है। अतएव जो जहाँ तक अच्छे भाव से काम कर सके, करे। मछुआ यदि अपने को आत्मा समझकर चिन्तन करे, तो वह एक उत्तम मछुआ होगा। विद्यार्थी यदि अपने को आत्मा सोचे, तो वह एक श्रेष्ठ विद्यार्थी होगा। वकील यदि अपने को आत्मा समझे, तो वह एक अच्छा वकील होगा। औरों के विषय मे भी यही समझो। इसका फल यह होगा कि जातिविभाग अनन्त काल तक रह जाएगा, क्योंकि विभिन्न श्रेणियो मे विभक्त होना ही समाज का स्वभाव है। पर रहेगा क्या नही ? विशेष अधिकारो का अस्तित्व न रह

जाएगा। जातिविभाग प्राकृतिक नियम है। सामाजिक जीवन मे एक विशेष काम मै कर सकता हूँ, तो दूसरा काम तुम कर सकते हो। तुम एक देश का शासन कर सकते हो, तो मै एक पुराने जूते की मरम्मत कर सकता हूँ। किन्तु इस कारण तुम मुझसे बड़े नहीं हो सकते। क्या तुम मेरे जूते की मरम्मत कर सकते हो? मै क्या देश का शासन कर सकता हूँ? यह कार्यविभाग स्वाभाविक है। मैं जूते की सिलाई करने मे चतुर हूँ, तुम वेदपाठ मे निपुण हो। पर यह कोई कारण नही कि तुम इस विशेषता के लिए मेरे सिर पर पॉव रखो। तुम यदि हत्या भी करो तो तुम्हारी प्रशंसा हो और मुझे एक सेब चुराने पर ही फॉसी पर लटकना हो, ऐसा नही हो सकता। इसको समाप्त करना ही होगा। जातिविभाग अच्छा है। जीवनसमस्या के समाधान के लिए यही एकमात्र स्वाभाविक उपाय है। मनुष्य अलग अलग वर्गो मे विभक्त होगे, यह अनिवार्य है। तुम जहॉ भी जाओ, जातिविभाग से छुटकारा न मिलेगा; किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि इस प्रकार का विशेषाधिकार भी रहेगा। इनको जड़ से उखाड़ फेकना होगा। यदि मछुए को तुम वेदान्त सिखलाओगे तो वह कहेगा, हम और तुम दोनो बराबर हैं। तुम दार्शनिक हो, मै मछुआ; पर इससे क्या? तुम्हारे भीतर जो ईश्वर है, वही मुझमे भी है। हम यही चाहते हैं कि किसी को कोई विशेष अधिकार प्राप्त न हो, और प्रत्येक मनुष्य की उन्नति के लिए समान सुभीते हों। सब लोगों को उनके भीतर स्थित ब्रह्मतत्त्व-सम्बन्धी शिक्षा दो। प्रत्येक व्यक्ति अपनी मुक्ति के लिए स्वयं चेष्टा करेगा।

उन्नति के लिए सब से पहले स्वाधीनता की आवश्यकता है। यदि तुम लोगो मे से कोई यह कहने का साहस करे कि मैं

अमुक स्त्री अथवा अमुक लड़के की मुक्ति के लिए काम करूँगा, तो यह गलत है, हजार बार गलत होगा। मुझसे बार बार यह पूछा जाता है कि विधवाओं की समस्या के बारे मे और स्त्रियो के प्रश्न के विषय मे आप क्या सोचते हैं? मै इस प्रश्न का अन्तिम उत्तर यह देता हूँ—क्या मै विधवा हूँ, जो तुम ऐसा निरर्थक प्रश्न मुझसे पूछते हो? क्या मै स्त्री हूँ, जो तुम बार बार मुझसे यही प्रश्न करते हो? स्त्रीजाति के प्रश्न को हल करने के लिए आगे बढनेवाले तुम हो कौन? क्या तुम हर एक विधवा और हर एक स्त्री के भाग्यविधाता भगवान् हो? दूर रहो! अपनी समस्याओ का समाधान वे स्वयं कर लेगी। अरे अत्याचारियो, क्या तुम समझते हो कि तुम सब के लिए सब कुछ कर सकते हो? हट जाओ, दूर रहो! ईश्वर सब की चिन्ता करेंगे। अपने को सर्वज्ञ समझनेवाले तुम हो कौन? नास्तिको, तुम यह सोचने का दुस्साहस कैसे करते हो कि तुम्हारा ईश्वर पर अधिकार है? क्या तुम जानते नही कि प्रत्येक आत्मा ईश्वर ही का स्वरूप है? तुम अपना ही कर्म करो, तुम्हारे लिए तुम्हारे सिर पर बहुतसे कर्मो का भार है। नास्तिको! तुम्हारी जाति तुमको आसमान पर चढा दे, तुम्हारा समाज तुम्हारी प्रशंसा के पुल बाँध दे, मूर्ख लोग तुम्हारी तारीफ करे, किन्तु ईश्वर सो नही रहे हैं; इस लोक मे या परलोक में इसका दण्ड तुम्हे अवश्य मिलेगा।

अतएव हर एक स्त्री को, हर एक पुरुष को और सभी को ईश्वर के ही समान देखो। तुम किसी की सहायता नही कर सकते, तुम्हे केवल सेवा करने का अधिकार है। प्रभु की सन्तान की, यदि भाग्यवान् हो तो स्वयं प्रभु की ही सेवा करो। यदि

ईश्वर के अनुग्रह से उसकी किसी सन्तान की सेवा कर सकोगे, तो तुम धन्य हो जाओगे। अपने ही को बहुत बड़ा मत समझो। तुम धन्य हो, क्योंकि सेवा करने का तुमको अधिकार मिला और दूसरों को नहीं मिला। केवल ईश्वर-पूजा के भाव से सेवा करो। दरिद्र व्यक्तियों मे हमको भगवान् को देखना चाहिए, अपनी ही मुक्ति के लिए उनके निकट जाकर हमे उनकी पूजा करनी चाहिए। अनेक दु:खी और कगाल प्राणी हमारी मुक्ति के माध्यम हैं, ताकि हम रोगी, पागल, कोढी, पापी आदि स्वरूपो मे विचरते हुए प्रभु की सेवा करके अपना उद्धार करे। मेरे शब्द बड़े गम्भीर हैं और मैं उन्हे फिर दुहराता हूँ कि हम लोगो के जीवन का सर्वश्रेष्ठ सौभाग्य यही है कि हम इन भिन्न भिन्न रूपो मे विराजमान भगवान् की सेवा कर सकते हैं। प्रभुत्व से किसी का कल्याण कर सकने की धारणा त्याग दो। जिस प्रकार पौधे के बढने के लिए जल, मिट्टी, वायु आदि पदार्थों का संग्रह कर देने पर फिर वह पौधा अपनी प्रकृति के नियमानुसार आवश्यक पदार्थों का ग्रहण आप ही कर लेता है और अपने स्वभाव के अनुसार बढता जाता है, उसी प्रकार दूसरो की उन्नति के साधन एकत्र करके उनका हित करो।

ससार मे ज्ञान के प्रकाश का विस्तार करो, प्रकाश, सिर्फ प्रकाश लाओ। प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करे। जब तक सब लोग भगवान् के निकट न पहुँच जाएँ, तब तक तुम्हारा कार्य शेष नही हुआ है। गरीबों मे ज्ञान का विस्तार करो, धनियों पर और भी अधिक प्रकाश डालो; क्योंकि दरिद्रो की अपेक्षा धनियों को अधिक प्रकाश की आवश्यकता है। अपढ लोगों को भी प्रकाश दिखाओ। शिक्षित मनुष्यों के लिए और

अधिक प्रकाश चाहिए, क्योंकि आजकल शिक्षा का मिथ्याभिमान खूब प्रबल हो रहा है। इसी तरह सब के निकट प्रकाश का विस्तार करो। और शेष सब भगवान् पर छोड दो, क्योंकि स्वय भगवान् के शब्दों मे—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सगोऽस्त्वकर्मणि ॥*

—'कर्म मे ही तुम्हारा अधिकार है, फल मे नही; तुम इस भाव से कर्म मत करो, जिससे तुम्हे फल-भोग करना पड़े। तुम्हारी प्रवृत्ति कर्मत्याग करने की ओर न हो।'

सैकड़ो युग पूर्व हमारे पूर्वपुरुषो को जिस प्रभु ने ऐसे उदात्त सिद्धान्त सिखलाये हैं वे हमे उन आदर्शो को काम मे लाने की शक्ति दे और हमारी सहायता करे।

---

* गीता २।४७

भारत विश्वविजयी कैसे हो ?

मनुष्य अपनी व्यक्ति-चेतना को सार्वभौम चेतना में लीन कर देना चाहता है, वह जगत्-प्रपंच का कुल सम्बन्ध छोड़ देना चाहता है, वह अपने समस्त सम्बन्धों की माया काटकर ससार से दूर भाग जाना चाहता है। वह सम्पूर्ण दैहिक पुराने संस्कारो को छोड़ने की चेष्टा करता है। यहाँ तक कि वह एक देहधारी मनुष्य है, इसे भी भूलने का भरसक प्रयत्न करता है। परन्तु अपने अन्तर के अन्तर मे सदा ही एक मृदु अस्फुट ध्वनि उसे सुनाई पड़ती है, उसके कानों मे सदा ही एक स्वर बजता रहता है, न जाने कौन दिन-रात उसके कानों में मधुर स्वर से कहता रहता है, पूर्व में हो या पश्चिम मे, "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।" भारत साम्राज्य की राजधानी * के अधिवासियो, तुम्हारे पास में संन्यासी के रूप मे नही, धर्मप्रचारक की हैसियत से भी नहीं, बल्कि पहले की तरह कलकत्ते के उसी बालक के रूप मे बातचीत करने के लिए आया हुआ हूँ। हाँ, मेरी इच्छा होती है कि आज इस नगर के रास्ते की धूल पर बैठकर बालक की तरह सरल अन्तःकरण से तुमसे अपने मन की सब बाते खोलकर कहूँ। तुम लोगों ने मुझे अनुपम शब्द 'भाई' कहकर सम्बोधित किया है, इसके लिए तुम्हे हृदय से धन्यवाद देता हूँ। हाँ, मैं तुम्हारा भाई हूँ, तुम भी मेरे भाई हो। पश्चिमी देशो से लौटने के कुछ ही समय पहले एक अंग्रेज मित्र ने मुझसे पूछा था, 'स्वामीजी, चार वर्षो तक विलास की लीलाभूमि, गौरवशाली,

---

कलकत्ते की जनता द्वारा समर्पित मानपत्रके उत्तर मे दिया गया भाषण

* उस समय कलकत्ता भारत साम्राज्य की राजधानी थी।

महाशक्तिमान् पश्चिमी भूमि पर भ्रमण कर चुकने पर आपकी मातृभूमि अब आपको कैसी लगेगी ?' मै बस यही कह सका, 'पश्चिम मे आने से पहले भारत को मै प्यार ही करता था, अब तो भारत की धूलि ही मेरे लिए पवित्र है, भारत की हवा अब मेरे लिए पावन है, भारत अब मेरे लिए तीर्थ है।' कलकत्ता-वासियो, मेरे भाइयो, तुम लोगो ने मेरे प्रति जो अनुग्रह दिखाया है, उसके लिए तुम्हारे प्रति कृतज्ञता प्रकट करने मे मै असमर्थ हूँ। अथवा तुम्हे धन्यवाद ही क्या दूँ, क्योकि तुम मेरे भाई हो—तुमने भाई का, एक हिन्दू भाई का ही कर्तव्य निभाया है, क्योकि ऐसा पारिवारिक बन्धन, ऐसा सम्बन्ध, ऐसा प्रेम हमारी मातृभूमि की सीमा के बाहर और कही नही है।

शिकागो की धर्म-महासभा निस्सन्देह एक विराट् समारोह थी। भारत के कितने ही नगरो से हम लोगो ने इस सभा के आयोजक महानुभावो को धन्यवाद दिया है। हम लोगों के प्रति उन्होंने जैसी अनुकम्पा प्रदर्शित की है, उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र है, परन्तु इस धर्म महासभा का यथार्थ इतिहास मै तुम्हे सुना देना चाहता हूँ। उनकी इच्छा थी कि वे अपनी प्रभुता की प्रतिष्ठा करे। महासभा के कुछ व्यक्तियो की इच्छा थी कि ईसाई धर्म की प्रतिष्ठा करे और दूसरे धर्मो को हास्यास्पद सिद्ध करे। परन्तु फल कुछ और ही हुआ। विधाता के विधान मे वैसा ही होना था। मेरे प्रति अनेक लोगों ने सदय व्यवहार किया था। उन्हे यथेष्ट धन्यवाद दिया जा चुका है।

सच्ची बात यह है कि मै धर्म-महासभा का उद्देश्य लेकर अमेरिका नही गया। वह सभा तो मेरे लिए एक गौण वस्तु थी, उससे हमारा रास्ता बहुत कुछ साफ हो गया और कार्य करने

की बहुत कुछ सुविधा हो गयी, इसमे सन्देह नही। इसके लिए हम महासभा के सदस्यों के विशेष रूप से कृतज्ञ है। परन्तु वास्तव मे हमारा धन्यवाद संयुक्त राज्य अमेरिका के निवासी, सहृदय, आतिथ्यशील, महान् अमरीकी जाति को मिलना चाहिए, जिसमे दूसरी जातियो की अपेक्षा भ्रातृभाव का अधिक विकास हुआ है। रेलगाड़ी पर पाँच मिनट किसी-अमेरिकन के साथ बातचीत करने से वह तुम्हारा मित्र हो जाएगा, दूसरे ही क्षण तुम्हें अपने घर पर अतिथि के रूप मे निमन्त्रित करेगा और अपने हृदय की सारी बात खोलकर रख देगा। यही अमरीकी जाति का चरित्र है, और हम इसे खूब पसन्द करते हैं। मेरे प्रति उन्होने जो अनुकम्पा दिखलायी, उसका वर्णन नहीं हो सकता। मेरे साथ उन्होंने कैसा अपूर्व स्नेहपूर्ण व्यवहार किया, उसे प्रकट करने मे मुझे कई वर्ष लग जाएँगे। इसी तरह अतलान्तिक महासागर के दूसरे पार रहनेवाली अग्रेज जाति को भी हमे धन्यवाद देना चाहिए। ब्रिटिश भूमि पर अग्रेजों के प्रति मुझसे अधिक घृणा का भाव लेकर कभी किसी ने पैर न रखा होगा। इस मच पर जो अग्रेज बन्धु हैं, वे ही इसका साक्ष्य देगे। परन्तु जितना ही मैं उन लोगों के साथ रहने लगा, जितना ही उनके साथ मिलने लगा, जितना ही ब्रिटिश जाति के जीवन-यन्त्र की गति लक्ष्य करने लगा—उस जाति का हृदय-स्पन्दन किस जगह हो रहा है, यह जितना ही समझने लगा, उतना ही उन्हें प्यार करने लगा। अब मेरे भाइयो, यहाँ ऐसा कोई न होगा जो मुझसे ज्यादा अंग्रेजो को प्यार करता हो। उनके सम्बन्ध मे यथार्थ ज्ञानप्राप्ति करने के लिए यह जानना आवश्यक है कि वहाँ क्या क्या हो रहा है और साथ ही हमे उनके साथ

रहना भी होगा। हमारे जातीय दर्शनशास्त्र वेदान्त ने जिस तरह सम्पूर्ण दु ख को अज्ञानप्रसूत कहकर सिद्धान्त स्थिर किया है, उसी तरह अग्रेज और हमारे बीच का विरोधभाव भी प्राय: अज्ञानजन्य है---यही समझना चाहिए। न हम उन्हे जानते है, न वे हमे।

दुर्भाग्य से पश्चिमी देशवालों की धारणा मे आध्यात्मिकता, यहाॅ तक कि नैतिकता भी, सासारिक उन्नति के साथ चिर-संश्लिष्ट है। और जब कभी कोई अग्रेज या कोई दूसरे पश्चिमी महाशय भारत आते हैं और यहाॅ दु ख और दारिद्रय का अबाध राज्य देखते है तो वे तुरन्त इस निष्कर्ष पर पहुॅचते है कि इस देश मे धर्म नही टिक सकता, नैतिकता नही टिक सकती। उनका अपना अनुभव निस्सन्देह सत्य है। यूरोप की निष्ठुर जलवायु और दूसरे अनेक कारणो से वहाॅ दारिद्रय और पाप एक जगह रहते देखे जाते हैं, परन्तु भारत मे ऐसा नही है। मेरा अनुभव है कि भारत मे जो जितना दरिद्र है वह उतना ही अधिक साधु है। परन्तु इसको जानने के लिए समय की जरूरत है। भारत के राष्ट्रीय जीवन का यह रहस्य समझने के लिए कितने विदेशी दीर्घ काल तक भारत मे रहकर प्रतीक्षा करने के लिए तैयार हैं ? इस राष्ट्र के चरित्र का धैर्य के साथ अध्ययन करे और समझे ऐसे मनुष्य थोड़े ही है। यही, केवल यही ऐसी जाति का वास है, जिसके निकट गरीबी का मतलब अपराध और पाप नही है। यही एक ऐसी जाति है, जहाॅ न केवल गरीबी का मतलब अपराध नही लगाया जाता, बल्कि उसे यहाॅ बडा ऊॅचा आसन दिया जाता है। यहाॅ दरिद्र सन्यासी के वेश को ही सब से ऊॅचा स्थान मिलता है। इसी तरह हमे भी पश्चिमी

सामाजिक रीति-रिवाजों का अध्ययन बड़े धैर्य के साथ करना होगा। उनके सम्बन्ध मे एकाएक कोई उन्मत्त धारणा बना लेना ठीक न होगा। उनके स्त्री-पुरुषों का आपस में हेलमेल और उनके आचार-व्यवहार सब एक खास अर्थ रखते हैं, सब मे एक पहलू अच्छा भी होता है। तुम्हे केवल यत्नपूर्वक धैर्य के साथ उसका अध्ययन करना होगा। मेरे इस कथन का यह अर्थ नहीं कि हमे उनके आचार-व्यवहारों का अनुकरण करना है, अथवा वे हमारे आचारों का अनुकरण करेगे। सभी जातियों के आचार-व्यवहार शताब्दियों के मन्द गति से होनेवाले क्रमविकास के फल-स्वरूप है, और सभी मे एक गम्भीर अर्थ रहता है। इसलिए न हमे उनके आचार-व्यवहारों का उपहास करना चाहिए और न उन्हें हमारे आचार-व्यवहारों का।

मैं इस सभा के समक्ष एक और बात कहना चाहता हूँ। अमेरिका की अपेक्षा इग्लैड मे मेरा काम अधिक सन्तोषजनक हुआ है। निर्भीक, साहसी एवं अध्यवसायी अग्रेज जाति के मस्तिष्क मे यदि किसी तरह एक बार कोई भाव सचारित किया जा सके—यद्यपि उसकी खोपड़ी दूसरी जातियों की अपेक्षा स्थूल है, उसमे कोई भाव सहज ही नही समाता—तो फिर वह वहीं दृढ हो जाता है, कभी बाहर नही होता। उस जाति की असीम व्यावहारिकता और शक्ति के कारण बीजरूप मे समाये हुए उस भाव से अंकुर का उद्गम होता है और बहुत शीघ्र फल देता है। ऐसा किसी दूसरे देश मे नही है। इस जाति की जैसी असीम व्यावहारिकता और जीवनशक्ति है, वैसी तुम अन्य किसी जाति मे न देखोगे। इस जाति मे कल्पना कम है और कर्मण्यता अधिक। और कौन जान सकता है कि इस अग्रेज जाति के भावों

का मूल स्रोत कहाँ है ! उसके हृदय के गहन प्रदेश मे, कौन समझ सकता है, कितनी कल्पनाएँ और भावोच्छ्वास छिपे हुए हैं ! वह वीरों की जाति है, वे यथार्थ क्षत्रिय हैं। भाव छिपाना —उन्हे कभी प्रकट न करना उनकी शिक्षा है, बचपन से उन्हे यही शिक्षा मिली है। बहुत कम अग्रेज देखने को मिलेगे, जिन्होने कभी अपने हृदय का भाव प्रकट किया होगा। पुरुषो की तो बात ही क्या, अग्रेज स्त्रियाँ भी कभी हृदय के उच्छ्वास को जाहिर नही होने देती। मैंने अग्रेज महिलाओं को ऐसे भी कार्य करते हुए देखा है, जिन्हे करने मे अत्यन्त साहसी बंगाली भी लड़खड़ा जाएँगे। किन्तु बहादुरी के इस ठाटबाट के साथ ही इस क्षत्रियोचित कवच के भीतर अग्रेज हृदय की भावनाओ का गम्भीर प्रस्रवण छिपा हुआ है। यदि एक बार भी अग्रेजो के साथ तुम्हारी घनिष्ठता हो जाए, यदि उनके साथ तुम घुल मिल गये, यदि उनसे एक बार भी अपने सम्मुख उनके हृदय की बात व्यक्त करवा सके, तो वे तुम्हारे परम मित्र हो जाएँगे, सदा के लिए तुम्हारे दास हो जाएँगे। इसलिए मेरी राय मे दूसरे स्थानो की अपेक्षा इग्लैंड मे मेरा प्रचारकार्य अधिक सन्तोषजनक हुआ है। मेरा दृढ विश्वास है कि अगर कल मेरा शरीर छूट जाए, तो मेरा प्रचारकार्य इग्लैंड मे अक्षुण्ण रहेगा और क्रमशः विस्तृत होता जाएगा।

भाइयो, तुम लोगों ने मेरे हृदय के एक दूसरे तार—सब से अधिक कोमल तार का स्पर्श किया है—वह है मेरे गुरुदेव, मेरे आचार्य, मेरे जीवनादर्श, मेरे इष्ट, मेरे प्राणों के देवता श्रीरामकृष्णदेव का उल्लेख ! यदि मनसा, वाचा, कर्मणा मैंने कोई सत्कार्य किया हो, यदि मेरे मुंह से कोई ऐसी बात निकली हो,

जिससे ससार के किसी भी मनुष्य का कुछ उपकार हुआ हो, तो उसमे मेरा कुछ भी गौरव नही, वह उनका है। परन्तु यदि मेरी जिह्वा ने कभी अभिशाप की वर्षा की हो, यदि मुझसे कभी किसी के प्रति घृणा का भाव निकला हो, तो वे मेरे हैं, उनके नही। जो कुछ दुर्बल है, वह सब मेरा है, पर जो कुछ भी जीवनप्रद है, बलप्रद है, पवित्र है, वह सब उन्ही की शक्ति का खेल है, उन्हीं की वाणी है और वे स्वयं हैं। मित्रो, यह सत्य है कि संसार अभी तक उन महापुरुष से परिचित नही हुआ। हम लोग ससार के इतिहास मे शत शत महापुरुषों की जीवनी पढ़ते हैं। इसमे उनके शिष्यों के लेखन एव कार्य-संचालन का हाथ रहा है। हजारों वर्ष तक लगातार उन लोगो ने उन प्राचीन महापुरुषों के जीवन-चरितों को काट-छाँटकर सँवारा है। परन्तु इतने पर भी जो जीवन मैने अपनी आँखों देखा है, जिसकी छाया मे मै रह चुका हूँ, जिनके चरणो मे बैठकर मैने सब सीखा है, उन श्रीरामकृष्ण का जीवन जैसा उज्ज्वल और महिमान्वित है, वैसा मेरे विचार मे और किसी महापुरुष का नही। भाइयो, तुम सभी गीता की वह प्रसिद्ध वाणी जानते हो—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥ *

—'जब जब धर्म की ग्लानि और अधर्म का अभ्युत्थान होता है, तब तब मैं शरीर धारण करता हूँ। साधुओं का परित्राण करने, असाधुओं का नाश करने और धर्म की स्थापना करने के लिए

* गीता ४। ७–८

विभिन्न युगो मे मै आया करता हूँ।'

इसके साथ एक और बात तुम्हे समझनी होगी, वह यह कि आज ऐसी ही वस्तु हमारे सामने मौजूद है। इस तरह की एक आध्यात्मिकता की बाढ के प्रबल वेग से आने के पहले समाज मे कुछ छोटी छोटी तरगे उठती दीख पड़ती हैं। इन्ही मे से एक अज्ञात, अनजान, अकल्पित तरंग आती है, क्रमशः प्रबल होती जाती है, दूसरी छोटी छोटी तरंगों को मानो निगलकर वह अपने मे मिला लेती है। और इस तरह अत्यन्त विपुलाकार और प्रबल होकर वह एक बहुत बड़ी बाढ के रूप मे समाज पर वेग से गिरती है कि कोई उसकी गति को रोक नही सकता। इस समय भी वैसा ही हो रहा है। यदि तुम्हारे पास आँखे हैं तो तुम उसे अवश्य देखोगे। यदि तुम्हारा हृदय-द्वार खुला है तो तुम उसको अवश्य ग्रहण करोगे। यदि तुममे सत्यान्वेषण की प्रवृत्ति है तो तुम उसे अवश्य प्राप्त करोगे। अन्धा, बिलकुल अन्धा है वह, जो समय के चिह्न नही देख रहा है, नही समझ रहा है। क्या तुम नही देखते हो, वह दीन ब्राह्मण बालक जो एक दूर गाँव मे—जिसके बारे मे तुममे से बहुत कम ही लोगों ने सुना होगा—जन्मा था, इस समय सम्पूर्ण ससार मे पूजा जा रहा है, और उसे वे पूजते है, जो शताब्दियो से मूर्तिपूजा के विरोध मे आवाज उठाते आये हैं ? यह किसकी शक्ति है ? यह तुम्हारी शक्ति है या मेरी ? नही, यह और किसी की शक्ति नही। जो शक्ति यहाँ श्रीरामकृष्ण के रूप मे आविर्भूत हुई थी, यह वही शक्ति है, और मै, तुम, साधु, महापुरुष, यहाँ तक कि अवतार और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भी उसी न्यूनाधिक रूप मे पुजीभूत शक्ति की लीला मात्र है। इस समय हम लोग उस महाशक्ति की लीला का

आरम्भ मात्र देख रहे हैं। वर्तमान युग का अन्त होने के पहले ही तुम लोग इसकी अधिकाधिक आश्चर्यमयी लीलाएँ देख पाओगे। भारत के पुनरुत्थान के लिए इस शक्ति का आविर्भाव ठीक ही समय पर हुआ है। क्योंकि जो मूल जीवनशक्ति भारत को सदा स्फूर्ति प्रदान करेगी, उसकी बात कभी कभी हम लोग भूल जाते हैं।

प्रत्येक जाति के लिए उद्देश्य-साधन की अलग अलग कार्यप्रणालियाँ हैं। कोई राजनीति, कोई समाज-सुधार और कोई किसी दूसरे विषय को अपना प्रधान आधार बनाकर कार्य करती है। हमारे लिए धर्म की पृष्ठभूमि लेकर कार्य करने के सिवा दूसरा उपाय नहीं है। अंग्रेज राजनीति के माध्यम से धर्म भी समझ सकते हैं। अमरीकी शायद समाज-सुधार के माध्यम से भी धर्म समझ सकते हैं। परन्तु हिन्दू राजनीति, समाजविज्ञान और दूसरा जो कुछ है, सब को धर्म के माध्यम से ही समझ सकते हैं। जातीय जीवन-संगीत का मानो यही प्रधान स्वर है, दूसरे तो उसी में कुछ परिवर्तित किये हुए नाना गौण स्वर हैं और उसी प्रधान स्वर के नष्ट होने की शंका हो रही थी। ऐसा लगता था, मानो हम लोग अपने जातीय जीवन के इस मूल भाव को हटाकर उसकी जगह एक दूसरा भाव स्थापित करने जा रहे थे, हम लोग जिस मेरुदण्ड के बल से खड़े हुए हैं, मानो उसकी जगह दूसरा कुछ स्थापित करने जा रहे थे, अपने जातीय जीवन के धर्मरूप मेरुदण्ड की जगह राजनीति का मेरुदण्ड स्थापित करने जा रहे थे। यदि इसमें हमें सफलता मिलती, तो इसका फल पूर्ण विनाश होता; परन्तु ऐसा होनेवाला नहीं था। यही कारण है कि इस महाशक्ति का आविर्भाव हुआ। मुझे इस बात

की चिन्ता नहीं है कि तुम इस महापुरुष को किस अर्थ मे ग्रहण करते हो और उसके प्रति कितना आदर रखते हो, किन्तु मै तुम्हे यह चुनौती के रूप मे अवश्य बता देना चाहता हूँ कि अनेक शताब्दियो से भारत मे विद्यमान अद्‌भुत शक्ति का यह प्रकट रूप है, और एक हिन्दू के नाते तुम्हारा यह कर्तव्य है कि तुम इस शक्ति का अध्ययन करो, तथा भारत के कल्याण, उसके पुनरुत्थान और समस्त मानवजाति के हित के लिए इस शक्ति के द्वारा क्या कार्य किये गये हैं, इसका पता लगाओ। मै तुमको विश्वास दिलाता हूँ कि संसार के किसी भी देश में सार्वभौम धर्म और विभिन्न सम्प्रदायो मे भ्रातृभाव के उत्थापित और पर्यालोचित होने के बहुत पहले ही, इस नगर के पास, एक ऐसे महापुरुष थे, जिनका सम्पूर्ण जीवन एक आदर्श धर्ममहासभा का स्वरूप था।

हमारे शास्त्रो मे सब से बड़ा आदर्श निर्गुण ब्रह्म है, और ईश्वर की इच्छा से यदि सभी निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त कर सकते, तब तो बात ही कुछ और थी। परन्तु चूँकि ऐसा नही हो सकता, इसलिए सगुण आदर्श का रहना मनुष्यजाति के बहुसख्य वर्ग के लिए बहुत आवश्यक है। इस तरह के किसी महान् आदर्श पुरुष पर हार्दिक अनुराग रखते हुए उनकी पताका के नीचे आश्रय लिये बिना न कोई जाति उठ सकती है, न बढ सकती है, न कुछ कर सकती है। राजनीतिक, यहाँ तक कि सामाजिक या व्यापारिक आदर्शों का प्रतिनिधित्व करनेवाले कोई भी पुरुष सर्वसाधारण भारतवासियों के ऊपर कभी भी अपना प्रभाव नही जमा सकते। हमे चाहिए आध्यात्मिक आदर्श। आध्यात्मिक महापुरुषों के नाम पर हमे सोत्साह एक हो जाना

चाहिए। हमारे आदर्श पुरुष आध्यात्मिक होने चाहिए। श्रीरामकृष्ण में हमें एक ऐसा ही आदर्श पुरुष मिला है। यदि यह जाति उठना चाहती है, तो मै निश्चयपूर्वक कहूँगा कि इस नाम के चारों ओर उत्साह के साथ एकत्र हो जाना चाहिए। श्रीरामकृष्ण का प्रचार हम, तुम या चाहे जो कोई करे, इसमे महत्त्व नही। तुम्हारे सामने मै इस महान् आदर्श पुरुष को रखता हूँ, और अब इस पर विचार करने का भार तुम पर है। इस महान् आदर्श पुरुष को लेकर क्या करोगे, इसका निश्चय तुम्हे अपनी जाति, अपने राष्ट्र के कल्याण के लिए अभी कर डालना चाहिए। एक बात हमे याद रखनी चाहिए कि तुम लोगो ने जितने महापुरुष देखे हैं और मै स्पष्ट रूप से कहूँगा कि जितने भी महापुरुषो के जीवन-चरित पढ़े हैं, उनमे इनका जीवन सब से पवित्र था, और तुम्हारे सामने यह तो स्पष्ट ही है कि आध्यात्मिक शक्ति का ऐसा अद्भुत आविर्भाव तुम्हारे देखने की तो बात ही अलग, इसके बारे मे तुमने कभी पढ़ा भी न होगा। उनके तिरोभाव के दस वर्ष के भीतर ही इस शक्ति ने सम्पूर्ण संसार को घेर लिया है, यह तुम प्रत्यक्ष देख रहे हो। अतएव कर्तव्य की प्रेरणा से अपनी जाति और धर्म की भलाई के लिए मै यह महान् आध्यात्मिक आदर्श तुम्हारे सामने प्रस्तुत करता हूँ। मुझे देखकर उसकी कल्पना न करना। मै एक बहुत ही दुर्बल माध्यम मात्र हूँ। उनके चरित्र का निर्णय मुझे देखकर न करना। वे इतने बड़े थे कि मै या उनके शिष्यो मे से कोई दूसरा सैकड़ो जीवन तक प्रयत्न करते रहने के बावजूद उनके यथार्थ स्वरूप के एक करोड़वे अंश के तुल्य भी न हो सकेगा। तुम लोग स्वयं ही अनुमान करो। तुम्हारे हृदय के अन्तस्तल मे

वे 'सनातन साक्षी' वर्तमान है, और मै हृदय से प्रार्थना करता हूँ कि हमारी जाति के कल्याण के लिए, हमारे देश की उन्नति के लिए तथा समग्र मानवजाति के हित के लिए वही श्रीरामकृष्णदेव तुम्हारा हृदय खोल दे, और इच्छा-अनिच्छा के वावजूद जो महायुगान्तर अवश्यम्भावी है, उसे कार्यान्वित करने के लिए वे तुम्हे सच्चा और दृढ़ बनावें। तुम्हे और हमे रुचे या न रुचे, इससे प्रभु का कार्य रुक नही सकता। अपने कार्य के लिए वे धूलि से भी सैकडो और हजारो कर्मी पैदा कर सकते हैं। उनकी अधीनता मे कार्य करने का अवसर मिलना ही हमारे परम सौभाग्य और गौरव की वात है।

तुम लोगो ने कहा है, हमे सम्पूर्ण संसार जीतना है। हाँ, यह हमे करना ही होगा। भारत को अवश्य ही संसार पर विजय प्राप्त करनी है। इसकी अपेक्षा किसी छोटे आदर्श से मुझे कभी भी सन्तोप न होगा। यह आदर्श, सम्भव है वहुत बड़ा हो और तुममे से अनेको को इसे सुनकर आश्चर्य होगा, किन्तु हमे इसे ही अपना आदर्श बनाना है। या तो हम सम्पूर्ण संसार पर विजय प्राप्त करेगे या मिट जाएँगे। इसके सिवा और कोई विकल्प नही है। जीवन का चिह्न है विस्तार। हमे संकीर्ण सीमा के वाहर जाना होगा, हृदय का प्रसार करना होगा, और यह दिखाना होगा कि हम जीवित हैं; अन्यथा हमे इसी पतन की दशा मे सडकर मरना होगा, इसके सिवा दूसरा कोई रास्ता नही है। इन दोनों मे एक चुन लो, फिर जिओ या मरो। छोटी छोटी वातों को लेकर हमारे देश मे जो द्वेष और कलह हुआ करता है, वह हम लोगो मे सभी को मालूम है। परन्तु मेरी वात मानो, ऐसा सभी देशो मे है। जिन राष्ट्रों के जीवन का मेरुदण्ड

राजनीति है, वे सब राष्ट्र आत्मरक्षा के लिए वैदेशिक नीति का सहारा लिया करते हैं। जब उनके अपने देश में आपस में बहुत अधिक लड़ाई-झगड़ा आरम्भ हो जाता है, तब वे किसी विदेशी राष्ट्र से झगड़ा मोल ले लेते हैं। इस तरह तत्काल घरेलू लड़ाई बन्द हो जाती है। हमारे भीतर भी गृहविवाद है, परन्तु उसे रोकने के लिए कोई वैदेशिक नीति नही है। संसार के सभी राष्ट्रों मे अपने शास्त्रों का सत्य प्रचार करना ही हमारी सनातन वैदेशिक नीति होनी चाहिए। यह हमे एक अखण्ड जाति के रूप मे सगठित करेगी। तुम राजनीति मे विशेष रुचि लेनेवालों से मेरा प्रश्न है कि क्या इसके लिए तुम कोई और प्रमाण चाहते हो ? आज की इस सभा से ही मेरी बात का यथेष्ट प्रमाण मिल रहा है।

दूसरे, इन सब स्वार्थपूण विचारों को छोड देने पर भी हमारे पीछे नि.स्वार्थ, महान् और सजीव दृष्टान्त पाये जाते हैं। भारत के पतन और दारिद्रच-दु ख का प्रधान कारण यह है कि घोंघे की तरह अपना सर्वांग समेटकर उसने अपना कार्यक्षेत्र संकुचित कर लिया था तथा आर्येतर दूसरी मानवजातियों के लिए, जिन्हें सत्य की तृष्णा थी, अपने जीवनप्रद सत्यरत्नो का भाण्डार नही खोला था। हमारे पतन का एक और प्रधान कारण यह भी है कि हम लोगो ने बाहर जाकर दूसरे राष्ट्रों से अपनी तुलना नहीं की। और तुम लोग जानते हो, जिस दिन से राजा राममोहन राय ने संकीर्णता की वह दीवार तोड़ी, उसी दिन से भारत मे थोड़ासा जीवन दिखाई देने लगा, जिसे आज तुम देख रहे हो। उसी दिन से भारत के इतिहास ने एक दूसरा मोड़ लिया और इस समय वह क्रमशः उन्नति के पथ पर अग्रसर हो

रहा है। अतीत काल मे यदि छोटी छोटी नदियाँ ही यहाँवालों ने देखी हों तो समझना कि अब बहुत बड़ी बाढ़ आ रही है, और कोई भी उसकी गति रोक न सकेगा। अतः तुम्हे विदेश जाना होगा, आदान-प्रदान ही अभ्युदय का रहस्य है। क्या हम दूसरो से सदा लेते ही रहेगे ? क्या हम लोग सदैव पश्चिमवासियों के पदप्रान्त मे बैठकर ही सब बातें, यहाँ तक कि धर्म भी सीखेगे ? हाँ, हम उन लोगो से कल-कारखाने के काम सीख सकते हैं, और भी दूसरी बहुतसी बातें उनसे सीख सकते है; परन्तु हमे भी उन्हें कुछ सिखाना होगा। और वह है हमारा धर्म, हमारी आध्यात्मिकता। ससार सर्वांगीण सभ्यता की अपेक्षा कर रहा है। शत शत शताब्दियों की अवनति, दुःख और दुर्भाग्य के आवर्त मे पड़कर भी हिन्दू जाति उत्तराधिकार मे प्राप्त धर्मरूपी जिन अमूल्य रत्नो को यत्नपूर्वक अपने हृदय से लगाये हुए है, उन्ही रत्नो की आशा से ससार उसकी ओर आग्रहभरी दृष्टि से निहार रहा है। तुम्हारे पूर्वजो के उन्ही अपूर्व रत्नो के लिए भारत से बाहर के मनुष्य किस तरह उद्ग्रीव हो रहे है, यह मै तुम्हें कैसे समझाऊँ ? यहाँ हम अनर्गल बकवास किया करते हैं, आपस मे झगड़ते रहते हैं, श्रद्धा के जितने गम्भीर विषय हैं उन्हे हँसकर उड़ा देते है, यहाँ तक कि इस समय प्रत्येक पवित्र वस्तु को हँसकर उडा देने की प्रवृत्ति एक जातीय दुर्गुण हो गयी है। इसी भारत मे हमारे पूर्वज जो सजीवन अमृत रख गये है, उसका एक कणमात्र पाने के लिए भी भारत से बाहर के लाखो मनुष्य कितने आग्रह के साथ हाथ फैलाये हुए है, यह हमारी समझ मे भला कैसे आ सकता है ! इसलिए हमे भारत के बाहर जाना ही होगा। हमारी आध्या-

त्मिकता के बदले में वे जो कुछ दे, वही हमे लेना होगा। चैतन्यराज्य के अपूर्व तत्त्वसमूहो के बदले हम जडराज्य के अद्भुत तत्त्वो को प्राप्त करेगे। चिरकाल तक शिष्य रहने से हमारा काम न होगा, हमे आचार्य भी होना होगा। समभाव के न रहने पर मित्रता सम्भव नही। और जब एक पक्ष सदा ही आचार्य का आसन पाता रहता है और दूसरा पक्ष सदा ही उसके पदप्रान्त मे बठकर शिक्षा ग्रहण किया करता है, तब दोनो में कभी भी समभाव की स्थापना नही हो सकती। यदि अग्रेज और अमरीकी जाति से समभाव रखने की तुम्हारी इच्छा हो, तो जिस तरह तुम्हे उनसे शिक्षा प्राप्त करनी है, उसी तरह उन्हे शिक्षा देनी भी होगी, और अब भी कितनी ही शताब्दियो तक संसार को शिक्षा देने की सामग्री तुम्हारे पास पर्याप्त है। इस समय यही करना होगा। उत्साह की आग हमारे हृदय में जलनी चाहिए। हम बगालियो को कल्पना-शक्ति के लिए प्रसिद्धि मिल चुकी है और मुझे विश्वास है कि यह शक्ति हममें है भी। कल्पनाप्रिय भावुक जाति कहकर हमारा उपहास भी किया गया है। परन्तु, मित्रो! मै तुमसे कहना चाहूँगा कि निस्सन्देह बुद्धि का आसन ऊँचा है, किन्तु यह अपनी परिमित सीमा के बाहर नही बढ सकती। हृदय—केवल हृदय के भीतर से ही दैवी प्रेरणा का स्फुरण होता है, और उसकी अनुभव-शक्ति से ही उच्चतम जटिल रहस्यो की मीमासा होती है और इसीलिए 'भावुक' बगालियो को ही यह काम करना होगा।

"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।"—'उठो, जागो और जब तक अभीप्सित वस्तु को प्राप्त नही कर लेते, तब तक

बराबर उसकी ओर बढते जाओ।' * कलकत्ता-निवासी युवको! उठो, जागो, शुभ मुहूर्त आ गया है। सब चीजे अपने आप तुम्हारे सामने खुलती जा रही हैं। हिम्मत करो और डरो मत। केवल हमारे ही शास्त्रो मे ईश्वर के लिए 'अभी.' विशेषण का प्रयोग किया गया है। हमे 'अभीः'—निर्भय—होना होगा, तभी हम अपने कार्य मे सिद्धि प्राप्त करेगे। उठो, जागो, तुम्हारी मातृभूमि को इस महाबलि की आवश्यकता है। इस कार्य की सिद्धि युवको से ही हो सकेगी। 'युवा, आशिष्ठ, द्रढिष्ठ, बलिष्ठ, मेधावी '†—उन्ही के लिए यह कार्य है। और ऐसे सैकड़ो—हजारो युवक कलकत्ते मे हैं। जैसा कि तुम लोग कहते हो, यदि मैंने कुछ किया है, तो याद रखना मैं वही एक नगण्य बालक हूँ जो किसी समय कलकत्ते की सड़को पर खेला करता था। अगर मैंने इतना किया तो इससे कितना अधिक तुम कर सकोगे! उठो, जागो, संसार तुम्हे पुकार रहा है। भारत के अन्य भागो मे बुद्धि है, धन भी है, परन्तु उत्साह की आग केवल हमारी ही जन्म-भूमि मे है। उसे बाहर आना ही होगा. इसलिए कलकत्ते के युवको, अपने रक्त मे उत्साह भरकर जागो। मत सोचो कि तुम गरीब हो, मत सोचो कि तुम्हारे मित्र नही हैं। अरे, क्या कभी तुमने देखा है कि रुपया मनुष्य का निर्माण करता है? नही, मनुष्य ही सदा रुपये का निर्माण करता है। यह सम्पूर्ण ससार मनुष्य की शक्ति से, उत्साह की शक्ति से, विश्वास की शक्ति से निर्मित हुआ है।

---

* कठोपनिषद् १।३।१४

† युवा स्यात्साधुयुवाध्यायक·। आशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठः। तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात्॥ (तैत्तिरीयोपनिषद् २।७)

तुममे से जिन लोगों ने उपनिषदों मे सब से अधिक सुन्दर कठोपनिषद् का अध्ययन किया है, उन्हे स्मरण होगा कि किस तरह वे राजा एक महायज्ञ का अनुष्ठान करने चले थे, और दक्षिणा मे अच्छी अच्छी चीजे न देकर अनुपयोगी गाये और घोड़े दे रहे थे और कथा के अनुसार उसी समय उनके पुत्र नचिकेता के हृदय मे श्रद्धा का आविर्भाव हुआ। मै तुम्हारे लिए इस 'श्रद्धा' शब्द का अंग्रेजी अनुवाद न करूँगा, क्योकि यह गलत होगा। समझने के लिए अर्थ की दृष्टि से यह एक अद्भुत शब्द है और बहुत कुछ तो इसके समझने पर निर्भर करता है। हम देखेंगे कि यह किस तरह शीघ्र ही फल देनेवाली है। श्रद्धा के आविर्भाव के साथ ही हम नचिकेता को आप ही आप इस तरह बातचीत करते हुए देखते है : 'मै बहुतों से श्रेष्ठ हूँ, कुछ लोगो से छोटा भी हूँ, परन्तु कही भी ऐसा नही हूँ कि सब से छोटा होऊँ, अतः मै भी कुछ कर सकता हूँ।' उसका यह आत्म-विश्वास और साहस बढ़ता गया और जो समस्या उसके मन मे थी, उस बालक ने उसे हल करना चाहा।—वह समस्या मृत्यु की समस्या थी। इसकी मीमासा यम के घर जाने पर ही हो सकती थी, अतः वह बालक वही गया। निर्भीक नचिकेता यम के घर जाकर तीन दिन तक प्रतीक्षा करता रहा, और तुम जानते हो किस तरह उसने अपना अभीप्सित प्राप्त किया। हमे जिस चीज की आवश्यकता है, वह यह श्रद्धा ही है। दुर्भाग्यवश भारत से इसका प्रायः लोप हो गया है, और हमारी वर्तमान दुर्दशा का कारण भी यही है। एकमात्र इस श्रद्धा के भेद से ही मनुष्य मनुष्य में अन्तर पाया जाता है। इसका और दूसरा कारण नही। यह श्रद्धा ही है, जो एक मनुष्य को बड़ा और दूसरे को

कमजोर और छोटा वनाती है। हमारे गुरुदेव कहा करते थे, जो अपने को दुर्वल सोचता है, वह दुर्वल ही हो जाता है। और यह विलकुल ठीक ही है। इस श्रद्धा को तुम्हे पाना ही होगा। पश्चिमी जातियो द्वारा प्राप्त की हुई जो भौतिक शक्ति तुम देख रहे हो, वह इस श्रद्धा का ही फल है, क्योंकि वे अपने दैहिक बल के विश्वासी हैं, और यदि तुम अपनी आत्मा पर विश्वास करो तो वह और कितना अधिक कारगर होगा ? उस अनन्त आत्मा, उस अनन्त शक्ति पर विश्वास करो, तुम्हारे शास्त्र और तुम्हारे ऋषि एक स्वर से उसका प्रचार कर रहे हैं। वह आत्मा अनन्त शक्ति का आधार है। कोई उसका नाश नही कर सकता। उसकी वह अनन्त शक्ति प्रकट होने के लिए केवल आह्वान की प्रतीक्षा कर रही है। यहाँ दूसरे दर्शनो और भारत के दर्शनो मे महान् अन्तर पाया जाता है। द्वैतवादी हो, चाहे विशिष्टाद्वैतवादी या अद्वैतवादी हो, सभी को यह दृढ विश्वास है कि आत्मा मे सम्पूर्ण शक्ति अवस्थित है; केवल उसे व्यक्त करना है। इसके लिए हमे श्रद्धा की ही जरूरत है, हमे, यहाँ जितने भी मनुष्य हैं, सभी को इसकी आवश्यकता है। इसी श्रद्धा को प्राप्त करने का महान् कार्य तुम्हारे सामने पडा हुआ है। हमारे जातीय खून मे एक प्रकार के भयानक रोग का वीज समा रहा है, और वह है प्रत्येक विषय को हँसकर उड़ा देना, गाम्भीर्य का अभाव, इस दोष का सम्पूर्ण रूप से त्याग करो। वीर वनो, श्रद्धासम्पन्न होओ, और सब कुछ तो इसके वाद आ ही जाएगा।

अव तक मैंने कुछ भी नही किया, यह कार्य तुम्हे करना होगा। अगर कल मैं मर जाऊँ तो इस कार्य का अन्त नहीं

होगा। मुझे दृढ़ विश्वास है, सर्वसाधारण जनता के भीतर से हजारों मनुष्य आकर इस व्रत को ग्रहण करेंगे और इस कार्य की इतनी उन्नति तथा विस्तार करेंगे, जिसकी आशा मैंने कभी कल्पना मे भी न की होगी। मुझे अपने देश पर विश्वास है—विशेषतः अपने देश के युवकों पर। वंगाल के युवकों पर सब से वड़ा भार है। इतना वड़ा भार किसी दूसरे प्रान्त के युवकों पर कभी नही आया। पिछले दस वर्षो तक मैंने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया। इससे मेरी दृढ़ धारणा हो गयी है कि वंगाल के युवकों के भीतर से ही उस शक्ति का प्रकाश होगा, जो भारत को उसके आध्यात्मिक अधिकार पर फिर से प्रतिष्ठित करेगी। मै निश्चयपूर्वक कहता हूँ, इन हृदयवान् उत्साही वगाली युवको के भीतर से ही सैकड़ो वीर उठेंगे, जो हमारे पूर्वजो द्वारा प्रचारित सनातन आध्यात्मिक सत्यो का प्रचार करने और शिक्षा देने के लिए ससार के एक छोर से दूसरे छोर तक भ्रमण करेंगे। और तुम्हारे सामने यही महान् कर्तव्य है। अतएव एक बार और तुम्हे उस "उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निवोधत" रूपी महान् आदर्श-वाक्य का स्मरण दिलाकर मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ। डरना नही, क्योंकि मनुष्यजाति के इतिहास मे देखा जाता है कि जितनी शक्तियों का विकास हुआ है, सभी साधारण मनुष्यों के भीतर से ही हुआ है। संसार मे बड़े बड़े जितने प्रतिभाशाली मनुष्य हुए हैं, सभी साधारण मनुष्यों के भीतर से ही हुए हैं, और इतिहास की घटनाओं की पुनरावृत्ति होगी ही। किसी बात से मत डरो। तुम अद्भुत कार्य करोगे। जिस क्षण तुम डर जाओगे, उसी क्षण तुम बिलकुल शक्तिहीन हो जाओगे। संसार में दुःख का मुख्य कारण भय ही है। यही सब से वड़ा कुसंस्कार है। यह

भय हमारे दुःखों का कारण है, और वह निर्भीकता है जिससे क्षण भर मे स्वर्ग प्राप्त होता है। अतएव, "उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।"

महानुभावो, मेरे प्रति आप लोगों ने जो अनुग्रह प्रकट किया है, उसके लिए आप लोगो को मै फिर से धन्यवाद देता हूँ। मै आप लोगों से इतना ही कह सकता हूँ कि मेरी इच्छा, मेरी प्रबल और आन्तरिक इच्छा यह है कि मै ससार की, और सर्वोपरि अपने देश और देशवासियो की थोडीसी भी सेवा कर सकूँ।

भारत का भविष्य

यह वही प्राचीन भूमि है, जहाँ दूसरे देशों को जाने से पहले तत्त्वज्ञान ने आकर अपनी वासभूमि बनायी थी। यह वही भारत है, जहाँ के आध्यात्मिक प्रवाह का स्थूल प्रतिरूप उसके बहनेवाले समुद्राकार नद हैं, जहाँ चिरन्तन हिमालय श्रेणीबद्ध उठा हुआ अपने हिमशिखरों द्वारा मानो स्वर्गराज्य के रहस्यों की ओर निहार रहा है। यह वही भारत है, जिसकी भूमि पर संसार के सर्वश्रेष्ठ ऋषियों की चरणरज पड़ चुकी है। यही सब से पहले मनुष्य-प्रकृति तथा अन्तर्जगत् के रहस्योद्घाटन की जिज्ञासाओं के अंकुर उगे थे। आत्मा का अमरत्व, अन्तर्यामी ईश्वर एवं जगत्प्रपंच तथा मनुष्य के भीतर सर्वव्यापी परमात्मा-विषयक मतवादों का पहले पहल यहीं उद्भव हुआ था। और यहीं धर्म और दर्शन के आदर्शों ने अपनी चरम उन्नति प्राप्त की थी। यह वही भूमि है, जहाँ से उमड़ती हुई बाढ़ की तरह धर्म तथा दार्शनिक तत्त्वों ने समग्र संसार को बार बार प्लावित कर दिया, और यही भूमि है, जहाँ से पुनः ऐसी ही तरंगें उठकर निस्तेज जातियों में शक्ति और जीवन का संचार कर देंगी। यह वही भारत है जो शताब्दियों के आघात, विदेशियों के शत शत आक्रमण और सैकड़ों आचार-व्यवहारों के विपर्यय सहकर भी अक्षय बना हुआ है। यह वही भारत है जो अपने अविनाशी वीर्य और जीवन के साथ अब तक पर्वत से भी दृढ़तर भाव से खड़ा है। आत्मा जैसे अनादि, अनन्त और अमृतस्वरूप है, वैसे ही हमारी भारतभूमि का जीवन है। और हम इसी देश की सन्तान हैं।

मद्रास में दिया गया व्याख्यान

भारत की सन्तानो, तुमसे आज मै यहाँ कुछ व्यावहारिक बाते कहूँगा, और तुम्हे तुम्हारे पूर्व गौरव की याद दिलाने का उद्देश्य केवल इतना ही है। कितनी ही बार मुझसे कहा गया है कि अतीत की ओर नजर डालने से सिर्फ मन की अवनति ही होती है और इससे कोई फल नही होता; अतः हमे भविष्य की ओर दृष्टि रखनी चाहिए। यह सच है। परन्तु अतीत से ही भविष्य का निर्माण होता है। अतः जहाँ तक हो सके, अतीत की ओर देखो, पीछे जो चिरन्तन निर्झर वह रहा है, आकण्ठ उसका जल पीओ और उसके बाद सामने देखो और भारत को उज्ज्वल-तर, महत्तर और पहले से और भी ऊँचा उठाओ। हमारे पूर्वज महान् थे। पहले यह बात हमे याद करनी होगी। हमे समझना होगा कि हम किन उपादानों से बने हैं, कौनसा खून हमारी नसो मे बह रहा है। उस खून पर हमे विश्वास करना होगा। और अतीत के उसके कृतित्व पर भी, इस विश्वास और अतीत गौरव के ज्ञान से हम अवश्य एक ऐसे भारत की नीव डालेगे, जो पहले से श्रेष्ठ होगा। अवश्य ही यहाँ बीच बीच मे दुर्दशा और अवनति के युग भी रहे हैं, पर उनको मै अधिक महत्त्व नही देता। हम सभी उसके विषय मे जानते है। ऐसे युगो का होना आवश्यक था। किसी विशाल वृक्ष से एक सुन्दर पका हुआ फल पैदा हुआ। फल जमीन पर गिरा, मुरझाया और सडा। इस विनाश से जो अंकुर उगा, सम्भव है वह पहले के वृक्ष से बड़ा हो जाए। अवनति के जिस युग के भीतर से हमे गुजरना पड़ा, वे सभी आवश्यक थे। इसी अवनति के भीतर से भविष्य का भारत आ रहा है, वह अंकुरित हो चुका है, उसके नये पल्लव निकल चुके हैं और उस शक्तिधर विशालकाय ऊर्ध्वमूल वृक्ष का निकलना

शुरू हो चुका है। और उसी के सम्बन्ध मे मैं तुमसे कहने जा रहा हूँ।

किसी भी दूसरे देश की अपेक्षा भारत की समस्याएँ अधिक जटिल और गुरुतर हैं। जाति, धर्म, भाषा, शासन-प्रणाली—ये ही एक साथ मिलकर एक राष्ट्र की सृष्टि करते हैं। यदि एक एक जाति को लेकर हमारे राष्ट्र से तुलना की जाए तो हम देखेंगे कि जिन उपादानों से संसार के दूसरे राष्ट्र संगठित हुए है, वे संख्या मे यहाँ के उपादानों से कम हैं। यहाँ आर्य है, द्रविड़ हैं, तातार हैं, तुर्क हैं, मुगल हैं, यूरोपीय हैं,—मानो ससार की सभी जातियाँ इस भूमि मे अपना अपना खून मिला रही हैं। भाषा का यहाँ एक विचित्र ढंग का जमावड़ा है, आचार-व्यवहारों के सम्बन्ध मे दो भारतीय जातियों मे जितना अन्तर है, उतना पूर्वी और यूरोपीय जातियों मे नही।

हमारी एकमात्र सम्मिलन-भूमि है—हमारी पवित्र परम्परा, हमारा धर्म। एकमात्र सामान्य आधार वही है, और उसी पर हमें सगठन करना होगा। यूरोप में राजनीतिक विचार ही राष्ट्रीय एकता का कारण है। किन्तु एशिया मे राष्ट्रीय ऐक्य का आधार धर्म ही है, अतः भारत के भविष्य-सगठन की पहली शर्त के तौर पर उसी धार्मिक एकता की ही आवश्यकता है। देश भर में एक ही धर्म सब को स्वीकार करना होगा। एक ही धर्म से मेरा क्या मतलब है? यह उस तरह का एक ही धर्म नहीं, जिसका ईसाइयों, मुसलमानों या बौद्धों में प्रचार है। हम जानते हैं, हमारे विभिन्न सम्प्रदायों के सिद्धान्त तथा दावे चाहे कितने ही विभिन्न क्यों न हों, हमारे धर्म मे कुछ सिद्धान्त ऐसे हैं जो सभी सम्प्रदायों द्वारा मान्य हैं। इस तरह हमारे सम्प्रदायो के

ऐसे कुछ सामान्य आधार अवश्य है। उनका स्वीकार करने पर हमारे धर्म मे अद्भुत विविधता के लिए गुंजाइश हो जाती है, और साथ ही विचार और अपनी रुचि के अनुसार जीवननिर्वाह के लिए हमे सम्पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हो जाती है। हम लोग, कम से कम वे जिन्होने इस पर विचार किया है, यह बात जानते है। और अपने धर्म के ये जीवनप्रद सामान्य तत्त्व हम सब के सामने लाएँ और देश के सभी स्त्री-पुरुष, बाल वृद्ध, उन्हे जाने-समझे तथा जीवन मे उतारे--यही हमारे लिए आवश्यक है। सर्वप्रथम यही हमारा कार्य है।

अतः हम देखते है कि एशिया मे और विशेषत· भारत में जाति, भाषा, समाज-सम्बन्धी सभी बाधाएँ धर्म की इस एकीकरण-शक्ति के सामने उड जाती हैं। हम जानते हैं कि भारतीय मन के लिए धार्मिक आदर्श से बडा और कुछ भी नही है। धर्म ही भारतीय जीवन का मूलमन्त्र है, और हम केवल सब से कम बाधावाले मार्ग का अनुसरण करके ही कार्य मे अग्रसर हो सकते हैं। यह केवल सत्य ही नही कि धार्मिक आदर्श यहाँ सब से बड़ा आदर्श है, किन्तु भारत के लिए कार्य करने का एकमात्र सम्भाव्य उपाय यही है। पहले उस पथ को सुदृढ किये बिना, दूसरे मार्ग से कार्य करने पर उसका फल घातक होगा। इसीलिए भविष्य के भारत-निर्माण का पहला कार्य, वह पहला सोपान, जिसे युगो के उस महाचल पर खोदकर बनाना होगा, भारत की यह धार्मिक एकता ही है। यह शिक्षा हम सब को मिलनी चाहिए कि हम हिन्दू—द्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी या अद्वैतवादी, अथवा दूसरे सम्प्रदाय के लोग, जैसे शैव, वैष्णव, पाशुपत आदि भिन्न भिन्न मतो के होते हुए भी आपस मे कुछ समान भाव भी रखते है,

और अब वह समय आ गया है कि अपने हित के लिए, अपनी जाति के हित के लिए हम इन तुच्छ भेदों और विवादो को त्याग दें। सचमुच ये झगड़े बिलकुल वाहियात हैं। हमारे शास्त्र इनकी निन्दा करते हैं, हमारे पूर्व पुरुषों ने इनके बहिष्कार का उपदेश दिया है, और वे महापुरुषगण, जिनके वंशज हम अपने को बताते हैं और जिनका खून हमारी नसो मे बह रहा है, अपनी सन्तानो को छोटे छोटे भेदों के लिए झगड़ते हुए देखकर उनको घोर घृणा की दृष्टि से देखते हैं।

लड़ाई-झगड़े छोड़ने के साथ ही अन्य विषयो की उन्नति अवश्य होगी, यदि जीवन का रक्त सशक्त एवं शुद्ध है तो शरीर मे विषैले कीटाणु नही रह सकते। हमारी आध्यात्मिकता ही हमारा जीवन-रक्त है। यदि यह साफ बहता रहे, यदि यह शुद्ध एवं सशक्त बना रहे, तो सब कुछ ठीक है। राजनीतिक सामाजिक, चाहे जिस किसी तरह की ऐहिक त्रुटियाँ हों, चाहे देश की निर्धनता ही क्यों न हो, यदि खून शुद्ध है तो सब सुधर जाएँगे। यदि रोगवाले कीटाणु शरीर से निकाल दिये जाएँ तो फिर दूसरी कोई बुराई खून मे नहीं समा सकती। उदाहरणार्थ आधुनिक चिकित्साशास्त्र की एक उपमा लो। हम जानते हैं कि किसी बीमारी के फैलने के दो कारण होते है—एक तो बाहर से कुछ विषैले कीटाणुओं का प्रवेश, दूसरा शरीर की अवस्थाविशेष। यदि शरीर की अवस्था ऐसी न हो जाए कि वह कीटाणुओं को घुसने दे, यदि शरीर की जीवनशक्ति इतनी क्षीण न हो जाए कि कीटाणु शरीर मे घुसकर बढ़ते रहे, तो संसार मे किसी भी कीटाणु मे इतनी शक्ति नही, जो शरीर मे पैठकर बीमारी पैदा कर सके। वास्तव मे प्रत्येक मनुष्य के शरीर के

भीतर सदा करोडों कीटाणु प्रवेश करते रहते हैं, परन्तु जव तक शरीर वलवान् है, हमे उनकी कोई खवर नही रहती। जव शरीर कमजोर हो जाता है, तभी ये विपैले कीटाणु उस पर अधिकार कर लेते हैं और रोग पैदा करते है। राष्ट्रीय जीवन के वारे मे भी यही वात है। जव राष्ट्रीय जीवन कमजोर हो जाता है, तव हर तरह के रोग के कीटाणु उसके शरीर मे इकट्ठे जमकर उसकी राजनीति, समाज, शिक्षा और वुद्धि को रुग्ण वना देते हैं। अतएव उसकी चिकित्सा के लिए हमे इस वीमारी की जड तक पहुँचकर रक्त से कुल दोषो को निकाल देना चाहिए। तव उद्देश्य यह होगा कि मनुष्य वलवान् हो, खून शुद्ध और शरीर तेजस्वी हो, जिससे वह सव वाहरी विपों को दवा और हटा देने लायक हो सके।

हमने देखा है कि हमारा धर्म ही हमारे तेज, हमारे वल, यही नही, हमारे राष्ट्रीय जीवन का भी मूल आधार है। इस समय मै यह तर्क-वितर्क करने नही जा रहा हूँ कि धर्म उचित है या नही, सही है या नहीं, और अन्त तक यह लाभदायक है या नही। किन्तु अच्छा हो या वुरा, धर्म ही हमारे राष्ट्रीय जीवन का प्राण है; तुम उससे निकल नही सकते। अभी और चिरकाल के लिए भी तुम्हे उसी का अवलम्ब ग्रहण करना होगा और तुम्हे उसी के आधार पर खड़ा होना होगा, चाहे तुम्हे इस पर उतना विश्वास हो या न हो, जो मुझे है। तुम इसी धर्म मे वँधे हुए हो, और अगर तुम इसे छोड़ दो तो चूर चूर हो जाओगे। वही हमारी जाति का जीवन है और उसे अवश्य ही सशक्त वनाना होगा। तुम जो युगों के धक्के सहकर भी अक्षय हो, इसका कारण केवल यही है कि धर्म के लिए तुमने वहुत कुछ

प्रयत्न किया था, उस पर सब कुछ निछावर किया था। तुम्हारे पूर्वजों ने धर्मरक्षा के लिए सब कुछ साहसपूर्वक सहन किया था, मृत्यु को भी उन्होने हृदय से लगाया था। विदेशी विजेताओं द्वारा मन्दिर के बाद मन्दिर तोड़े गये, परन्तु उस बाढ़ के बह जाने मे देर नही हुई कि मन्दिर के कलश फिर खड़े हो गये। दक्षिण के ये ही कुछ पुराने मन्दिर और गुजरात के सोमनाथ के जैसे मन्दिर तुम्हे विपुल ज्ञान प्रदान करेगे। वे जाति के इतिहास के भीतर वह गहरी अन्तर्दृष्टि देगे, जो ढेरो पुस्तकों से भी नही मिल सकती। देखो कि किस तरह ये मन्दिर सैकड़ो आक्रमणों और सैकड़ों पुनरुत्थानों के चिह्न धारण किये हुए है, ये बार बार नष्ट हुए और बार बार ध्वसावशेष से उठकर नया जीवन प्राप्त करते हुए अब पहले ही की तरह अटल रूप से खड़े हैं। इसलिए इस धर्म मे ही हमारे राष्ट्र का मन है, हमारे राष्ट्र का जीवनप्रवाह है। इसका अनुसरण करोगे तो यह तुम्हे गौरव की ओर ले जाएगा। इसे छोड़ोगे तो मृत्यु निश्चित है। अगर तुम उस जीवनप्रवाह से बाहर निकल आये तो मृत्यु ही एकमात्र परिणाम होगा और पूर्ण नाश ही एकमात्र परिणति। मेरे कहने का यह मतलब नही कि दूसरी चीज की आवश्यकता ही नही, मेरे कहने का यह अर्थ नहीं कि राजनीतिक या सामाजिक उन्नति अनावश्यक है; किन्तु मेरा तात्पर्य यही है और मै तुम्हे सदा इसकी याद दिलाना चाहता हूँ कि ये सब यहाँ गौण विषय है, मुख्य विषय धर्म है। भारतीय मन पहले धार्मिक है, फिर कुछ और। अतः धर्म को ही सशक्त बनाना होगा। पर यह किया किस तरह जाए? मै तुम्हारे सामने अपने विचार रखता हूँ। बहुत दिनों से, यहाँ तक कि अमेरिका के

लिए मद्रास का समुद्री तट छोड़ने के वर्षो पहले से ये मेरे मन मे थे और उन्ही को प्रचारित करने के लिए मै अमेरिका और इंग्लैड गया था। धर्म-महासभा या किसी और वस्तु की मुझे बिलकुल परवाह नही थी, वह तो एक सुयोग मात्र था। वस्तुतः मेरे ये सकल्प ही थे जो सारे ससार मे मुझे लिये फिरते रहे।

मेरा विचार है, पहले हमारे शास्त्रग्रन्थो मे भरे पड़ आध्यात्मिकता के रत्नो को, जो कुछ ही मनुष्यों के अधिकार मे मठो और अरण्यो मे छिपे हुए है, बाहर लाना होगा। जिन लोगो के अधिकार मे ये छिपे हुए है, केवल उन्ही से इस ज्ञान का उद्धार करना पर्याप्त न होगा, वरन् उससे भी दुर्भेद्य पेटिका अर्थात् जिस भाषा मे ये सुरक्षित हैं, उस संस्कृत भाषा के शताब्दियो के पर्त खाये हुए अभेद्य शब्दजाल से उन्हे निकालना होगा। तात्पर्य यह है कि मै उन्हे सब के लिए सुलभ कर देना चाहता हूँ। मै इन तत्त्वो को निकालकर सब की, भारत के प्रत्येक मनुष्य की, सामान्य सम्पत्ति बनाना चाहता हूँ, चाहे वह सस्कृत जानता हो या नहीं। इस मार्ग की बहुत बड़ी कठिनाई हमारी गौरवशाली संस्कृत भाषा ही है, और यह कठिनाई तब तक दूर नही हो सकती, जब तक हमारे राष्ट्र के सभी मनुष्य सस्कृत के अच्छे विद्वान् न हो जाएँ। यह कठिनाई तुम्हारी समझ मे आ जाएगी, जब मै कहूँगा कि आजीवन इस संस्कृत भाषा का अध्ययन करने पर भी जब मै इसकी कोई नयी पुस्तक उठाता हूँ, तब वह मुझे बिलकुल नयी जान पड़ती है। अब सोचो कि जिन लोगो ने कभी विशेष रूप से इस भाषा का अध्ययन करने का समय नही पाया, उनके लिए यह भाषा कितनी अधिक क्लिष्ट होगी। अतः मनुष्यो की बोलचाल की भाषा मे

उन विचारो की शिक्षा देनी होगी। साथ ही संस्कृत की भी शिक्षा अवश्य होती रहनी चाहिए, क्योकि संस्कृत शब्दों की ध्वनि मात्र से ही जाति को एक प्रकार का गौरव, शक्ति और बल प्राप्त हो जाता है। महान् धर्माचार्य रामानुज, चैतन्य और कबीर ने भारत की नीची जातियों को उठाने का जो प्रयत्न किया था, उसमे उन्हे अपने ही जीवनकाल मे अद्भुत सफलता मिली थी। किन्तु फिर उनके बाद उस कार्य का जो शोचनीय परिणाम हुआ, उसकी कारणमीमांसा होनी चाहिए, और जिस कारण उन बड़े बड़े धर्माचार्यों के तिरोभाव के प्रायः एक ही शताब्दी के भीतर वह उन्नति रुक गयी, उसकी भी मीमांसा होनी चाहिए। इसका रहस्य यह है—उन्होने नीची जातियों को उठाया; वे सब चाहते थे कि ये उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ हो जाएँ, परन्तु उन्होने जनता मे संस्कृत का प्रचार करने मे अपनी शक्ति नही लगायी। यहाँ तक कि भगवान् बुद्ध ने भी यह भूल की कि उन्होंने जनता मे संस्कृत भाषा का अध्ययन बन्द कर दिया। वे तुरन्त फल पाने के इच्छुक थे, इसीलिए उस समय की भाषा पाली मे सस्कृत से अनुवाद कर उन्होने उन विचारों का प्रचार किया। यह बहुत ही सुन्दर हुआ था। जनता ने उनका अभिप्राय समझा, क्योकि वे जनता की बोलचाल की भाषा मे उपदेश देते थे। यह बहुत ही अच्छा हुआ था। इससे उनके भाव बहुत शीघ्र फैले और बहुत दूर दूर तक पहुँचे। किन्तु इसके साथ साथ संस्कृत का भी प्रचार होना चाहिए था। ज्ञान का विस्तार हुआ सही, पर उसके साथ साथ प्रतिष्ठा नहीं बनी, संस्कार नहीं बना। संस्कृति ही युग के आघातों को सहन कर सकती है, मात्र ज्ञानराशि नही। तुम

संसार के सामने प्रभूत ज्ञान रख सकते हो, परन्तु इससे उसका विशेष उपकार न होगा। संस्कार को रक्त मे व्याप्त हो जाना चाहिए। वर्तमान समय मे हम कितने ही राष्ट्रों के सम्बन्ध मे जानते हैं, जिनके पास विशाल ज्ञान का आगार है, परन्तु इससे क्या? वे वाघ की तरह नृशंस हैं, वे बर्बरो के सदृश हैं, क्योंकि उनका ज्ञान सस्कार मे परिणत नही हुआ है। सभ्यता की तरह ज्ञान भी चमड़े की ऊपरी सतह तक ही सीमित है, छिछला है, और एक खरोंच लगते ही वह पुरानी नृशंसता जग उठती है। ऐसी घटनाएँ हुआ करती हैं। यही भय है। जनता को उसकी बोलचाल की भाषा मे शिक्षा दो, उसको भाव दो, वह बहुत कुछ जान जाएगी, परन्तु साथ ही कुछ और भी जरूरी है—उसको सस्कृति का बोध दो। जब तक तुम यह नही कर सकते, तब तक उनकी उन्नत दशा कदापि स्थायी नही हो सकती। एक ऐसे नवीन वर्ण की सृष्टि होगी, जो संस्कृत भाषा सीखकर शीघ्र ही दूसरे वर्णो के ऊपर उठेगी और पहले की तरह उन पर अपना प्रभुत्व फैलाएगी। ऐ पिछड़ी जाति के लोगो, मैं तुम्हे बतलाता हूँ कि तुम्हारे बचाव का, तुम्हारी अपनी दशा को उन्नत करने का एकमात्र उपाय संस्कृत पढ़ना है, और यह लड़ना-झगड़ना और उच्च वर्णो के विरोध मे लेख लिखना व्यर्थ है। इससे कोई उपकार न होगा, इससे लड़ाई-झगडे और बढेगे, और यह जाति, दुर्भाग्यवश पहले ही से जिसके टुकड़े टुकड़े हो चुके है, और भी टुकड़ो मे बँटती रहेगी। जातियों मे समता लाने के लिए एकमात्र उपाय उस संस्कार और शिक्षा का अर्जन करना है, जो उच्च वर्णो का बल और गौरव है। यदि यह तुम कर सको तो जो कुछ तुम चाहते हो, वह तुम्हे मिल जाएगा।

इसके साथ मैं एक और प्रश्न पर विचार करना चाहता हूं, जो खासकर मद्रास से सम्बन्ध रखता है। एक मत है कि दक्षिण भारत मे द्रविड़ नाम की एक जाति के मनुष्य थे, जो उत्तर भारत की आर्य नामक जाति से विलकुल भिन्न थे और दक्षिण भारत के ब्राह्मण ही उत्तर भारत से आये हुए आर्य है; अन्य जातियाँ दक्षिणी ब्राह्मणो से विलकुल ही पृथक् जाति की है। भाषा-वैज्ञानिक महाशय, मुझे क्षमा कीजिएगा, यह मत विलकुल निराधार है। इसका एकमात्र प्रमाण यह है कि उत्तर और दक्षिण की भाषा मे भेद है। दूसरा भेद मेरी नजर मे नही आता। हम यहाँ उत्तर भारत के इतने लोग है, मैं अपने यूरोपीय मित्रों से कहता हूँ कि वे इस सभा के उत्तरी भारत और दक्षिणी भारत के लोगों को चुनकर अलग कर दे। भेद कहाँ है? जरा सा भेद भाषा मे है। पूर्वोक्त मतवादी कहते है कि दक्षिणी ब्राह्मण जब उत्तर से आये थे, तब वे संस्कृत बोलते थे, अभी यहाँ आकर द्राविड़ भाषा बोलते बोलते संस्कृत भूल गये। यदि ब्राह्मणों के सम्बन्ध मे ऐसी बात है तो फिर दूसरी जातियों के सम्बन्ध भी यही मे बात क्यो न होगी? क्यों न कहा जाए कि दूसरी जातियाँ भी एक एक करके उत्तर भारत से आयी है, उन्होंने द्राविड़ भाषा को अपनाया और संस्कृत भूल गयीं? यह युक्ति तो दोनों ओर लग सकती है। ऐसी वाहियात वातो पर विश्वास न करो। यहाँ ऐसी कोई द्रविड जाति रही होगी, जो यहाँ से लुप्त हो गयी है, और उनमे से जो कुछ थोड़े से रहे थे, वे जंगलों और दूसरे दूसरे स्थानो मे बस गये। यह विलकुल सम्भव है कि संस्कृत के बदले वह द्राविड़ भाषा ले ली गयी हो, परन्तु य सब आर्य ही हैं, जो उत्तर से आये। सारे

भारत के मनुष्य आर्यों के सिवा और कोई नही।

इसके बाद एक दूसरा विचार है कि शूद्र लोग निश्चय ही आदिम जाति के या अनार्य हैं। तब वे क्या है ? वे गुलाम है। विद्वान् कहते है कि इतिहास अपने को दुहराता है। अमरीकी, अंग्रेज, डच और पुर्तगाली बेचारे अफ्रीकियों को पकड़ लेते थे, जब तक वे जीवित रहते, उनसे घोर परिश्रम कराते थे, और इनकी मिश्रित सन्ताने भी दासता मे उत्पन्न होकर चिरकाल तक दासता मे ही पड़ी रहती थी। इस अद्भुत उदाहरण से मन हजारो वर्ष पीछे जाकर यहाँ भी उसी तरह की घटनाओं की कल्पना करता है, और हमारे पुरातत्त्ववेत्ता भारत के सम्बन्ध मे स्वप्न देखते हैं कि भारत काली आँखोवाले आदिवासियों से भरा हुआ था, और उज्ज्वल आर्य बाहर से आये--परमात्मा जाने कहाँ से आये ! कुछ लोगों के मत से वे मध्य तिब्बत से आये, दूसरे कहते हैं वे मध्य एशिया से आये। कुछ स्वदेशप्रमी अंग्रेज हैं जो सोचते हैं कि आर्य लाल बालवाले थे। अपनी रुचि के अनुसार दूसरे सोचते हैं कि वे सब काले बालवाले थे। अगर लेखक खुद काले बालवाला मनुष्य हुआ तो सभी आर्य काले बालवाले थे ! कुछ दिन हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया था कि आर्य स्विट्जरलैंड की झीलों के किनारे बसते थे। मुझे जरा भी दुःख न होता, अगर वे सब के सब, इन सब सिद्धान्तो के साथ, वही डूब मरते। आजकल कोई कोई कहते हैं कि वे उत्तरी ध्रुव मे रहते थे। ईश्वर आर्यो और उनके निवास-स्थलो पर कृपादृष्टि रखे। इन सिद्धान्तो की सत्यता के बारे म यही कहना है कि हमारे शास्त्रों मे एक भी शब्द नही है, जो प्रमाण दे सके कि आर्य भारत के बाहर से किसी देश से आये।

हाँ, प्राचीन भारत में अफगानिस्तान भी शामिल था, बस इतना ही। और यह सिद्धान्त भी कि शूद्र अनार्य और असंख्य थे, बिलकुल अतार्किक और अयौक्तिक है। उन दिनों यह सम्भव ही नहीं था कि मुट्ठी भर आर्य यहाँ आकर लाखों अनार्यों पर अधिकार जमाकर बस गये हों। अजी, वे अनार्य उन्हे खा जाते, पाँच ही मिनट में उनकी चटनी बना डालते। इस समस्या की एकमात्र व्याख्या महाभारत मे मिलती है। उसमे लिखा है कि सत्ययुग के आरम्भ मे एक ही जाति ब्राह्मण थी और फिर पेशे के भेद से वह भिन्न भिन्न जातियों मे बँटती गयी। बस, यही एकमात्र व्याख्या सच और युक्तिपूर्ण है। भविष्य में जो सत्ययुग आ रहा है, उसमे ब्राह्मणेतर सभी जातियाँ फिर ब्राह्मण रूप में परिणत होंगी।

इसीलिए भारतीय जातिसमस्या की मीमांसा इसी प्रकार होती है कि उच्च वर्णों को गिराना नहीं होगा, ब्राह्मणों का अस्तित्व लोप करना नहीं होगा। भारत म ब्राह्मणत्व ही मनुष्यत्व का चरम आदर्श है। इसे शंकराचार्य ने गीता के भाष्यारम्भ मे बड़े ही सुन्दर ढंग से पेश किया है, जहाँ कि उन्होंने ब्राह्मणत्व की रक्षा के लिए प्रचारक के रूप मे श्रीकृष्ण के आने का कारण बतलाया है। यही उनके अवतरण का महान् उद्देश्य था। इस ब्राह्मण का, इस ब्रह्मज्ञ पुरुष का, इस आदर्श और सिद्ध पुरुष का रहना परमावश्यक है, इसका लोप कदापि नहीं होना चाहिए। और इस समय इस जातिभेद की प्रथा मे जितने दोष है, उनके रहते हुए भी, हम जानते हैं कि हमे ब्राह्मणों को यह श्रेय देने के लिए तैयार रहना होगा कि दूसरी जातियों की अपेक्षा उन्हीं में से अधिकसंख्यक मनुष्य यथार्थ ब्राह्मणत्व को लेकर आये हैं। यह

सच है। दूसरी जातियों को उन्हे यह श्रेय देना ही होगा, यह उनका प्राप्य है। हमे बहुत स्पष्टवादी होकर साहस के साथ उनके दोषो की आलोचना करनी चाहिए। पर साथ ही उनका प्राप्य श्रेय भी उन्हे देना चाहिए। अंग्रेजी की पुरानी कहावत याद रखो--'हर एक मनुष्य को उसका प्राप्य दो।' अतः मित्रो, जातियो का आपस मे झगड़ना वेकार है। इससे क्या लाभ होगा? इससे हम और भी बँट जाएँगे, और भी कमजोर हो जाएँगे, और भी गिर जाएँगे। एकाधिकार तथा उसके दावे के दिन चले गये, भारतभूमि से वे चिरकाल के लिए अन्तर्हित हो गये और यह भारत मे ब्रिटिश शासन का एक सुफल है। यहाँ तक कि मुसलमानो के शासन से भी हमारा उपकार हुआ था, उन्होंने भी इस एकाधिकार को तोड़ा था। सब कुछ होने पर भी वह शासन सर्वाशतः बुरा नही था। कोई भी वस्तु सर्वाशतः न बुरी होती है और न अच्छी ही। मुसलमानो की भारत-विजय पददलितो और गरीबों का मानो उद्धार करने के लिए हुई थी। यही कारण है कि हमारी एक पंचमाश जनता मुसलमान हो गयी। यह सारा काम तलवार से ही नही हुआ। यह सोचना कि यह सभी तलवार और आग का काम था, बेहद पागलपन होगा। अगर तुम सचेत न होगे तो मद्रास के तुम्हारे एक पचमांश--नही, अर्धांश लोग ईसाई हो जाएँगे। जैसा मैंने मलावार प्रदेश मे देखा, क्या वैसी वाहियात वाते संसार मे पहले भी कभी थी? जिस रास्ते से उच्च वर्ण के लोग चलते हैं, गरीब पैरिया उससे नही चलने पाता। परन्तु ज्योंही उसने कोई बेढब अंग्रेजी नाम या कोई मुसलमानी नाम रख लिया कि बस, सारी वाते सुधर जाती है। यह सब देखकर इसके सिवा

तुम और क्या निष्कर्ष निकाल सकते हो कि सब मलावारी पागल हैं, और उनके घर पागलखाने हैं ? और जब तक वे होश सँभालकर अपनी प्रथाओं का संशोधन न कर ले, तब तक भारत की सभी जातियों को उनकी खिल्ली उड़ानी चाहिए। ऐसी बुरी और नृशंस प्रथाओं को आज भी जारी रखना क्या उनके लिए लज्जा का विषय नही है ? उनके अपने बच्चे तो भूखो मरते हैं, परन्तु ज्योंही उन्होंने किसी दूसरे धर्म का आश्रय लिया कि फिर उन्हे अच्छा भोजन मिल जाता है। अब जातियों मे आपसी लड़ाई बिलकुल नही होनी चाहिए।

उच्च वर्णो को नीचे उतारकर इस समस्या की मीमांसा न होगी, किन्तु नीची जातियों को ऊँची जातियों के बराबर उठाना होगा। और यद्यपि कुछ लोगों को, जिनका अपने शास्त्रों का ज्ञान और अपने पूर्वजो के महान् उद्देश्यों को समझने की शक्ति शून्य से अधिक नहीं, तुम कुछ का कुछ कहते हुए सुनते हो, फिर भी मैंने जो कुछ कहा है, हमारे शास्त्रों मे वर्णित कार्य-प्रणाली वही है। वे इसे नही समझते; समझते वे हैं जिनके मस्तिष्क है तथा जो पूर्वजों के कार्यो का समस्त प्रयोजन समझ लेने की क्षमता रखते है। वे तटस्थ होकर युग-युगान्तरों से गुजरते हुए राष्ट्रीय जीवन की विचित्र गति को लक्ष्य करते हैं। वे नये और पुराने सभी शास्त्रों मे क्रमशः इसकी परम्परा देख पाते हैं।

अच्छा, तो वह योजना—वह प्रणाली—क्या है ? उस आदर्श का एक छोर ब्राह्मण है और दूसरा छोर चाण्डाल, और सम्पूर्ण कार्य चाण्डाल को उठाकर ब्राह्मण बनाना है। शास्त्रों मे धीरे धीरे तुम देख पाते हो कि नीची जातियों को अधिकाधिक

अधिकार दिये जाते है। कुछ ग्रन्थ भी हैं जिनमे तुम्हे ऐसे कठोर वाक्य पढने को मिलते हैं—'अगर शूद्र वेद सुन ले तो उसके कानो मे सीसा गलाकर भर दो, और अगर वह वेद की एक भी पक्ति याद कर ले तो उसकी जीभ काट डालो, यदि वह किसी ब्राह्मण को 'ऐ ब्राह्मण' कह दे तो भी उसकी जीभ काट लो!' यह पुराने जमाने की नृशस बर्बरता है, इसमे जरा भी सन्देह नही, परन्तु स्मृतिकारों को दोष न दो, क्योकि उन्होने समाज के किसी अंश मे प्रचलित प्रथाओ को ही सिर्फ लिपिवद्ध किया है। ऐसे आसुरी प्रकृति के लोग प्राचीन काल मे कभी कभी पैदा हो गये थे। ऐसे असुर लोग कमोवेश सभी युगों मे होते आये है। इसलिए बाद के समय मे तुम देखोगे कि इस स्वर मे थोडी नरमी आ गयी है, जैसे 'शूद्रो को तग न करो, परन्तु उन्हे उच्च शिक्षा भी न दो।' फिर धीरे धीरे हम दूसरी स्मृतियों मे—खासकर उन स्मृतियो मे जिनका आजकल पूरा प्रभाव है—यह लिखा पाते है कि अगर शूद्र ब्राह्मणों के आचार-व्यवहारो का अनुकरण करे तो वे अच्छा करते है, उन्हे प्रोत्साहित करना चाहिए। इस प्रकार यह सब होता जा रहा है। तुम्हारे सामने इन सब कार्य-पद्धतियों का विस्तृत वर्णन करने का मुझे समय नही है और न ही इसका कि इनका विस्तृत विवरण कैसे प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु प्रत्यक्ष घटनाओ का विचार करने से हम देखते है, सभी जातियाँ धीरे धीरे उठेगी। आज जो हजारो जातियाँ है, उनमे से कुछ तो ब्राह्मणो मे शामिल भी हो रही है। कोई जाति अगर अपने को ब्राह्मण कहने लगे तो इस पर कोई क्या कर सकता है? जातिभेद कितना भी कठोर क्यो न हो, वह इसी रूप मे सृष्ट

हुआ है। कल्पना करो कि यहाँ कुछ जातियाँ हैं, जिनमे हर एक की जनसंख्या दस हजार है। अगर ये सब इकट्ठी होकर अपने को ब्राह्मण कहने लगे तो इन्हे कौन रोक सकता है? ऐसा मैंने अपने ही जीवन में देखा है। कुछ जातियाँ जोरदार हो गयीं, और ज्योंही उन सब की एक राय हुई, फिर उनसे 'नहीं' भला कौन कह सकता है?—क्योंकि और कुछ भी हो, हर एक जाति दूसरी जाति से सम्पूर्ण पृथक् है। कोई जाति किसी दूसरी जाति के कार्यों मे, यहाँ तक कि एक ही जाति की भिन्न भिन्न शाखाएँ भी एक दूसरे के कार्यो में हस्तक्षेप नहीं करती। और शंकराचार्य आदि शक्तिशाली युगप्रवर्तक ही बड़े बड़े वर्णनिर्माता थे। उन लोगों ने जिन अद्‌भुत बातों का आविष्कार किया था, वे सब मैं तुमसे नही कह सकता, और सम्भव है कि तुममें से कोई कोई उससे अपना रोष प्रकट करे। किन्तु अपने भ्रमण और अनुभव से मैंने उनके सिद्धान्त ढूंढ निकाले, और इससे मुझे अद्‌भुत परिणाम प्राप्त हुए। कभी कभी उन्होने दल के दल बलूचियों को लेकर क्षणभर में उन्हे क्षत्रिय बना डाला, दल के दल धीवरों को लेकर क्षणभर में ब्राह्मण बना दिया। वे सब ऋषिमुनि थे और हमे उनकी स्मृति के सामने सिर झुकाना होगा। तुम्हें भी ऋषिमुनि बनना होगा। कृतकार्य होने का यही गूढ़ रहस्य है। न्यूनाधिक सभी को ऋषि होना होगा। ऋषि का अर्थ क्या है? ऋषि का अर्थ है पवित्र आत्मा। पहले पवित्र बनो, तभी तुम शक्ति पाओगे। 'मैं ऋषि हूँ' कहने मात्र ही से न होगा, किन्तु जब तुम यथार्थ ऋषित्व का लाभ करोगे तो देखोगे, दूसरे आप ही आप तुम्हारी आज्ञा मानते हैं। तुम्हारे भीतर से कुछ रहस्यमय वस्तु निःसृत होती है, जो दूसरों को तुम्हारा अनुसरण करने को बाध्य

करती है, जिससे वे तुम्हारी आज्ञा का पालन करते हैं। यहाँ तक कि अपनी इच्छा के विरुद्ध अज्ञात भाव से वे तुम्हारी योजनाओ की कार्यसिद्धि मे सहायक होते है। यही ऋपित्व है।

विस्तृत कार्यप्रणाली के बारे में यही कहना है कि पीढियो तक उसका अनुसरण करना होगा। मैने तुमसे जो कुछ कहा है, वह एक सुझाव मात्र है। जिसका उद्देश्य यह दिखाना है कि ये लड़ाई-झगडे बन्द हो जाने चाहिए। मुझे विशेप दुःख इस वात पर होता है कि वर्तमान समय मे भी जातियों के वीच मे इतना मतभेद चलता रहता है। इसका अन्त हो जाना चाहिए। यह दोनो ही पक्षों के लिए व्यर्थ है, खासकर ब्राह्मणों के लिए, क्योकि इस तरह के एकाधिकार और विशेष दावो के दिन अब चले गये। हर एक अभिजात वर्ग का कर्तव्य है कि अपने कुलीन-तन्त्र की कब्र वह आप ही खोदे, और वह जितना शीघ्र इसे कर सके, उतना ही अच्छा है। जितनी ही वह देर करेगा, उतनी ही वह सडेगी और उसकी मृत्यु भी उतनी ही भयंकर होगी। अतः यह ब्राह्मण जाति का कर्तव्य है कि भारत की दूसरी सब जातियों के उद्धार की चेष्टा करे। यदि वह ऐसा करती है तभी वह ब्राह्मण है; और जब तक ऐसा करती है, तभी तक वह ब्राह्मण है; अगर वह धन के चक्कर मे पड़ी रहती है तो वह ब्राह्मण नही है। इधर तुम्हे भी उचित है कि यथार्थ ब्राह्मणो की ही सहायता करो। इससे तुम्हे स्वर्ग मिलेगा। पर यदि तुम अपात्र को दान दोगे तो उसका फल स्वर्ग न होकर उसके विपरीत होगा--हमारे शास्त्रों का यही कथन है। इस विपय मे तुम्हें सावधान हो जाना चाहिए। यथार्थ ब्राह्मण वे ही है, जो सांसारिक कोई कर्म नहीं करते। सांसारिक कर्म दूसरी जातियो के लिए है,

ब्राह्मणों के लिए नही। ब्राह्मणो से मेरा यह निवेदन है कि वे जो कुछ जानते हैं, उसकी शिक्षा देकर और सदियों से उन्होंने जिस ज्ञान एवं संस्कृति का संचय किया है, उसका प्रचार करके भारतीय जनता को उन्नत करने के लिए भरसक प्रयत्न करे। यथार्थ ब्राह्मणत्व क्या है, इसका स्मरण करना भारतीय ब्राह्मणों का स्पष्ट कर्तव्य है। मनु कहते हैं, 'ब्राह्मणो को जो इतना सम्मान और विशेष अधिकार दिये जाते हैं, इसका कारण यह है कि उनके पास धर्म का भाण्डार है।'* उन्हे वह भाण्डार खोलकर उसके रत्न संसार मे बाँट देने चाहिए। यह सच है कि ब्राह्मणों ने ही पहले भारत की सब जातियों मे धर्म का प्रचार किया, और उन्होंने ही सब से पहले, उस समय जब कि दूसरी जातियों में त्याग के भाव का उन्मेष ही नही हुआ था, जीवन के सर्वोच्च सत्य के लिए सब कुछ छोड़ा। यह ब्राह्मणों का दोष नहीं कि वे उन्नति के मार्ग पर अन्य जातियों से आगे बढ़े। दूसरी जातियों ने भी ब्राह्मणों की तरह समझने और करने की चेष्टा क्यों नहीं की ? क्यो उन्होने सुस्त बैठे रहकर ब्राह्मणों को बाजी मार दिया ?

परन्तु दूसरों की अपेक्षा अधिक अग्रसर होना तथा सुविधाएँ प्राप्त करना एक बात है और दुरुपयोग के लिए उन्हें बनाये रखना दूसरी बात। शक्ति जब कभी बुरे उद्देश्य के हेतु लगायी जाती है तो वह आसुरी हो जाती है, उसका उपयोग सदुद्देश्य के लिए ही होना चाहिए। अतः युगों की यह संचित

---

* ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते।
ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोषस्य गुप्तये॥
(मनुस्मृति १।९९)

शिक्षा तथा सस्कार, जिनके ब्राह्मण सरक्षक होते आये हैं, अब साधारण जनता को देना पड़ेगा, और चूँकि उन्होने साधारण जनता को वह सम्पत्ति नही दी, इसीलिए मुसलमानो का आक्रमण सम्भव हो सका था। हम जो हजार वर्ष तक भारत पर धावा बोलनेवाले जिस किसी के पैरोतले कुचले जाते रहे, इसका कारण यही है कि ब्राह्मणो ने शुरू से ही साधारण जनता के लिए वह खजाना खोल नही दिया। हम इसीलिए अवनत हो गये। और हमारा पहला कार्य यही है कि हम अपने पूर्वजों के बटोरे हुए धर्मरूपी अमोल रत्न जिन तहखानों मे छिपे हुए हैं, उन्हें तोड़कर बाहर निकाले और उन्हे सब को दे। यह कार्य सब से पहले ब्राह्मणो को ही करना होगा। बंगाल मे एक पुराना अन्धविश्वास है कि जिस गोखुरे साँप ने काटा हो, वह खुद यदि अपना विष खीच ले तो आदमी जरूर बच जाता है। अतएव ब्राह्मणो को ही अपना विष खीच लेना होगा। ब्राह्मणेतर जातियो से मै कहता हूँ, ठहरो, जल्दी मत करो, ब्राह्मणों से लड़ने का मौका मिलते ही उसका उपयोग न करो, क्योकि मै पहले दिखा चुका हूँ कि तुम अपने ही दोष से कष्ट पा रहे हो। तुम्हे आध्यात्मिकता का उपार्जन करने और संस्कृत सीखने से किसने मना किया था? इतने दिनो तक तुम क्या करते रहे? क्यों तुम इतने दिनो तक उदासीन रहे? और दूसरो ने तुमसे बढ़कर मस्तिष्क, वीर्य, साहस और क्रिया-शक्ति का परिचय दिया, इस पर अब चिढ़ क्यो रहे हो? समाचारपत्रो मे इन सब व्यर्थ वाद-विवादो और झगडो मे शक्तिक्षय न करके, अपने ही घरो मे इस तरह लड़ते-झगड़ते न रहकर—जो कि पाप है—ब्राह्मणो के समान ही संस्कार प्राप्त करने के लिए अपनी सारी शक्ति

लगा दो। बस तभी तुम्हारा उद्देश्य सिद्ध होगा। तुम क्यों संस्कृत के पण्डित नही होते? भारत की सभी जातियों मे संस्कृत शिक्षा का प्रचार करने के लिए तुम क्यों नही करोड़ों रुपये खर्च करते? मेरा प्रश्न तो यही है। जिस समय तुम यह कार्य करोगे, उसी क्षण तुम ब्राह्मणों के बराबर हो जाओगे। भारत में शक्तिलाभ का रहस्य यही है।

संस्कृत मे पाण्डित्य होने से ही भारत मे सम्मान प्राप्त होता है। संस्कृत भाषा का ज्ञान होने से ही कोई भी तुम्हारे विरुद्ध कुछ कहने का साहस न करेगा। यही एकमात्र रहस्य है, अतः इसे जान लो और संस्कृत पढो। अद्वैतवादी की प्राचीन उपमा दी जाए तो कहना होगा कि समस्त जगत् अपनी माया से आप ही सम्मोहित हो रहा है। इच्छाशक्ति ही जगत् मे अमोघ शक्ति है। प्रबल इच्छाशक्ति का अधिकारी मनुष्य एक ऐसी ज्योतिर्मयी प्रभा अपने चारों और फैला देता है कि दूसरे लोग स्वतः उस प्रभा से प्रभावित होकर उसके भाव से भावित हो जाते हैं। ऐसे महापुरुष अवश्य ही प्रकट हुआ करते हैं। और इसके पीछे भावना क्या है? जब वे आविर्भूत होते हैं, तब उनके विचार हम लोगों के मस्तिष्क मे प्रवेश करते हैं और हममे से कितने ही आदमी उनके विचारों तथा भावों को अपना लेते हैं और शक्तिशाली बन जाते हैं। किसी संगठन या संघ मे इतनी शक्ति क्यों होती है? संगठन को केवल भौतिक या जड़ शक्ति मत मानो। इसका क्या कारण है, अथवा वह कौनसी वस्तु है, जिसके द्वारा कुल चार करोड़ अंग्रेज पूरे तीस करोड़ भारतवासियों पर शासन करते हैं? इसका मनोवैज्ञानिक स्पष्टीकरण क्या है? यही, कि वे चार करोड़ मनुष्य अपनी अपनी इच्छा-

शक्ति को समवेत कर देते हैं अर्थात् शक्ति का अनन्त भाण्डार बना लेते हैं और तुम तीस करोड़ मनुष्य अपनी अपनी इच्छाओं को एक दूसरे से पृथक् किये रहते हो। बस यही इसका रहस्य है कि वे कम होकर भी तुम्हारे ऊपर शासन करते हैं। अतः यदि भारत को महान् बनाना है, उसका भविष्य उज्ज्वल बनाना है, तो इसके लिए आवश्यकता है संगठन की, शक्ति-संग्रह की और बिखरी हुई इच्छाशक्ति को एकत्र कर उसमे समन्वय लाने की।

अथर्ववेद सहिता की एक विलक्षण ऋचा याद आती है, जिसमे कहा गया है, 'तुम सब लोग एक-मन हो जाओ, सब लोग एक ही विचार के बन जाओ, क्योकि प्राचीन काल मे एक-मन होने के कारण ही देवताओं ने बलि पायी है।' * देवता मनुष्य द्वारा इसीलिए पूजे गये कि वे एकचित्त थे, एक-मन हो जाना ही समाजगठन का रहस्य है। और यदि तुम 'आर्य' और 'द्रविड़', 'ब्राह्मण' और 'अब्राह्मण' जैसे तुच्छ विषयों को लेकर 'तू तू मैं मैं' करोगे—झगड़े और पारस्परिक विरोधभाव को बढाओगे—तो समझ लो कि तुम उस शक्ति-संग्रह से दूर हटते जाओगे, जिसके द्वारा भारत का भविष्य बनने जा रहा है। इस बात को याद रखो कि भारत का भविष्य सम्पूर्णतः उसी पर निर्भर करता है। बस, इच्छाशक्ति का संचय और उनका समन्वय कर उन्हे एकमुखी करना ही वह सारा रहस्य है। प्रत्येक चीनी अपनी शक्तियों को भिन्न भिन्न मार्गो से परिचालित करता है, तथा मुट्ठी भर जापानी अपनी इच्छा-शक्ति एक ही मार्ग से परिचालित करते हैं, और उसका फल

* सगच्छध्वं सवदध्वं सं वो मनासि जानताम्।
देवा भाग यथा पूर्वे सजानाना उपासते॥ (६।६४।१)

क्या हुआ है, यह तुम लोगों से छिपा नही है। इसी तरह की वात सारे संसार में देखने मे आती है। यदि तुम संसार के इतिहास पर दृष्टि डालो, तो तुम देखोगे कि सर्वत्र छोटे छोटे सुगठित राष्ट्र वड़े वड़े असगठित राष्ट्रो पर शासन कर रहे हैं। ऐसा होना स्वाभाविक है, क्योकि छोटे सगठित राष्ट्र अपने भावों को आसानी के साथ केन्द्रीभूत कर सकते हैं। और इस प्रकार वे अपनी शक्ति को विकसित करने मे समर्थ होते हैं। दूसरी ओर जितना वड़ा राष्ट्र होगा, उतना ही संगठित करना कठिन होगा। वे मानो अनियन्त्रित लोगो की भीड़ मात्र है, वे कभी परस्परसम्बद्ध नही हो सकते। इसलिए ये सव मतभेद के झगड़े एकदम वन्द हो जाने चाहिए।

इसके सिवा हमारे भीतर एक और वड़ा भारी दोष है। महिलाएँ मुझे क्षमा करेगी, पर असल वात यह है कि सदियों से गुलामी करते करते हमारा राष्ट्र औरतो के राष्ट्र के समान वन गया है। चाहे इस देश मे हो या किसी अन्य देश मे, कही भी तुम तीन स्त्रियो को शायद ही कभी एक साथ पाँच मिनट से अधिक देर तक झगड़ा किये बिना देख पाओगे। यूरोपीय देशो में स्त्रियाँ बहुत बडी बड़ी सभा-समितियाँ स्थापित करती है तथा अपनी शक्ति और अधिकारों की बड़ी बड़ी घोषणाएँ करती हैं। फिर वे आपस मे झगडा करने लग जाती हैं। इसी बीच कोई पुरुष आता है और उन पर अपना प्रभुत्व जमा लेता है। सारे संसार मे स्त्रियो पर शासन करने के लिए अब भी पुरुषो की आवश्यकता होती है। हमारी भी ठीक वही हालत है। हम भी स्त्रियों के समान हो गये हैं। यदि कोई स्त्री स्त्रियों का नेतृत्व करने चलती है, तो सब मिलकर फौरन उसकी खरी आलोचना

करना शुरू कर देती है—उसकी खिल्लियाँ उड़ाने लग जाती है, और अन्त मे उसे नेतृत्व से हटाकर, उसे बैठाकर ही दम लेती है। यदि कोई पुरुष आता है और उनके साथ जरा सख्त बर्ताव करता है, बीच बीच मे डाँट-फटकार सुना देता है, तो बस वे ठीक हो जाती है। इस प्रकार के वशीकरण की वे अभ्यस्त हो गयी है। सारा ससार ही इस प्रकार के वशीकरण एवं सम्मोहन करनेवालो से भरा है। ठीक इसी तरह यदि हम लोगों मे से किसी ने आगे बढ़ना चाहा, हमे रास्ता दिखाने की कोशिश की, तो हम फौरन उसकी टाँग पकड़कर पीछे खीचेगे और उसे विठा देगे। परन्तु यदि कोई विदेशी हमारे बीच मे कूद पड़े और हमे पैरो से ठोकर मारे, तो हम बड़ी खुशी से उसके पैर सहलाने लग जाएँगे। हम लोग इसके अभ्यस्त हो गये हैं। क्या ऐसी बात नही है? और कही गुलाम स्वामी बन सकता है! इसलिए यह गुलामी वृत्ति छोड़ दो।

आगामी पचास वर्ष के लिए यह जननी जन्मभूमि भारत-माता ही हमारी आराध्य देवी बन जाए। तब तक के लिए हमारे मस्तिष्क से व्यर्थ के देवी-देवताओ के हट जाने मे कुछ भी हानि नही है। अपना सारा ध्यान इसी एक ईश्वर पर लगाओ, हमारा देश ही हमारा जाग्रत् देवता है। सर्वत्र उसके हाथ है, सर्वत्र उसके पैर है और सर्वत्र उसके कान है। समझ लो कि दूसरे देवी-देवता सो रहे है। जिन व्यर्थ के देवी-देवताओ को हम देख नही पाते, उनके पीछे तो हम बेकार दौड़े और जिस विराट् देवता को हम अपने चारों ओर देख रहे है, उसकी पूजा ही न करे? जब हम इस प्रत्यक्ष देवता की पूजा कर लेगे, तभी हम दूसरे देव-देवियो की पूजा करने योग्य होंगे, अन्यथा नही।

आधा मील भी चलने की हममे शक्ति नही और हम हनुमानजी की तरह एक ही छलाँग मे समुद्र पार करने की इच्छा करें, ऐसा नहीं हो सकता। जिसे देखो वही योगी बनने की धुन मे है, जिसे देखो वही समाधि लगाने जा रहा है! ऐसा नही होने का। दिन भर तो दुनिया के सैकड़ों प्रपंचों मे लिप्त रहोगे, कर्मकाण्ड में व्यस्त रहोगे और शाम को आँख मूँदकर, नाक दबाकर साँस चढ़ाओ-उतारोगे। क्या योग की सिद्धि और समाधि को इतना सहज समझ रखा है कि ऋषि लोग तुम्हारे तीन बार नाक फड़फड़ाने और साँस चढ़ाने से हवा मे उड़ते हुए चले आएँगे? क्या इसे तुमने कोई हँसी-मजाक मान लिया है? ये सब विचार वाहियात हैं। हमे जिसकी आवश्यकता है, वह है चित्तशुद्धि—हृदय का पावित्र्य और उसकी प्राप्ति कैसे होती है? इसके लिए सब से पहले उस विराट् की पूजा करो, जिसे तुम अपने चारों ओर देख रहे हो। 'उसकी' पूजा करो। 'पूजा' ही ठीक शब्द है, किसी अन्य शब्द से काम नहीं चलेगा। ये मनुष्य और पशु, जिन्हें हम आस-पास और आगे-पीछे देख रहे हैं, ये ही हमारे ईश्वर हैं। इनमे सब से पहले पूज्य हैं हमारे अपने देशवासी। परस्पर ईर्ष्या-द्वेष करने और झगड़ने के बजाय हमे उनकी पूजा करनी चाहिए। यह ईर्ष्या-द्वेष और कलह अत्यन्त भयावह कर्म है। इसका फल हम भोग रहे है। फिर भी हमारी आँखे नही खुलती।

अस्तु, यह विषय इतना विस्तृत है कि मेरी समझ मे ही नही आता कि मै कहाँ पर अपना वक्तव्य समाप्त करूँ। इसलिए मद्रास मे मै किस प्रकार काम करना चाहता हूँ, इस विषय मे संक्षेप में अपना मत व्यक्त करके व्याख्यान समाप्त

करता हूँ। सब से पहले हमे अपने देश की आध्यात्मिक और लौकिक शिक्षा का भार ग्रहण करना होगा। क्या तुम इस बात की सार्थकता को समझ रहे हो? तुम्हें इस विषय पर सोचना-विचारना होगा, इस पर तर्क-वितर्क और आपस मे परामर्श करना होगा, दिमाग लगाना होगा और अन्त मे उसे कार्य रूप में परिणत करना होगा। जब तक तुम यह काम पूरा नही करते हो, तब तक तुम्हारे देश का उद्धार होना असम्भव है। जो शिक्षा तुम अभी पा रहे हो, उसमे कुछ अच्छा अंश तो है, पर दोष बहुत अधिक है। इतने कि ये उस भले अंश को दबा देते है। सब से पहली बात तो यह है कि यह शिक्षा मनुष्य बनानेवाली नही कही जा सकती। यह शिक्षा सम्पूर्णतः निषेधात्मक है। निषेधात्मक शिक्षा या निषेध की बुनियाद पर आधारित शिक्षा मृत्यु से भी भयानक होती है। कोमलमति बालक पाठशाला मे भरती होता है और सब से पहली बात, जो वह सीखता है, वह यह कि तुम्हारा बाप मूर्ख है। दूसरी बात जो वह सीखता है, वह यह कि तुम्हारा दादा पागल है। तीसरी बात यह कि तुम्हारे जितने आचार्य है, वे पाखण्डी है। और चौथी बात यह कि तुम्हारे जितने पवित्र धर्मग्रन्थ है, उनमे झूठी और कपोलकल्पित बातें भरी हुई हैं! इस प्रकार की निषेधात्मक बाते सीखते सीखते जब बालक सोलह वर्ष की अवस्था को पहुँचता है, तब वह निषेधो की खान बन जाता है—उसमे न जान रहती है और न रीढ़। अतः इसका जैसा परिणाम होना चाहिए था, वैसा ही हुआ है। पिछले पचास वर्षो से दी जानेवाली इस शिक्षा ने तीनो प्रान्तों मे एक भी स्वतन्त्र विचारों का मनुष्य पैदा नही किया, और जो स्वतन्त्र विचार के लोग हैं, उन्होने यहाँ शिक्षा

नही पायी है, विदेशों मे पायी है, अथवा अपने भ्रममूलक कुसंस्कारों का निवारण करने के लिए पुनः अपने पुराने शिक्षालयों मे जाकर अध्ययन किया है। शिक्षा का मतलब यह नही है कि तुम्हारे दिमाग मे ऐसी बहुतसी बातें इस तरह ठूँस दी जाएँ कि अन्तर्द्वन्द्व होने लगे और तुम्हारा दिमाग उन्हें जीवन भर पचा न सके। जिस शिक्षा से हम अपना जीवन-निर्माण कर सके, मनुष्य बन सकें, चरित्र-गठन कर सके और विचारो का सामंजस्य कर सकें, वही वास्तव मे शिक्षा कहलाने योग्य है। यदि तुम पाँच ही भावों को पचाकर तदनुसार जीवन और चरित्र गठित कर सके हो, तो तुम्हारी शिक्षा उस आदमी की अपेक्षा बहुत अधिक है, जिसने एक पूरे पुस्तकालय को कण्ठस्थ कर रखा है। कहा भी है—"यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य।" अर्थात्—'वह गधा, जिसके ऊपर चन्दन की लकड़ियों का बोझ लाद दिया गया हो, बोझ ही जान सकता है, चन्दन के मूल्य को वह नही समझ सकता।' यदि तरह तरह की जानकारियो का संग्रह करना ही शिक्षा है, तब तो ये पुस्तकालय संसार मे सर्वश्रेष्ठ मुनि है और विश्वकोश ही ऋषि। इसलिए हमारा आदर्श यह होना चाहिए कि अपने देश की समग्र आध्यात्मिक और लौकिक शिक्षा के प्रचार का भार अपने हाथों मे ले लें और जहाँ तक सम्भव हो, राष्ट्रीय रीति से राष्ट्रीय सिद्धान्तों के आधार पर शिक्षा का विस्तार करे।

यह ठीक है कि यह एक बहुत बड़ी योजना है। मै नही कह सकता कि यह कभी कार्य रूप मे परिणत होगी या नही, पर इसका विचार छोड़कर हमे यह काम फौरन शुरू कर देना चाहिए। लेकिन कैसे? किस तरह से काम मे हाथ लगाया

जाए ? उदाहरण के लिए मद्रास का ही काम ले लो। सब से पहले हमे एक मन्दिर की आवश्यकता है, क्योंकि सभी कार्यो मे प्रथम स्थान हिन्दू लोग धर्म को ही देते हैं। तुम कहोगे कि ऐसा होने से हिन्दुओ के विभिन्न मतावलम्बियों मे परस्पर झगड़े होने लगेंगे। पर मै तुमको किसी मतविशेष के अनुसार वह मन्दिर बनाने को नहीं कहता। वह इन साम्प्रदायिक भेद-भावों के परे होगा। उसका एकमात्र प्रतीक होगा ॐ, जो कि हमारे किसी भी धर्म-सम्प्रदाय के लिए महानतम प्रतीक है। यदि हिन्दुओ मे कोई ऐसा सम्प्रदाय हो, जो इस ओंकार को न माने, तो समझ लो कि वह हिन्दू कहलाने योग्य नही है। वहाँ सब लोग अपने अपने सम्प्रदाय के अनुसार ही हिन्दुत्व की व्याख्या कर सकेंगे, पर मन्दिर हम सब के लिए एक ही होना चाहिए। अपने सम्प्रदाय के अनुसार जो देवी-देवताओं की प्रतिमा-पूजा करना चाहें, अन्यत्र जाकर करे, पर इस मन्दिर मे वे औरों से झगडा न करे। इस मन्दिर मे वे ही धार्मिक तत्त्व समझाये जाएँगे, जो सब सम्प्रदायों मे समान हैं। साथ ही हर एक सम्प्रदायवाले को अपने मत की शिक्षा देने का यहाँ पर अधिकार रहेगा, पर एक प्रतिबन्ध रहेगा कि वे अन्य सम्प्रदायो से झगड़ा नही करने पाएँगे। तुम्हे जो कहना है कहो, संसार तुम्हारी राय जानना चाहता है, पर उसे यह सुनने का समय नही है कि तुम औरों के विषय मे क्या विचार प्रकट कर रहे हो। उन्हें तुम अपने ही पास रखे रहो।

इस मन्दिर के सम्बन्ध मे एक दूसरी बात यह है कि इसके साथ ही एक और संस्था हो, जिससे धार्मिक शिक्षक और प्रचारक तैयार किये जाएँ और वे सभी घूम-फिरकर धर्मप्रचार

करने को भेजे जाएँ। परन्तु ये केवल धर्म का ही प्रचार न करें, वरन् उसके साथ साथ लौकिक शिक्षा का भी प्रचार करे। जैसे हम धर्म का प्रचार द्वार द्वार जाकर करते हैं, वैसे ही हमें लौकिक शिक्षा का भी प्रचार करना पड़ेगा। यह काम आसानी से हो सकता है। शिक्षकों तथा धर्म-प्रचारकों के द्वारा हमारे कार्य का विस्तार होता जाएगा, और क्रमशः अन्य स्थानों मे ऐसे ही मन्दिर प्रतिष्ठित होंगे और इस प्रकार समस्त भारत मे यह कार्य फैल जाएगा। यही मेरी योजना है। तुमको यह बड़ी भारी मालूम होगी, पर इसकी इस समय बहुत आवश्यकता है। तुम पूछ सकते हो, इस काम के लिए धन कहाँ से आएगा? धन की जरूरत नही। धन कुछ नही है। पिछले बारह वर्षो से मै ऐसा जीवन व्यतीत कर रहा हूँ कि मै यह नहीं जानता कि आज यहाँ खा रहा हूँ तो कल कहाँ खाऊँगा। और न मैने कभी इसकी परवाह ही की। धन या किसी भी वस्तु की जब मुझे इच्छा होगी, तभी वह प्राप्त हो जाएगी, क्योंकि वे सब मेरे गुलाम है, न कि मै उनका गुलाम हूँ। जो मेरा गुलाम है, उसे मेरी इच्छा होते ही मेरे पास आना पड़ेगा। अतः उसकी कोई चिन्ता न करो। अब प्रश्न यह है कि काम करनेवाले लोग कहाँ है? मद्रास के नवयुवको, तुम्हारे ऊपर ही मेरी आशा है। क्या तुम अपनी जाति और राष्ट्र की पुकार सुनोगे? यदि तुम्हे मुझ पर विश्वास है तो मै कहूँगा कि तुममे से प्रत्येक का भविष्य उज्ज्वल है। अपने आप पर अगाध, अटूट विश्वास रखो, वैसा ही विश्वास, जैसा मै बाल्यकाल मे अपने ऊपर रखता था और जिसे मै अब कार्यान्वित कर रहा हूँ। तुम सभी अपने आप पर विश्वास रखो। यह विश्वास रखो कि प्रत्येक की आत्मा में

अनन्त शक्ति विद्यमान है। तभी तुम सारे भारतवर्ष को पुनरुज्जीवित कर सकोगे। फिर तो हम दुनिया के सभी देशों में खुले आम जाएँगे और आगामी दस वर्षो मे हमारे भाव उन सब विभिन्न शक्तियों के एक अंशस्वरूप हो जाएँगे, जिनके द्वारा संसार का प्रत्येक राष्ट्र संगठित हो रहा है। हमे भारत में बसनेवाली और भारत के बाहर बसनेवाली सभी जातियों के अन्दर प्रवेश करना होगा। इसके लिए हमे कर्म करना होगा। और इस काम के लिए मुझे युवक चाहिए। वेदो मे कहा है, 'युवक, बलशाली, स्वस्थ, तीव्र मेधावाले और उत्साहयुक्त मनुष्य ही ईश्वर के पास पहुँच सकते है।'* तुम्हारे भविष्य को निश्चित करने का यही समय है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि अभी इस भरी जवानी मे, इस नये जोश के जमाने मे ही काम करो, जीर्ण-शीर्ण हो जाने पर काम नही होगा। काम करो, क्योकि काम करने का यही समय है। सब से अधिक ताजे, बिना स्पर्श किये हुए और बिना सूँघे फूल ही भगवान् के चरणो पर चढाये जाते हैं और वे उसे ही ग्रहण करते हैं। अपने पैरों आप खडे हो जाओ, देर न करो, क्योकि जीवन क्षणस्थायी है। वकील बनकर मुकदमे लड़ने की अभिलाषा रखने से कही अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य करने है। अपनी जाति, देश, राष्ट्र और समग्र मानवसमाज के कल्याण के लिए आत्मोत्सर्ग करना इससे बहुत ऊँचा है। इस जीवन मे क्या है? तुम हिन्दू हो और इसलिए तुम्हारा यह सहज विश्वास है कि तुम अनन्त काल तक रहनेवाले हो। कभी कभी मेरे पास नास्तिकता के विषय पर वार्तालाप करने के लिए कुछ युवक आया करते है। पर मेरा

* 'आशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठो मेधावी।' (तैत्तिरीय उपनिषद् २।८।१)

विश्वास है कि कोई हिन्दू नास्तिक नहीं हो सकता। सम्भव है कि किसी ने पाश्चात्य ग्रन्थ पढ़े हों और अपने को जड़वादी समझने लग गया हो। पर ऐसा केवल कुछ समय के लिए होता है। यह बात तुम्हारे खून के भीतर नहीं है। जो बात तुम्हारी रग रग मे रमी हुई है, उसे तुम निकाल नहीं सकते और न उसकी जगह और किसी धारणा पर तुम्हारा विश्वास ही हो सकता है। इसीलिए वैसी चेष्टा करना व्यर्थ होगा। मैंने भी बाल्यावस्था में ऐसी चेष्टा की थी, पर वैसा नहीं हो सकता। जीवन की अवधि अल्प है, पर आत्मा अमर और अनन्त है, और मृत्यु अनिवार्य है। इसलिए आओ, हम अपने आगे एक महान् आदर्श खड़ा करें और उसके लिए अपने जीवन का उत्सर्ग कर दें। यही हमारा निश्चय हो और वे भगवान्, जो हमारे शास्त्रों के अनुसार साधुओं के परित्राण के लिए संसार मे बार बार आविर्भूत होते हैं, वे भगवान् श्रीकृष्ण हमे आशीर्वाद दे एवं हमारे उद्देश्य की सिद्धि में सहायक हों।

हिन्दू धर्म के सामान्य आधार

यह वही भूमि है, जो पवित्र आर्यावर्त मे पवित्रतम मानी जाती है। यह वही ब्रह्मावर्त है, जिसका उल्लेख हमारे महर्षि मनु ने किया है। यह वही भूमि है, जहाँ से आत्मतत्त्व की उच्चाकांक्षा का वह प्रबल स्रोत प्रवाहित हुआ है, जो आनेवाले युगों मे, जैसा कि इतिहास से प्रकट है, संसार को अपनी बाढ़ से आप्लावित करनेवाला है। यह वही भूमि है, जहाँ से उसकी वेगवती नद-नदियों के समान आध्यात्मिक महत्त्वाकाक्षाएँ उत्पन्न हुई और धीरे धीरे एक धारा मे सम्मिलित होकर शक्तिसम्पन्न हुई और अन्त मे संसार की चारों दिशाओं मे फैल गयीं तथा वज्र-गम्भीर ध्वनि से उन्होने अपनी महान् शक्ति की घोषणा समस्त जगत् मे कर दी। यह वही वीरभूमि है, जिसे भारत पर चढाई करनेवाले शत्रुओं के सभी आक्रमणों तथा अतिक्रमणों का आघात सब से पहले सहना पड़ा था। आर्यावर्त मे घुसनेवाली वाहरी बर्बर जातियों के प्रत्येक हमले का सामना इसी वीरभूमि को अपनी छाती खोलकर करना पड़ा था। यह वही भूमि है, जिसने इतनी आपत्तियाँ झेलने के वाद भी अब तक अपने गौरव और शक्ति को एकदम नहीं खोया। यही भूमि है, जहाँ वाद मे दयालु नानक ने अपने अद्‌भुत विश्वप्रेम का उपदेश दिया; जहाँ उन्होने अपना विशाल हृदय खोलकर सारे संसार को—केवल हिन्दुओ को नहीं, वरन् मुसलमानों को भी—गले लगाने के लिए अपने हाथ फैलाये। यही पर हमारी जाति के सब से वाद के तथा महान् तेजस्वी वीरों मे से एक, गुरु गोविन्दसिंह ने धर्म की

लाहौर मे दिया हुआ भाषण

रक्षा लिए अपना एवं अपने प्राणप्रिय कुटुम्बियों का रक्त बहा दिया; और जिनके लिए यह खून की नदी बहायी गयी, उन लोगों ने भी जब उनका साथ छोड़ दिया, तब वे मर्माहत सिंह की भाँति चुपचाप दक्षिण देश में निर्जनवास के लिए चले गये और अपने देश-भाइयों के प्रति अधरों पर एक भी कटु वचन न लाते हुए, तनिक भी असन्तोष प्रकट न करते हुए, शान्त भाव से इहलोक से प्रयाण कर गये।

हे पंचनद-देशवासी भाइयो! यहाँ अपनी इस प्राचीन पवित्र भूमि मे, तुम लोगों के सामने मैं आचार्य के रूप मे नहीं खड़ा हुआ हूँ; कारण, तुम्हे शिक्षा देने योग्य ज्ञान मेरे पास बहुत ही थोड़ा है। मै तो पूर्वी प्रान्त से अपने पश्चिमी प्रान्त के भाइयों के पास इसीलिए आया हूँ कि उनके साथ हृदय खोलकर वार्तालाप करूँ, उन्हें अपने अनुभव बताऊँ और उनके अनुभव से स्वयं लाभ उठाऊँ। मै यहाँ यह देखने नहीं आया कि हमारे बीच क्या क्या मतभेद हैं, वरन् मै तो यह खोजने आया हूँ कि हम लोगों की मिलनभूमि कौनसी है। यहाँ मैं यह जानने का प्रयत्न कर रहा हूँ कि वह कौनसा आधार है, जिस पर हम लोग आपस मे सदा भाई बने रह सकते हैं; किस नीव पर प्रतिष्ठित होने से वह वाणी, जो अनन्त काल से सुनाई दे रही है, उत्तरोत्तर अधिक प्रबल होती रहेगी। मै यहाँ तुम्हारे सामने कुछ रचनात्मक कार्यक्रम रखने आया हूँ, ध्वंसात्मक नहीं। कारण, आलोचना के दिन अब चले गये और आज हम रचनात्मक कार्य करने के लिए उत्सुक हैं। यह सत्य है कि संसार को समय समय पर आलोचना की जरूरत हुआ करती है, यहाँ तक कि कठोर आलोचना की भी; पर वह केवल अल्प काल के लिए ही होती

है। हमेशा के लिए तो उन्नतिकारी और रचनात्मक कार्य ही वाछित होते हैं, आलोचनात्मक या ध्वंसात्मक नही। लगभग पिछले सौ वर्ष से हमारे इस देश मे सर्वत्र आलोचना की वाढ़ सी आ गयी है, उधर सभी अन्धकारमय प्रदेशों पर पाश्चात्य विज्ञान का तीव्र प्रकाश डाला गया है, जिससे लोगों की दृष्टि अन्य स्थानों की अपेक्षा कोनों और गली-कूचो की ओर ही अधिक खिच गयी है। स्वभावतः इस देश मे सर्वत्र महान् और तेजस्वी मेधासम्पन्न पुरुषों का जन्म हुआ, जिनके हृदय मे सत्य और न्याय के प्रति प्रबल अनुराग था, जिनके अन्तःकरण मे अपने देश के लिए और सब से बढ़कर ईश्वर तथा अपने धर्म के लिए अगाध प्रेम था। क्योकि ये महापुरुष अत्यधिक संवेदनशील थे, उनमे देश के प्रति इतना गहरा प्रेम था, इसलिए उन्होंने प्रत्येक वस्तु की, जिसे बुरा समझा, तीव्र आलोचना की। अतीत-कालीन इन महापुरुषों की जय हो! उन्होने देश का बहुत ही कल्याण किया है। पर आज हमे एक महावाणी सुनाई दे रही है, 'बस करो, बस करो!' निन्दा पर्याप्त हो चुकी, दोषदर्शन बहुत हो चुका! अब तो पुनर्निर्माण का, फिर से संगठन करने का समय आ गया है। अब अपनी समस्त बिखरी हुई शक्तियों को एकत्र करने का, उन सब को एक ही केन्द्र मे लाने का और उस सम्मिलित शक्ति द्वारा देश को प्रायः सदियों से रुकी हुई उन्नति के मार्ग मे अग्रसर करने का समय आ गया है। घर की सफाई हो चुकी है। अब आवश्यकता है उसे नये सिरे से आबाद करने की। रास्ता साफ कर दिया गया है। आर्यसन्तानो, अब आगे बढ़ो!

सज्जनो! इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर मै आपके सामने

आया हूँ और आरम्भ मे ही यह प्रकट कर देना चाहता हूँ कि मैं किसी दल या विशिष्ट सम्प्रदाय का नही हूँ। सभी दल और सभी सम्प्रदाय मेरे लिए महान् और महिमामय हैं। मै उन सब से प्रेम करता हूँ, और अपने जीवन भर मे यही ढूंढ़ने का प्रयत्न करता रहा कि उनमे कौन कौनसी बातें अच्छी और सच्ची हैं। इसीलिए आज मैने संकल्प किया है कि तुम लोगों के सामने उन बातो को पेश करूँ, जिनमे हम एकमत है, जिससे कि हमें एकता की सम्मिलन-भूमि प्राप्त हो जाए; और यदि ईश्वर के अनुग्रह से यह सम्भव हो तो आओ, हम उसे ग्रहण करें और उसे सिद्धान्त की सीमाओं से बाहर निकालकर कार्यरूप मे परिणत करें। हम लोग हिन्दू है। मैं 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग किसी बुरे अर्थ में नहीं कर रहा हूँ, और मै उन लोगों से कदापि सहमत नहीं, जो उससे कोई बुरा अर्थ समझते हों। प्राचीन काल में उस शब्द का अर्थ था—सिन्धुनद के दूसरी ओर बसनेवाले लोग। हमसे घृणा करनेवाले बहुतेरे लोग आज उस शब्द का अर्थ भले ही लगाते हों, पर केवल नाम में क्या धरा ? यह तो हम पर ही पूर्णतया निर्भर है कि 'हिन्दू' नाम ऐसी प्रत्येक वस्तु का द्योतक रहे, जो महिमामय हो, आध्यात्मिक हो; अथवा वह ऐसी वस्तु का द्योतक रहे जो कलंक का समानार्थी हो, जो एक पददलित, निकम्मी और धर्मभ्रष्ट जाति का सूचक हो। यदि आज 'हिन्दू' शब्द का कोई बुरा अर्थ है तो उसकी परवाह मत करो। आओ, अपने कार्यो और आचरणों द्वारा यह दिखाने को तैयार हो जाओ कि समग्र संसार की कोई भी भाषा इससे ऊँचा, इससे महान् शब्द का आविष्कार नही कर सकी है। मेरे जीवन के सिद्धान्तों में से एक यह भी सिद्धान्त रहा है

कि मै अपने पूर्वजों की सन्तान कहलाने मे लज्जित नही होता। मुझ जैसा गर्वीला मानव इस ससार मे शायद ही हो, पर मै यह स्पष्ट रूप से बता देना चाहता हूँ कि यह गर्व मुझे अपने स्वयं के गुण या शक्ति के कारण नही, वरन् अपने पूर्वजों के गौरव के कारण है। जितना ही मैने अतीत का अध्ययन किया है, जितनी ही मैने भूतकाल की ओर दृष्टि डाली है, उतना ही यह गर्व मुझमे अधिक आता गया है। उससे मुझे श्रद्धा की उतनी ही दृढ़ता और साहस प्राप्त हुआ है, जिसने मुझे धरती की धूलि से ऊपर उठाया है और मै अपने उन महान् पूर्वजों के निश्चित किये हुए कार्यक्रम के अनुसार कार्य करने को प्रेरित हुआ हूँ। ऐ उन्ही प्राचीन आर्यो की सन्तानो ! ईश्वर करे, तुम लोगो के हृदय मे भी वही गर्व आविर्भूत हो जाए, अपने पूर्वजो के प्रति वही विश्वास तुम लोगो के रक्त मे भी दौड़ने लगे, वह तुम्हारे जीवन से मिलकर एक हो जाए और ससार के उद्धार के लिए कार्यशील हो !

भाइयो ! यह पता लगाने के पहले कि हम ठीक किस बात मे एकमत हैं तथा हमारे जातीय जीवन का सामान्य आधार क्या है, हमे एक बात स्मरण रखनी होगी। जैसे प्रत्येक मनुष्य का एक व्यक्तित्व होता है, ठीक उसी तरह प्रत्येक जाति का भी अपना एक व्यक्तित्व होता है। जिस प्रकार एक व्यक्ति कुछ विशिष्ट बातो मे, अपने विशिष्ट लक्षणों मे अन्य व्यक्तियो से पृथक् होता है, उसी प्रकार एक जाति भी कुछ विशिष्ट लक्षणो मे दूसरी जाति से भिन्न हुआ करती है। और जिस प्रकार प्रकृति की व्यवस्था मे किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति करना हर एक मनुष्य का जीवनोद्देश्य होता है, जिस प्रकार

अपने पूर्व कर्म द्वारा निर्धारित विशिष्ट मार्ग से उस मनुष्य को चलना पड़ता है, ठीक ऐसा ही जातियों के विषय मे भी है। प्रत्येक जाति को किसी न किसी दैवनिर्दिष्ट उद्देश्य को पूरा करना पड़ता है, प्रत्येक जाति को संसार मे एक सन्देश देना पड़ता है तथा प्रत्येक जाति को एक व्रतविशेष का उद्यापन करना होता है। अत: आरम्भ से ही हमे यह समझ लेना चाहिए कि हमारी जाति का वह व्रत क्या है, विधाता ने उसे भविष्य के किस निर्दिष्ट उद्देश्य के लिए नियुक्त किया है, विभिन्न राष्ट्रों की पृथक् पृथक् उन्नति और अधिकार में हमे कौनसा स्थान ग्रहण करना है, विभिन्न जातीय स्वरों की समरसता मे हमे कौनसा स्वर अलापना है। हम अपने देश में बचपन मे यह किस्सा सुना करते हैं कि कुछ सर्पों के फन मे मणि होती है और जब तक मणि वहाँ है, तब तक तुम सर्प को मारने का कोई भी उपाय करो, वह नहीं मर सकता। हम लोगों ने किस्से-कहानियों में दैत्यों और दानवों की बातें पढ़ी है। उनके प्राण 'हीरामन तोते' के कलेजे मे बन्द रहते हैं और जब तक उस 'हीरामन तोते' की ।न मे जान रहेगी, तब तक उस दानव का बाल भी बाँका न ।गा, चाहे तुम उसके टुकड़े टुकड़े ही क्यों न कर डालो। यह बात राष्ट्रों के सम्बन्ध मे भी सत्य है। राष्ट्रविशेष का जीवन भी ठीक उसी प्रकार मानो किसी बिन्दु में केन्द्रित रहता है, वहीं उस राष्ट्र की राष्ट्रीयता रहती है और जब तक उस मर्म-स्थान पर चोट नहीं पड़ती, तब तक वह राष्ट्र मर नही सकता। इस तथ्य के प्रकाश मे, हम संसार के इतिहास की एक अद्वितीय एवं सब से अपूर्व घटना को समझ सकते हैं। हमारी इस श्रद्धा-स्पद मातृभूमि पर बारम्बार बर्बर जातियों के आक्रमणों के दौर

आते रहे हैं। 'अल्लाहो अकबर' के गगनभेदी नारों से भारत-गगन सदियों तक गूँजता रहा है और मृत्यु की अनिश्चित छाया प्रत्येक हिन्दू के सिर पर मँडराती रही है। ऐसा कोई हिन्दू न रहा होगा, जिसे पल पल पर मृत्यु की आशंका न होती रही हो। संसार के इतिहास मे इस देश से अधिक दुःख पानेवाला तथा अधिक पराधीनता भोगनेवाला और कौन देश है? परन्तु फिर भी हम जैसे पहले थे, आज भी लगभग वैसे ही बने हुए हैं, आज भी हम आवश्यकता पड़ने पर बारम्बार विपत्तियों का सामना करने को तैयार हैं; और इतना ही नही, हाल मे ऐसे भी लक्षण दिखाई दे रहे हैं कि हम केवल शक्तिमान् ही नही, वरन् बाहर जाकर दूसरों को अपने विचार देने के लिए भी उद्यत हैं; कारण, विस्तार ही जीवन का लक्षण है।

हम आज देखते हैं कि हमारे भाव और विचार भारत की सरहदों के पिंजड़े मे ही बन्द नहीं हैं; बल्कि वे तो, हम चाहें, या न चाहे, भारत के बाहर बढ़ रहे हैं, अन्य देशों के साहित्य मे प्रविष्ट हो रहे हैं, उन देशों मे अपना स्थान प्राप्त कर रहे है और इतना ही नही, कही कही तो वे आदेशदाता गुरु के आसन तक पहुँच गये हैं। इसका कारण यही है कि संसार की सम्पूर्ण उन्नति मे भारत का दान सब से श्रेष्ठ रहा है; क्योंकि उसने संसार को ऐसे दर्शन और धर्म का दान दिया है, जो मानव-मन को संलग्न रखनेवाला सब से अधिक महान्, सब से अधिक उदात्त और सब से श्रेष्ठ विषय है। हमारे पूर्वजों ने बहुतेरे अन्य प्रयोग किये। हम सब यह जानते हैं कि अन्य जातियों के समान, वे भी पहले बहिर्जगत् के रहस्य के अन्वेषण मे लगे थे; और अपनी विशाल प्रतिभा से वह महान् जाति, प्रयत्न करने

पर, उस दिशा मे ऐसे ऐसे अद्भुत आविष्कार कर दिखाती, जिन पर समस्त संसार को सदैव अभिमान रहता। पर उन्होने इस पथ को किसी उच्चतर ध्येय की प्राप्ति के लिए छोड़ दिया। वेद के पृष्ठों से उसी महान् ध्येय की प्रतिध्वनि सुनाई देती है--"अथ परा, यया तदक्षरमधिगम्यते"*--'वही परा विद्या है, जिससे हमे उस अविनाशी पुरुष की प्राप्ति होती है।' इस परिवर्तनशील, नश्वर प्रकृति-सम्बन्धी विद्या--मृत्यु, दुःख और शोक से भरे इस जगत् से सम्बन्धित विद्या बहुत बड़ी भले ही हो; एवं सचमुच ही वह बडी है; परन्तु जो अपरिणामी और आनन्दमय है, जो चिर शान्ति का निधान है, जो शाश्वत जीवन और पूर्णत्व का एकमात्र आश्रय-स्थान है, जिसके सिवा और कही सारे दु.खों का अवसान नहीं होता, उस ईश्वर से सम्बन्ध रखनेवाली विद्या ही हमारे पूर्वजों की राय में सब से श्रेष्ठ और उदात्त है। हमारे पूर्वज यदि चाहते, तो ऐसे विज्ञानो का अन्वेषण सहज ही कर सकते थे, जो हमें केवल अन्न, वस्त्र और अपने साथियों पर आधिपत्य दे सकते हैं, जो हमे केवल दूसरों पर विजय प्राप्त करना और उन पर प्रभुत्व करना सिखाते हैं, जो बली को निर्बल पर हुकूमत करने की शिक्षा देते हैं। पर उस परमेश्वर की अपार दया से हमारे पूर्वजों ने उस ओर बिलकुल ध्यान न देकर एकदम दूसरी दिशा पकड़ी, जो पूर्वोक्त मार्ग से अनन्त गुनी श्रेष्ठ और महान् थी, जिसमे पूर्वोक्त पथ की अपेक्षा अनन्त गुना आनन्द था। इस मार्ग को अपनाकर वे ऐसी अनन्य निष्ठा के साथ उस पर अग्रसर हुए कि आज वह हमारा जातीय विशेषत्व बन गया, सहस्रों वर्ष से पिता-पुत्र की उत्तराधिकार-

* मुण्डकोपनिषद् १।५

परम्परा से आता हुआ आज वह हमारे जीवन से घुम-मिल गया है, हमारी रगो मे बहनेवाले रक्त की बूँद बूँद से मिलकर एक हो गया है, वह मानो हमारा दूसरा स्वभाव ही बन गया है, यहाँ तक कि आज 'धर्म' और 'हिन्दू' ये दो शब्द समानार्थी हो गये हैं। यही हमारी जाति का वैशिष्ट्य है और इस पर कोई आघात नही कर सकता। बर्बर जातियो ने यहाँ आकर तलवारो और तोपो के बल पर अपने बर्बर धर्मो का प्रचार किया, पर उनमे से एक भी हमारे मर्मस्थल का स्पर्श न कर सका, सर्प की उस 'मणि' को न छू सका, जातीय जीवन के प्राणस्वरूप उस 'हीरामन तोते' को न मार सका। अत. यही हमारी जाति की जीवन-शक्ति है, और जब तक यह अव्याहत है, तब तक संसार मे ऐसी कोई ताकत नही, जो इस जाति का विनाश कर सके। यदि हम अपनी इस सर्वश्रेष्ठ विरासत आध्यात्मिकता को न छोड़े तो ससार के सारे अत्याचार-उत्पीडन और दु.ख हमे विना चोट पहुँचाये ही निकल जाएँगे और हम लोग दु:ख-कष्टाग्नि की उन ज्वालाओ मे से प्रह्लाद के समान बिना जले बाहर निकल आएँगे। यदि कोई हिन्दू धार्मिक नही है तो मै उसे हिन्दू ही नहीं कहूँगा। दूसरे देशों मे, भले ही मनुष्य पहले राजनीतिक हो और फिर धर्म से थोडासा लगाव रखे, पर यहाँ भारत मे तो हमारे जीवन का सब से बडा और प्रथम कर्तव्य धर्म का अनुष्ठान है और फिर उसके बाद, यदि अवकाश मिले, तो दूसरे विषय भले ही आ जाएँ। इस तथ्य को ध्यान मे रखने से, हम यह बात अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे कि अपने राष्ट्रीय हित के लिए हमे आज क्यो सब से पहले अपनी जाति की समस्त आध्यात्मिक शक्तियों को ढूँढ़ निकालना होगा, जैसा कि अतीत

काल मे किया गया था और चिर काल तक किया जाएगा। अपनी बिखरी हुई आध्यात्मिक शक्तियों को एकत्र करना ही भारत मे राष्ट्रीय एकता स्थापित करने का एकमात्र उपाय है। जिनकी हृत्तन्त्री एक ही आध्यात्मिक स्वर मे बँधी है, उन सब के सम्मिलन से ही भारत मे राष्ट्र का संगठन होगा।

इस देश मे पर्याप्त पन्थ या सम्प्रदाय हुए हैं। आज भी ये पन्थ पर्याप्त संख्या मे हैं और भविष्य मे भी पर्याप्त संख्या मे रहेगे; क्योकि हमारे धर्म की यह विशेषता रही है कि उसम व्यापक तत्त्वों की दृष्टि से इतनी उदारता है कि यद्यपि बाद मे उनमे से अनेक सम्प्रदाय फैले है और उनकी बहुविध शाखा-प्रशाखाएँ फूटी है तो भी उनके तत्त्व हमारे सिर पर फैले हुए इस अनन्त आकाश के समान विशाल हैं, स्वयं प्रकृति की भाँति नित्य और सनातन है। अतः सम्प्रदायो का होना तो स्वाभाविक ही है, परन्तु जिसका होना आवश्यक नही है, वह है इन सम्प्रदायों के बीच के झगड़े-झमेले। सम्प्रदाय अवश्य रहे, पर साम्प्रदायिकता दूर हो जाए। साम्प्रदायिकता से संसार की कोई उन्नति नही होगी; पर सम्प्रदायों के न रहने से ससार का काम नही चल सकता। एक ही साम्प्रदायिक विचार के लोग सब काम नही कर सकते। संसार की यह अनन्त शक्ति कुछ थोड़ेसे लोगों से परि-चालित नही हो सकती। यह बात समझ लेने पर हमारी समझ मे यह भी आ जाएगा कि हमारे भीतर किसलिए यह सम्प्रदाय-भेदरूपी श्रमविभाग अनिवार्य रूप से आ गया है। भिन्न भिन्न आध्यात्मिक शक्ति-समूहों का परिचालन करने के लिए सम्प्रदाय कायम रहें। परन्तु जब हम देखते है कि हमारे प्राचीनतम शास्त्र इस बात की घोषणा कर रहे हैं कि यह सब भेद-भाव केवल

ऊपर का है, देखने भर का है, और इन सारी विभिन्नताओं के वावजूद इनको एक साथ बाँधे रहनेवाला परम मनोहर स्वर्णसूत्र इनके भीतर पिरोया हुआ है, तब इसके लिए हमे एक दूसरे के साथ लडने-झगडने की कोई आवश्यकता नही दिखाई देती। हमारे प्राचीनतम शास्त्रो ने घोपणा की है--"एकं सद्विप्रा वहुधा वदन्ति"—'विश्व मे एक ही सद्वस्तु विद्यमान है, ऋषियो ने उसी एक का भिन्न भिन्न नामो से वर्णन किया है।' अतः ऐसे भारत मे, जहाँ सदा से सभी सम्प्रदाय समान रूप से सम्मानित होते आये हैं, यदि अब भी सम्प्रदायों के बीच ईर्ष्या-द्वेष और लड़ाई-झगड़े वने रहे तो धिक्कार है हमे, जो हम अपने को उन महिमान्वित पूर्वजों के वंशधर बताने का दु:साहस करे।

मेरा विश्वास है कि कुछ ऐसे महान् तत्त्व है, जिन पर हम सब सहमत हैं, जिन्हे हम सभी मानते हैं—चाहे हम वैष्णव हों या शैव, शाक्त हो या गाणपत्य, चाहे प्राचीन वेदान्ती सिद्धान्तों को मानते हो या अर्वाचीनों के ही अनुयायी हो, पुरानी लकीर के फकीर हो अथवा नवीन सुधारवादी हों--और जो भी अपने को हिन्दू कहता है, वह इन तत्त्वो मे विश्वास रखता है। सम्भव है कि इन तत्त्वों की व्याख्याओ मे भेद हो--और वैसा होना भी चाहिए, क्योकि हमारा यह मानदण्ड रहा है कि हम सब को जवरदस्ती अपने साँचे मे न ढाले। हम जिस तरह की व्याख्या करे, सब को वही व्याख्या माननी पड़ेगी अथवा हमारी ही प्रणाली का अनुसरण करना होगा—जबरदस्ती ऐसी चेष्टा करना पाप है। आज यहाँ पर जो लोग एकत्र हुए है, शायद वे सभी एक स्वर से यह स्वीकार करेगे कि हम लोग वेदों को अपने धर्म-रहस्यो का सनातन उपदेश मानते है। हम सभी यह विश्वास

करते हैं कि वेदरूपी यह पवित्र शब्दराशि अनादि और अनन्त है। जिस प्रकार प्रकृति का न आदि है न अन्त, उसी प्रकार इसका भी आदि-अन्त नही है। और जब कभी हम इस पवित्र ग्रन्थ के प्रकाश मे आते है, तब हमारे धर्म-सम्बन्धी सारे भेद-भाव और झगड़े मिट जाते है। इसमे हम सभी सहमत है कि हमारे धर्म-विषयक जितने भी भेद है, उनकी अन्तिम मीमांसा करनेवाला यही वेद है। वेद क्या है, इस पर हम लोगों मे मतभेद हो सकता है। कोई सम्प्रदाय वेद के किसी एक अंश को दूसरे अंश से अधिक पवित्र समझ सकता है। पर इससे तब तक कुछ बनता-विगडता नही, जब तक हम यह विश्वास करते हैं कि वेदो के प्रति श्रद्धालु होने के कारण हम सभी आपस मे भाई-भाई हैं तथा उन सनातन, पवित्र और अपूर्व ग्रन्थों से ही ऐसी प्रत्येक पवित्र, महान् और उत्तम वस्तु का उद्भव हुआ है, जिसके हम आज अधिकारी हैं। अच्छा, यदि हमारा ऐसा ही विश्वास है तो फिर सब से पहले इसी तत्त्व का भारत मे सर्वत्र प्रचार किया जाए। यदि यही सत्य है तो फिर वेद सर्वदा ही जिस प्राधान्य के अधिकारी हैं तथा जिसमे हम सभी विश्वास करते है, वह प्रधानता वेदों को दी जाए। अतः हम सब की प्रथम मिलन-भमि है 'वेद'।

दूसरी बात यह है कि हम सब ईश्वर मे विश्वास करते है, जो संसार की सृष्टि-स्थिति-लय-कारिणी शक्ति है, जिसमे यह सारा चराचर कल्पान्त मे लय होकर दूसरे कल्प के आरम्भ मे पुनः अद्भुत जगत्-प्रपच रूप से बाहर निकल आता एवं अभिव्यक्त होता है। हमारी ईश्वर-विषयक कल्पना भिन्न भिन्न प्रकार की हो सकती है—कुछ लोग ईश्वर को सम्पूर्ण सगुण रूप

मे, कुछ उन्हे सगुण पर मानवभावापन्न रूप मे नही, और कुछ उन्हे सम्पूर्ण निर्गुण रूप मे ही मान सकते हैं, और सभी अपनी अपनी धारणा की पुष्टि मे वेद के प्रमाण भी दे सकते हैं। पर इन सब विभिन्नताओं के होते हुए भी हम सभी ईश्वर मे विश्वास करते हैं। इसी बात को दूसरे शब्दो मे ऐसा भी कह सकते हैं कि जिससे यह समस्त चराचर उत्पन्न हुआ है, जिसके अवलम्ब से वह जीवित है और अन्त मे जिसमे वह फिर से लीन हो जाता है, उस अद्भुत अनन्त शक्ति पर जो विश्वास नही करता, वह अपने को हिन्दू नही कह सकता। यदि ऐसी बात है तो इस तत्त्व को भी समग्र भारत मे फैलाने की चेष्टा करनी होगी। तुम इस ईश्वर का चाहे जिस भाव से प्रचार करो, ईश्वर-सम्बन्धी तुम्हारा भाव भले ही मेरे भाव से भिन्न हो, पर हम इसके लिए आपस मे झगड़ा नही करेगे। हम चाहते हैं, ईश्वर का प्रचार, फिर वह किसी भी रूप मे क्यों न हो। हो सकता है, ईश्वर-सम्बन्धी इन विभिन्न धारणाओं मे कोई अधिक श्रेष्ठ हो; पर याद रखना, उनमें कोई भी धारणा बुरी नही है। उन धारणाओ मे कोई उत्कृष्ट, कोई उत्कृष्टतर और कोई उत्कृष्टतम हो सकती है, पर हमारे धर्मतत्त्व की पारिभाषिक शब्दावली मे 'बुरा' नाम का कोई शब्द नहीं है। अतः, ईश्वर के नाम का चाहे जो कोई जिस भाव से प्रचार करे, वह निश्चय ही ईश्वर के आशीर्वाद का भाजन होगा। उनके नाम का जितना ही अधिक प्रचार होगा, देश का उतना ही कल्याण होगा। हमारे बच्चे बचपन से ही इस भाव को हृदय मे धारण करना सीखे —अत्यन्त दरिद्र और नीचातिनीच मनुष्य के घर से लेकर बड़े से बडे धनी-मानी और उच्चतम मनुष्य के घर मे भी ईश्वर के

शुभ नाम का प्रवेश हो !

अब तीसरा तत्त्व मै तुम लोगो के सामने प्रकट करना चाहता हूँ। हम लोग औरों की तरह यह विश्वास नही करते कि इस जगत् की सृष्टि केवल कुछ हजार वर्ष पहले हुई है और एक दिन इसका सदा के लिए ध्वंस हो जाएगा। साथ ही, हम यह भी विश्वास नही करते कि इसी जगत् के साथ शून्य से जीवात्मा की भी सृष्टि हुई है। मै समझता हूँ कि इस विषय मे भी हम सब सहमत हो सकते हैं। हमारा विश्वास है कि प्रकृति अनादि और अनन्त है; पर हाँ, कल्पान्त मे यह स्थूल बाह्य जगत् अपनी सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त होता है, और कुछ काल तक उस सूक्ष्मावस्था मे रहने के बाद पुनः उसका प्रक्षेपण होता है तथा प्रकृति नामक इस अनन्त प्रपच की अभिव्यक्ति होती है। यह तरंगाकार गति अनन्त काल से—जब स्वयं काल का ही आरम्भ नहीं हुआ था तभी से—चल रही है और अनन्त काल तक चलती रहेगी।

पुनः हिन्दू मात्र का यह विश्वास है कि मनुष्य केवल यह स्थूल जड़ शरीर ही नही है, न ही उसके अभ्यन्तरस्थ यह 'मन' नामक सूक्ष्म शरीर ही प्रकृत मनुष्य है, वरन् प्रकृत मनुष्य तो इन दोनों से अतीत एवं श्रेष्ठ है। कारण, स्थूल शरीर परिणामी है और मन का भी वही हाल है; परन्तु इन दोनों से परे 'आत्मा' नामक अनिवर्चनीय वस्तु है जिसका न आदि है, न अन्त। मै इस 'आत्मा' शब्द का अंग्रेजी मे अनुवाद नहीं कर सकता, क्योकि इसका कोई भी पर्याय गलत होगा। यह आत्मा 'मृत्यु' नामक अवस्था से परिचित नही। इसके सिवाय एक और विशिष्ट बात है, जिसमे हमारे साथ अन्यान्य जातियों का बिलकुल

मतभेद है। वह यह है कि आत्मा एक देह का अन्त होने पर दूसरी देह धारण करती है; ऐसा करते करते वह एक ऐसी अवस्था मे पहुँचती है, जब उसे फिर शरीर धारण करने की कोई इच्छा या आवश्यकता नही रह जाती, तब वह मुक्त हो जाती है और फिर से कभी जन्म नहीं लेती। यहाँ मेरा तात्पर्य अपने शास्त्रो के संसारवाद या पुनर्जन्मवाद तथा आत्मा के नित्यत्ववाद से है। हम चाहे जिस सम्प्रदाय के हों, पर इस विषय मे हम सभी सहमत है। इस आत्मा-परमात्मा के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे मे हमारे मत भिन्न हो सकते है। एक सम्प्रदाय आत्मा को परमात्मा से अनन्त काल तक अलग मान सकता है, दूसरे के मत से आत्मा उसी अनन्त अग्नि की एक चिनगारी हो सकती है, और फिर अन्यो के मतानुसार वह उस अनन्त से एकरूप और अभिन्न हो सकती है। पर जब तक हम सब लोग इस मौलिक तत्त्व को मानते है कि आत्मा अनन्त है, उसकी सृष्टि कभी नही हुई और इसलिए उसका नाश भी कभी नही हो सकता, उसे तो भिन्न भिन्न शरीरों से क्रमशः उन्नति करते करते अन्त मे मनुष्यशरीर धारण कर पूर्णत्व प्राप्त करना होगा——तब तक हम आत्मा एव परमात्मा के इस सम्बन्ध के विषय मे चाहे जैसी व्याख्या क्यों न करे, उससे कुछ बनता-बिगड़ता नही। इसके विषय मे हम सभी सहमत हैं। और इसके बाद आध्यात्मिकता के क्षेत्र मे सब से उदात्त, सर्वाधिक विभेद को व्यक्त करनेवाले और आज तक के सब से अपूर्व आविष्कार की बात आती है। तुम लोगों मे से जिन्होंने पाश्चात्य विचार-प्रणाली का अध्ययन किया होगा, उन्होने सम्भवत: यह लक्ष्य किया होगा कि एक ऐसा मौलिक प्रभेद है,

जो पाश्चात्य विचारों को एक ही आघात मे पौर्वात्य विचारों से पृथक् कर देता है। वह यह है कि भारत मे हम सभी, चाहे हम शाक्त हों या सौर या वैष्णव, अथवा बौद्ध या जैन ही क्यों न हों—हम सब के सब यही विश्वास करते हैं कि आत्मा स्वभावत: शुद्ध, पूर्ण, अनन्त, शक्तिसम्पन्न और आनन्दमय है। अन्तर केवल इतना है कि द्वैतवादियो के मत से आत्मा का वह स्वाभाविक आनन्दस्वभाव पिछले बुरे कर्मो के कारण संकुचित हो गया है एव ईश्वर के अनुग्रह से वह फिर विकसित हो जाएगा और आत्मा पुन: अपने पूर्ण स्वभाव को प्राप्त हो जाएगी। पर अद्वैतवादी कहते हैं कि आत्मा के संकुचित होने की यह धारणा भी अशत: भ्रमात्मक है—हम तो माया के आवरण के कारण ही ऐसा समझते हैं कि आत्मा अपनी सारी शक्ति गँवा बैठी है, जब कि वास्तव मे उसकी समस्त शक्ति तब भी पूर्ण रूप से अभिव्यक्त रहती है। जो भी अन्तर हो, पर हम एक ही केन्द्रीय तत्त्व पर पहुँचते हैं कि आत्मा स्वभावत: ही पूर्ण है और यही प्राच्य और पाश्चात्य भावों के बीच एक ऐसा अन्तर डाल देता है जिसमे कहीं समझौता नही है। जो कुछ महान् है, जो कुछ शुभ है, पौर्वात्य उसका अन्वेषण अभ्यन्तर में करता है। जब हम पूजा-उपासना करते हैं, तब आँखे बन्द कर ईश्वर को अन्दर ढूँढ़ने का प्रयत्न करते है, और पाश्चात्य अपने बाहर ही ईश्वर को ढूँढ़ता फिरता है। पाश्चात्यों के धर्मग्रन्थ प्रेरित (inspired) हैं, जब कि हमारे धर्मग्रन्थ अन्त:प्रेरित (expired) है, नि:श्वास की तरह वे निकले है, ईश्वरनि:श्वसित हैं, मन्त्रद्रष्टा ऋषियो के हृदयों से निकले हैं।*

---

* Inspire का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है—श्वास का बाहर से अन्दर जाना और Expire का—श्वास का भीतर से बाहर निकलना।

यह एक प्रधान बात है, जिसे अच्छी तरह समझ लेने की आवश्यकता है। प्यारे भाइयो ! मै तुम लोगो को यह बताये देता हूँ कि यही बात भविष्य मे हमे विशेष रूप से बार बार बतलानी और समझानी पड़ेगी। क्योकि यह मेरा दृढ विश्वास है और मैं तुम लोगों से भी यह बात अच्छी तरह समझ लेने को कहता हूँ कि जो व्यक्ति दिन-रात अपने को दीन-हीन या अयोग्य समझे हुए बैठा रहेगा, उसके द्वारा कुछ भी नहीं हो सकता। वास्तव मे अगर दिन-रात वह अपने को दीन, नीच एव 'कुछ नही' समझता है तो वह 'कुछ नही' ही बन जाता है। यदि तुम कहो कि 'मेरे अन्दर शक्ति है' तो तुममे शक्ति जाग उठेगी। और यदि तुम सोचो कि 'मै कुछ नही हूँ', दिन-रात यही सोचा करो, तो तुम सचमुच ही 'कुछ नही' हो जाओगे। तुम्हें यह महान् तत्त्व सदा स्मरण रखना चाहिए। हम तो उसी सर्वशक्तिमान् परमपिता की सन्तान है, उसी अनन्त ब्रह्माग्नि की चिनगारियाँ है—भला हम 'कुछ नही' क्योकर हो सकते है ? हम सब कुछ है, हम सब कुछ कर सकते हैं, और मनुष्य को सब कुछ करना ही होगा। हमारे पूर्वजो मे ऐसा ही दृढ़ आत्म-विश्वास था। इसी आत्मविश्वासरूपी प्रेरणा-शक्ति ने उन्हे सभ्यता की उच्च से उच्चतर सीढ़ी पर चढाया था। और, अब यदि हमारी अवनति हुई हो, हममे दोष आया हो तो मै तुमसे सच कहता हूँ, जिस दिन हमारे पूर्वजों ने अपना यह आत्म-विश्वास गँवाया, उसी दिन से हमारी यह अवनति, यह दुरवस्था आरम्भ हो गयी। आत्मविश्वासहीनता का मतलब है ईश्वर मे अविश्वास। क्या तुम्हे विश्वास है कि वही अनन्त मगलमय विधाता तुम्हारे भीतर से काम कर रहा है ? यदि तुम ऐसा

विश्वास करो कि वही सर्वव्यापी अन्तर्यामी प्रत्येक अणु-परमाणु में—तुम्हारे शरीर, मन और आत्मा मे ओत-प्रोत है, तो फिर क्या तुम कभी उत्साह से वंचित रह सकते हो ? मैं पानी का एक छोटासा बुलबुला हो सकता हूँ, और तुम एक पर्वताकार तरंग; तो इससे क्या ? वह अनन्त समुद्र जैसा तुम्हारे लिए, वैसा ही मेरे लिए भी आश्रय है। उस जीवन, शक्ति और आध्यात्मिकता के असीम सागर पर जैसा तुम्हारा, वैसा ही मेरा भी अधिकार है। मेरे जन्म से ही, मुझमे जीवन होने से ही, यह प्रमाणित हो रहा है कि तुम्हारे समान, चाहे तुम पर्वताकार तरंग ही क्यों न हो, मैं भी उसी अनन्त जीवन, अनन्त शिव और अनन्त शक्ति के साथ नित्यसंयुक्त हूँ। अतएव, भाइयो ! तुम अपनी सन्तानों को उनके जन्मकाल से ही इस महान्, जीवनप्रद, उच्च और उदात्त तत्त्व की शिक्षा देना शुरू कर दो। उन्हे अद्वैतवाद की ही शिक्षा देने की आवश्यकता नही, तुम चाहे द्वैतवाद की शिक्षा दो या जिस किसी 'वाद' की, जो भी तुम्हें रुचे। परन्तु हम पहले ही देख चुके है कि यही सर्वमान्य 'वाद' भारत मे सर्वत्र स्वीकृत है। आत्मा की पूर्णता के इस अपूर्व सिद्धान्त को सभी सम्प्रदायवाले-समान रूप से मानते है। हमारे महान् दार्शनिक कपिल महर्षि ने कहा है कि पवित्रता यदि आत्मा का स्वभाव न हो, तो आत्मा बाद मे कभी भी पवित्रता को प्राप्त नहीं हो सकती, क्योंकि जो स्वभावतः पूर्ण नही है, वह यदि किसी प्रकार पूर्णता पा भी ले, तो वह पूर्णता उसमे स्थिर भाव से नहीं रह सकती—वह उससे पुनः चली जाएगी। यदि अपवित्रता ही मनुष्य का स्वभाव हो, तो भले ही वह कुछ समय के लिए पवित्रता प्राप्त कर ले, पर वह सदा के लिए अपवित्र

ही बना रहेगा। कभी न कभी ऐसा समय आएगा, जब वह पवित्रता धुल जाएगी, दूर हो जाएगी, और फिर वही पुरानी स्वाभाविक अपवित्रता अपना सिक्का जमा लेगी। अतएव हमारे सभी दार्शनिक कहते हैं कि पवित्रता ही हमारा स्वभाव हैं, अपवित्रता नही, पूर्णता ही हमारा स्वभाव है, अपूर्णता नही। इस बात को तुम सदा स्मरण रखो। उस महर्षि के सुन्दर दृष्टान्त का सदैव स्मरण रखो, जो शरीरत्याग करते समय अपने मन से अपने किये हुए उत्कृष्ट कार्यो और उच्च विचारों का स्मरण करने लिए कहते हैं।* देखो, उन्होने अपने मन से अपने दोषों और दुर्बलताओ की याद करने के लिए नही कहा है। यह सच है कि मनुष्य मे दोष है, दुर्बलताएँ हैं, पर तुम सर्वदा अपने वास्तविक स्वरूप का स्मरण करो। बस यही इन दोषो और दुर्बलताओ को दूर करने का अमोघ उपाय है।

मै समझता हूँ कि ये कतिपय तत्त्व भारतवर्ष के सभी भिन्न भिन्न सम्प्रदायवाले स्वीकार करते है, और सम्भवत: भविष्य मे इसी सर्वस्वीकृत आधार पर समस्त सम्प्रदायो के लोग—वे उदार हो या कट्टर, पुरानी लकीर के फकीर हो या नयी रोशनीवाले—सभी के सभी आपस मे मिलकर रहेगे। पर सब से बढकर एक अन्य बात भी हमे याद रखनी चाहिए, खेद है कि इसे हम प्राय: भूल जाते है। वह यह कि भारत मे धर्म का तात्पर्य है 'प्रत्यक्षानुभूति', इससे कम कदापि नही। हमे ऐसी बात कोई नही सिखा सकता कि 'यदि तुम इस मत का स्वीकार करो तो तुम्हारा उद्धार हो जाएगा; क्योकि हम उस बात पर विश्वास करते ही नही। तुम अपने को जैसा बनाओगे, अपने को जैसे

* ॐ क्रतो स्मर कृत स्मर क्रतो स्मर कृत स्मर। (ईशोपनिषद् १७)

साँचे मे ढालोगे, वैसे ही बनोगे । तुम जो कुछ हो, जैसे हो, वह
ईश्वर की कृपा और अपने प्रयत्न से बने हो । किसी मतामत में
विश्वास मात्र से तुम्हारा कोई विशेष उपकार नही होगा । यह
'अनुभूति'—यह महान् शक्तिमय शब्द भारत के ही आध्यात्मिक
गगनमण्डल से आविर्भूत हुआ है, और एकमात्र हमारे ही
शास्त्रों ने यह बारम्बार कहा है कि 'ईश्वर के दर्शन' करने होंगे।
यह बात बडे साहस की है, इसमे सन्देह नहीं; पर इसका
लेशमात्र भी मिथ्या नही है, यह अक्षरशः सत्य है। धर्म की प्रत्यक्ष
अनुभूति करनी होगी, केवल सुनने से काम नही चलेगा; तोते
की तरह कुछ थोड़ेसे शब्द और धर्मविषयक बाते रट लेने से काम
नहीं चलेगा; केवल बुद्धि द्वारा स्वीकार कर लेने से भी काम न
चलेगा—आवश्यकता है हमारे अन्दर धर्म के प्रवेश करने की ।
अतः ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास रखने का सब से बड़ा प्रमाण
यह नहीं है कि वह तर्क से सिद्ध है; वरन् ईश्वर के अस्तित्व का
सर्वोच्च प्रमाण तो यह है कि हमारे यहाँ के प्राचीन तथा अर्वा-
चीन सभी पहुँचे हुए लोगों ने ईश्वर का साक्षात्कार किया है ।
आत्मा के अस्तित्व पर हम केवल इसलिए विश्वास नहीं करते कि
हमारे पास उसके प्रमाण मे उत्कृष्ट युक्तियाँ है, वरन् इसलिए
कि प्राचीन काल में भारतवर्ष के सहस्रों व्यक्तियों ने आत्मा के
प्रत्यक्ष दर्शन किये हैं; आज भी ऐसे बहुतसे हैं, जिन्होंने आत्मोप-
लब्धि की है; और भविष्य मे भी ऐसे हजारों लोग होंगे, जिन्हे
आत्मा की प्रत्यक्ष अनुभूति होगी । और जब तक मनुष्य ईश्वर
के दर्शन न कर लेगा, आत्मा की उपलब्धि न कर लेगा, तब तक
उसकी मुक्ति असम्भव है । अतएव, आओ, सब से पहले हम इस
बात को भलीभाँति समझ लें, और हम इसे जितना ही अधिक

समझेगे, उतना ही भारत मे साम्प्रदायिकता का ह्रास होगा, क्योकि यथार्थ धार्मिक वही है, जिसने ईश्वर के दर्शन पाये है, जिसने अन्तर मे उसकी प्रत्यक्ष उपलब्धि की है। जिसने उसे देख लिया, जो हमारे निकट से भी निकट और फिर दूर से भी दूर है, उसके हृदय की गाँठे खुल जाती हैं, उसके सारे सशय दूर ो जाते है और वह कर्मफल के समस्त बन्धनो से छुटकारा पा जाता है।*

अफसोस ! हम लोग बहुधा अर्थहीन वागाडम्बर को ही आध्यात्मिक सत्य समझ बैठते हैं, पाण्डित्य से भरी सुललित वाक्यरचना को ही गम्भीर धर्मानुभूति समझ लेते है। इसी से यह सारी साम्प्रदायिकता आती है, सारा विरोधभाव उत्पन्न होता है। यदि हम एक बार इस बात को भलीभाँति समझ ले कि 'प्रत्यक्ष अनुभूति' ही प्रकृत धर्म है तो हम अपने ही हृदय को टटोलेगे और यह समझने का प्रयत्न करेगे कि हम धर्मराज्य के सत्यों की उपलब्धि की ओर कहाँ तक अग्रसर हुए है। और तव हम यह समझ जाएँगे कि हम स्वय अन्धकार मे भटक रहे है और अपने साथ दूसरो को भी उसी अन्धकार मे भटका रहे है। वस, इतना समझने पर हमारी साम्प्रदायिकता और लडाई मिट जाएगी। यदि कोई तुमसे साम्प्रदायिक झगड़ा करने को तैयार हो तो उससे पूछो, "तुमने क्या ईश्वर के दर्शन किये है ? क्या तुम्हे कभी आत्मदर्शन प्राप्त हुआ है ? यदि नही, तो तुम्हे ईश्वर के नाम का प्रचार करने का क्या अधिकार है ? तुम तो

* भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसशया. ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ।।
(मुण्डकोपनिषद् २।२।८)

स्वयं अँधेरे में भटक रहे हो और मुझे भी उसी अँधेरे में घसीटने की कोशिश कर रहे हो? 'अन्धा अन्धे को राह दिखावे' के अनुसार तुम सभी गड्ढे में न गिरोगे।"

अतएव किसी दूसरे के दोष निकालने के पहले तुमको अपना विचार कर लेना चाहिए। सब को अपनी अपनी राह से चलने दो—'प्रत्यक्ष अनुभूति' की ओर अग्रसर होने दो। सभी अपने अपने हृदय में उस सत्यस्वरूप आत्मा के दर्शन करने का प्रयत्न करें। और जब वे उस भूमा के, उस अनावृत सत्य के दर्शन कर लेंगे, तभी उससे प्राप्त होनेवाले अपूर्व आनन्द का अनुभव कर सकेंगे। आत्मोपलब्धि से प्रसूत होनेवाला यह अपूर्व आनन्द कपोल-कल्पित नहीं है; वरन् भारत के प्रत्येक ऋषि ने, प्रत्येक सत्यद्रष्टा पुरुष ने इसका प्रत्यक्ष अनुभव किया है। और तब, उस आत्मदर्शी हृदय से आप ही आप प्रेम की वाणी निकलेगी; क्योंकि उसे ऐसे परम पुरुष का स्पर्श प्राप्त हुआ है, जो स्वयं प्रेमस्वरूप है। बस तभी हमारे सारे साम्प्रदायिक लड़ाई-झगड़े दूर होंगे; और तभी हम 'हिन्दू' शब्द को तथा प्रत्येक हिन्दू-नामधारी व्यक्ति को यथार्थतः समझने, हृदय में धारण करने तथा गम्भीर रूप से प्रेम करने एवं आलिगन करने मे समर्थ होंगे। मेरी बात पर ध्यान दो, केवल तभी तुम वास्तव में हिन्दू कहलाने योग्य होगे, जब 'हिन्दू' शब्द को सुनते ही तुम्हारे अन्दर बिजली दौड़ने लग जाएगी। केवल तभी तुम सच्चे हिन्दू कहला सकोगे, जब तुम किसी भी प्रान्त के, कोई भी भाषा बोलनेवाले प्रत्येक हिन्दू-संज्ञक व्यक्ति को एकदम अपना सगा और स्नेही समझने लगोगे। केवल तभी तुम सच्चे हिन्दू माने जाओगे, जब किसी भी हिन्दू कहलानेवाले का दुःख तुम्हारे हृदय में तीर की

तरह आकर चुभेगा, मानो तुम्हारा अपना लड़का ही विपत्ति मे पड़ गया हो ! केवल तभी तुम यथार्थतः 'हिन्दू' नाम के योग्य होगे, जब तुम उनके लिए समस्त अत्याचार और उत्पीडन सहने के लिए तैयार रहोगे। इसके ज्वलन्त दृष्टान्त हैं—तुम्हारे ही गुरु गोविन्दसिह, जिनकी चर्चा मैं आरम्भ मे ही कर चुका हूँ। इस महात्मा ने देश के शत्रुओं के विरुद्ध लोहा लिया, हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अपने हृदय का रक्त बहाया, अपने पुत्रो को अपनी आँखों के सामने मौत के घाट उतरते देखा—पर जिनके लिए इन्होंने अपना और अपने प्राणों से बढकर प्यारे पुत्रों का खून बहाया, उन्ही लोगो ने, इनकी सहायता करना तो दूर रहा, उल्टे इन्हे त्याग दिया !—यहाँ तक कि उन्हे इस प्रदेश से भी हटना पड़ा। अन्त मे मर्मान्तिक चोट खाये हुए सिह की भाँति यह नरकेसरी शान्तिपूर्वक अपने जन्म-स्थान को छोड़ दक्षिण भारत मे जाकर मृत्यु की राह देखने लगा; परन्तु अपने जीवन के अन्तिम मुहूर्त तक उसने अपने उन कृतघ्न देशवासियो के प्रति कभी अभिशाप का एक शब्द भी मुँह से नही निकाला। मेरी बात पर ध्यान दो। यदि तुम देश की भलाई करना चाहते हो तो तुममे से प्रत्येक को गुरु गोविन्दसिह बनना पड़ेगा। तुम्हे अपने देशवासियों मे भले ही हजारो दोष दिखाई दे, पर तुम उनकी रग रग मे बहनेवाले हिन्दू रक्त की ओर ध्यान दो। तुम्हे पहले अपने इन स्वजातीय नर-रूप देवताओ की पूजा करनी होगी, भले ही वे तुम्हारी बुराई के लिए लाख चेष्टा किया करे। इनमे से प्रत्येक व्यक्ति यदि तुम पर अभिशाप और निन्दा की बौछार करे तो भी तुम इनके प्रति प्रेमपूर्ण वाणी का ही प्रयोग करो। यदि ये तुम्हें त्याग दे, पैरों ने ठुकरा दे तो तुम उसी

वीर-केसरी गोविन्दसिंह की भाँति समाज से दूर जाकर नीरव भाव से मौत की राह देखो। जो ऐसा कर सकता है, वही सच्चा हिन्दू कहलाने का अधिकारी है। हमे अपने सामने सदा इसी प्रकार का आदर्श उपस्थित रखना होगा। पारस्परिक विरोध-भाव को भूलकर चारो ओर प्रेम का प्रवाह वहाना होगा।

लोग भारत के पुनरुद्धार के लिए जो जी मे आए, कहे। मै जीवन भर काम करता रहा हूँ, कम से कम काम करने का प्रयत्न करता रहा हूँ; मै अपने अनुभव के वल पर तुमसे कहता हूँ कि जव तक तुम सच्चे अर्थो मे धार्मिक नही होते, तव तक भारत का उद्धार होना असम्भव है। केवल भारत ही क्यों, सारे संसार का कल्याण इसी पर निर्भर है। क्योंकि, मै तुम्हे स्पष्टतया वताये देता हूँ कि इस समय पाश्चात्य सभ्यता की अपनी नीव तक हिल गयी है। भौतिकवाद की कच्ची रेतीली नींव पर खड़ी होनेवाली वड़ी से वड़ी इमारते भी एक न एक दिन अवश्य ही आपद्ग्रस्त होंगी, ढह जाएँगी। इस विषय मे संसार का इतिहास ही सव से वड़ा साक्षी है। जाति पर जाति उठी हैं और जड़वाद की नीव पर उन्होंने अपने गौरव का प्रासाद खड़ा किया है। उन्होंने ससार के समक्ष यह घोषणा की है कि जड़ के सिवा मनुष्य और कुछ नही है। ध्यान दो, पाश्चात्य भाषा में 'मनुष्य आत्मा छोड़ता है' (A man gives up the ghost); पर हमारी भाषा मे 'मनुष्य शरीर छोड़ता है।' पाश्चात्य मनुष्य अपने सम्वन्ध में पहले देह को ही लक्ष्य करता है, उसके वाद उसके एक आत्मा है। पर हम लोगों के अनुसार मनुष्य पहले आत्मा ही है। और फिर उसके एक देह भी है। दोनों मे आकाश-पाताल का अन्तर है। इसीलिए जितनी सभ्यताएँ भौतिक सुख-स्वच्छन्दता

की रेतीली नीव पर कायम हुई थीं, वे सभी थोड़े ही समय के लिए जीवित रहकर एक एक करके संसार से लुप्त हो गयी; परन्तु भारत की सभ्यता, और भारत के चरणों के पास बैठकर शिक्षा ग्रहण करनेवाले चीन और जापान की सभ्यता आज भी जीवित हैं; और इतना ही नहीं, बल्कि उनमें पुनरुत्थान के लक्षण भी दिखाई दे रहे हैं। 'फिनिक्स'* के समान हजारो बार नष्ट होने पर भी वे पुनः अधिक तेजस्वी होकर प्रस्फुरित होने को तैयार हैं। पर जड़वाद के आधार पर जो सभ्यताएँ स्थापित है, वे यदि एक बार नष्ट हो गयीं, तो फिर उठ नही सकती—एक बार यदि महल ढह पड़ा, तो बस सदा के लिए धूल में मिल गया! अतएव, धैर्य के साथ राह देखते रहो, हम लोगो का भविष्य उज्ज्वल है।

उतावले मत बनो, किसी दूसरे का अनुकरण करने की चेष्टा मत करो। दूसरे का अनुकरण करना सभ्यता की निशानी नही है; यह एक महान् पाठ है, जो हमे याद रखना है। मै यदि आप ही राजा की सी पोशाक पहन लूँ तो क्या इतने ही से मैं राजा बन जाऊँगा? शेर की खाल ओढ़कर गधा कभी शेर नहीं बन सकता। अनुकरण करना, हीन और डरपोक की तरह अनुकरण करना कभी उन्नति के पथ पर आगे नही बढ़ा सकता। वह तो मनुष्य के अधःपतन का लक्षण है। जब मनुष्य अपने आप से घृणा करने लग जाता है, तब समझना चाहिए कि उस पर अन्तिम चोट बैठ चुकी है। जब वह अपने पूर्वजो को मानने मे

---

* यूनानी दन्तकथाओं के अनुसार फिनिक्स (Phoenix) एक पक्षी है, जो ५०० वर्ष तक जीता है, फिर स्वयं अग्नि मे जलकर भस्म हो जाता है और पुनः अपने भस्म में से जी उठता है।

लज्जित होता है तो समझ लो कि उसका विनाश निकट है। यद्यपि मै हिन्दू जाति का एक नगण्य व्यक्ति हूँ, तथापि अपनी जाति और अपने पूर्वजों के गौरव मे मै अपना गौरव मानता हूँ। अपने को हिन्दू बताते हुए, हिन्दू कहकर अपना परिचय देते हुए, मुझे एक प्रकार का गर्व सा होता है। मै तुम लोगों का एक तुच्छ सेवक होने मे अपना गौरव समझता हूँ। तुम लोग आर्य ऋषियों के वंशधर हो—उन ऋषियों के, जिनकी महत्ता की तुलना नही हो सकती। मुझे इसका गर्व है कि मै तुम्हारे देश का एक नगण्य नागरिक हूँ। अतएव, भाइयो, आत्मविश्वासी बनो। पूर्वजों के नाम से अपने को लज्जित नही, गौरवान्वित समझो। याद रहे, किसी का अनुकरण कदापि न करो। कदापि नही। जब कभी तुम औरों के विचारों का अनुकरण करते हो, तुम अपनी स्वाधीनता गँवा बैठते हो। यहाँ तक कि आध्यात्मिक विषय मे भी यदि दूसरों के आज्ञाधीन हो कार्य करोगे, तो अपनी सारी शक्ति, यहाँ तक कि विचार की शक्ति भी खो बैठोगे। अपने स्वय के प्रयत्नों द्वारा अपने अन्दर की शक्तियों का विकास करो। पर देखो, दूसरे का अनुकरण न करो। हाँ, दूसरों के पास जो कुछ अच्छाई हो, उसे अवश्य ग्रहण करो। हमे दूसरों से अवश्य सीखना होगा। जमीन मे बीज बो दो, उसके लिए पर्याप्त मिट्टी, हवा और पानी की व्यवस्था करो; जब वह बीज अंकुरित होकर कालान्तर मे एक विशाल वृक्ष के रूप मे फैल जाता है, तब क्या वह मिट्टी बन जाता है, या हवा या पानी? नहीं, वह तो विशाल वृक्ष ही बनता है—मिट्टी, हवा और पानी से रस खीचकर वह अपनी प्रकृति के अनुसार एक महीरुह का रूप ही धारण करता है। उसी प्रकार तुम भी करो—औरों से

उत्तम बातें सीखकर उन्नत बनो। जो सीखना नही चाहता, वह तो पहले ही मर चुका है। महर्षि मनु ने कहा है :

श्रद्दधानः शुभा विद्यामाददीतावरादपि।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्न दुष्कुलादपि ॥*

—'स्त्री-रत्न को, भले ही वह कुलीन न हो, अपनी पत्नी के रूप मे स्वीकार करो और नीच व्यक्ति की सेवा करके उससे भी श्रेष्ठ विद्या सीखो। चाण्डाल से भी श्रेष्ठ धर्म की शिक्षा ग्रहण करो।' औरों के पास जो कुछ भी अच्छा पाओ, सीख लो; पर उसे अपने भाव के साँचे मे ढालकर लेना होगा। दूसरे से शिक्षा ग्रहण करते समय उसके ऐसे अनुगामी न बनो कि अपनी स्वतन्त्रता गँवा बैठो। भारत के इस जातीय जीवन को भूल मत जाना। पल भर के लिए भी ऐसा न सोचना कि भारतवर्ष के सभी अधिवासी यदि अमुक जाति की वेश-भूषा धारण कर लेते या अमुक जाति के आचार-व्यवहारादि के अनुयायी बन जाते तो बड़ा अच्छा होता। यह तो तुम भलीभाँति जानते हो कि कुछ ही वर्षो का अभ्यास छोड़ देना कितना कठिन होता है! फिर यह ईश्वर ही जानता है कि तुम्हारे रक्त मे कितने सहस्र वर्षो का संस्कार जमा हुआ है; कितने सहस्र वर्षो से यह प्रबल जातीय जीवन-स्रोत एक विशेष दिशा की ओर प्रवाहित हो रहा है। और क्या तुम यह समझते हो कि वह प्रबल धारा, जो प्रायः अपने समुद्र के समीप पहुँच चुकी है, पुनः उलटकर हिमालय की हिमाच्छादित चोटियों पर वापस जा सकती है? यह असम्भव है! यदि ऐसी चेष्टा करोगे तो जाति ही नष्ट हो जाएगी। अतः, इस जातीय जीवन-स्रोत को पूर्ववत् प्रवाहित होने दो।

* मनुसंहिता २।२३८

हाँ, जो बाँध इसके रास्ते में रुकावट डाल रहे हैं, उन्हें काट दो; इसका रास्ता साफ करके प्रवाह को मुक्त कर दो; देखोगे, यह जातीय जीवन-स्रोत अपनी स्वाभाविक शक्ति से वहता हुआ आगे वढ़ निकलेगा और यह जाति अपनी सर्वांगीण उन्नति करते करते अपने चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर होती जाएगी।

भाइयो! यही कार्य-प्रणाली है, जो हमे भारत मे धर्म के क्षेत्र मे अपनानी होगी। इसके सिवा और भी कई महती समस्याएँ हैं, जिनकी चर्चा समयाभाव के कारण इस रात मे नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए जाति-भेद-सम्बन्धी अद्भुत समस्या को ही ले लो। मैं जीवन भर इस समस्या पर हर एक पहलू से विचार करता रहा हूँ। भारत के प्रायः प्रत्येक प्रान्त मे जाकर मैंने इस समस्या का अध्ययन किया है। इस देश के लगभग हर एक भाग की विभिन्न जातियो से मै मिला-जुला हूँ। पर जितना ही मै इस विषय पर विचार करता हूँ, मेरे सामने उतनी ही कठिनाइयाँ आ पड़ती है और मै इसके उद्देश्य अथवा तात्पर्य के विषय मे किंकर्तव्यविमूढ़ सा हो जाता हूँ। अन्त मे अव मेरी आँखों के सामने एक क्षीण आलोक-रेखा दिखाई देने लगी है, इधर कुछ ही समय से इसका मूल उद्देश्य मेरी समझ मे आने लगा है।

इसके बाद फिर खान-पान की समस्या भी बड़ी विषम है। वास्तव मे यह एक बड़ी जटिल समस्या है। साधारणतः हम लोग इसे जितना अनावश्यक समझते है, सच पूछो तो यह उतनी अनावश्यक नही है। मै तो इस सिद्धान्त पर आ पहुँचा हूँ कि आजकल खान-पान के बारे में हम लोग जिस बात पर जोर देते हैं, वह एक बड़ी विचित्र बात है—वह शास्त्रानुमोदित

नहीं है। तात्पर्य यह कि खान-पान मे वास्तविक पवित्रता की अवहेलना करके ही हम लोग कष्ट पा रहे हैं। हम शास्त्रानुमोदित आहार-प्रथा के वास्तविक अभिप्राय को बिलकुल भूल गये हैं।

इसी प्रकार, और भी कई समस्याएँ हैं, जिन्हे मैं तुम लोगों के समक्ष रखना चाहता हूँ और साथ ही यह बतलाना चाहता हूँ कि इन समस्याओं के समाधान क्या हैं तथा किस प्रकार इन समाधानों को कार्यरूप मे परिणत किया जा सकता है। पर दुःख है, सभा के व्यवस्थित रूप से आरम्भ होने मे देर हो गयी, और अब मैं तुम लोगों को और अधिक नही रोकना चाहता। अतः जातिभेद तथा अन्यान्य समस्याओ पर मै फिर भविष्य मे कभी कुछ कहूँगा।

अब केवल एक बात और कहकर मै आध्यात्मिक तत्त्व-विषयक अपना वक्तव्य समाप्त कर दूँगा। भारत मे धर्म बहुत दिनों से गतिहीन बना हुआ है। हम चाहते है कि उसमे गति उत्पन्न हो। मै चाहता हूँ कि प्रत्येक मनुष्य के जीवन मे धर्म प्रतिष्ठित हो। मै चाहता हूँ कि प्राचीन काल की तरह राजमहल से लेकर दरिद्र के झोपड़े तक सर्वत्र समान भाव से धर्म का प्रवेश हो। याद रहे, धर्म ही इस जाति का साधारण उत्तराधिकार एवं जन्मसिद्ध स्वत्व है। इस धर्म को हर एक आदमी के दरवाजे तक निःस्वार्थ भाव से पहुँचाना होगा। ईश्वर के राज्य मे जिस प्रकार वायु सब के लिए समान रूप से प्राप्त होती है, उसी प्रकार भारतवर्ष मे धर्म को सुलभ बनाना होगा। भारत मे इसी प्रकार का कार्य करना होगा। पर छोटे छोटे दल बाँध आपसी मतभेदों पर विवाद करते रहने से नहीं

बनेगा; हमे तो उन बातों का प्रचार करना होगा, जिनमे हम सब सहमत हैं और तब आपसी मतभेद आप ही आप दूर हो जाएँगे। मैने भारतवासियों से बारम्बार कहा है और अब भी कह रहा हूँ कि कमरे में यदि सैकड़ों वर्षों से अन्धकार फैला हुआ है, तो क्या 'घोर अन्धकार!', 'भयंकर अन्धकार!!' कहकर चिल्लाने से अन्धकार दूर हो जाएगा? नहीं; रोशनी जला दो, फिर देखो कि अँधेरा आप ही आप दूर हो जाता है या नहीं। मनुष्य के सुधार का, उसके संस्कार का यही रहस्य है। उसके समक्ष उच्चतर बातें, उच्चतर प्रेरणाएँ रखो; पहले मनुष्य मे, उसकी मनुष्यता मे विश्वास रखो। ऐसा विश्वास लेकर क्यों प्रारम्भ करें कि मानव हीन और पतित है? मै आज तक मनुष्य पर, बुरे से बुरे मनुष्य पर भी, विश्वास करके कभी विफल नही हुआ हूँ। जहाँ कहीं भी मैंने मानव मे विश्वास किया, वहाँ मुझे इच्छित फल ही प्राप्त हुआ है—सर्वत्र सफलता ही मिली है, यद्यपि प्रारम्भ मे सफलता के अच्छे लक्षण नहीं दिखाई देते थे। अतः, मनुष्य में विश्वास रखो, चाहे वह पण्डित हो या घोर मूर्ख, साक्षात् देवता जान पड़े या मूर्तिमान् शैतान; सब से पहले मनुष्य मे विश्वास रखो, और तदुपरान्त यह विश्वास लाने का प्रयत्न करो कि यदि उसमे दोष हैं, यदि वह गलतियाँ करता है, यदि वह अत्यन्त घृणित और असार सिद्धान्तों को अपनाता है तो वह अपने यथार्थ स्वभाव के कारण ऐसा नहीं करता, वरन् उच्चतर आदर्शों के अभाव मे वैसा करता है। यदि कोई व्यक्ति असत्य की ओर जाता है, तो उसका कारण यही समझो कि वह सत्य को ग्रहण नही कर पाता। अतः, मिथ्या को दूर करने का एकमात्र उपाय यही है कि उसे

सत्य का ज्ञान कराया जाए। उसे सत्य का ज्ञान दे दो और उसके साथ अपने पूर्व मन के भाव की तुलना उसे करने दो। तुमने तो उसे सत्य का असली रूप दिखा दिया, बस यही तुम्हारा काम समाप्त हो गया। अब वह स्वयं उस सत्य के साथ अपने पूर्व भाव की तुलना करके देखे। यदि तुमने वास्तव मे उसे सत्य का ज्ञान करा दिया है तो निश्चय जानो, मिथ्या भाव अवश्य दूर हो जाएगा। प्रकाश कभी अन्धकार का नाश किये विना नही रह सकता। सत्य अवश्य ही उसके भीतर के सद्-भावों को प्रकाशित करेगा। यदि सारे देश का आध्यात्मिक संस्कार करना चाहते हो, तो उसके लिए यही रास्ता है—'नान्यः पन्था'! वाद-विवाद या लड़ाई-झगड़ों से कभी अच्छा फल नहीं हो सकता। लोगों से यह भी कहने की आवश्यकता नही कि तुम लोग जो कुछ कर रहे हो, वह ठीक नही है, खराब है। जो कुछ अच्छा है, उसे उनके सामने रख दो; फिर देखो, वे कितने आग्रह के साथ उसे ग्रहण करते है और फिर देखोगे कि मनुष्य मात्र मे जो अविनाशी ईश्वरीय शक्ति है, वह जागृत हो जाती है और जो कुछ उत्तम है, जो कुछ महिमामय है, उसे ग्रहण करने के लिए हाथ फैला देती है।

जो हमारी समग्र जाति का स्रष्टा, पालक एव रक्षक है, जो हमारे पूर्वजों का ईश्वर है—भले ही वह विष्णु, शिव, शक्ति या गणेश आदि नामों से पुकारा जाता हो, सगुण या निर्गुण अथवा साकार या निराकार रूप से उसकी उपासना की जाती हो—जिसे जानकर हमारे पूर्वज "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" कह गये हैं, वह अपनी अनन्त प्रम-शक्ति के साथ हममे प्रवेश करे, अपने शुभाशीर्वादों की हम पर वर्षा करे, हमे एक दूसरे को समझने

की सामर्थ्य दे, जिससे हम यथार्थ प्रेम के साथ, सत्य के प्रति तीव्र अनुराग के साथ एक दूसरे के हित के लिए कार्य कर सकें, जिससे भारत के आध्यात्मिक पुनर्निर्माण के इस महत्कार्य में हमारे अन्दर अपने व्यक्तिगत नामयश, व्यक्तिगत स्वार्थ, व्यक्ति-गत बड़प्पन की वासना के अंकुर न फूटे।

वह धर्म जिसमें हम पैदा हुए

प्राचीन काल मे हमारे देश मे आध्यात्मिक भाव की अतिशय उन्नति हुई थी। हमे आज वही प्राचीन गाथा स्मरण करनी होगी। किन्तु प्राचीन गौरव के अनुचिन्तन मे सब से बड़ी आपत्ति यह है कि हम कोई नवीन काम करना पसन्द नही करते और केवल अपने प्राचीन गौरव के स्मरण और कीर्तन से ही सन्तुष्ट होकर अपने को सर्वश्रेष्ठ समझने लग जाते हैं। हमे इस सम्बन्ध मे सावधान रहना चाहिए। यह सही है कि प्राचीन काल में ऐसे अनेक ऋषि-महर्षि थे जिन्हे सत्य का साक्षात्कार हुआ था। किन्तु प्राचीन गौरव के स्मरण से वास्तविक उपकार तभी होगा, जब हम भी उनके सदृश ऋषि हो सके। केवल इतना ही नही, मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि हम और भी श्रेष्ठ ऋषि हो सकेगे। भूतकाल मे हमारी खूब उन्नति हुई थी— मुझे उसे स्मरण करते हुए बड़े गौरव का अनुभव होता है। वर्तमान अवनत अवस्था को देखकर भी मै दुःखी नही होता और भविष्य मे जो होगा, उसकी कल्पना कर मै आशान्वित होता हूँ। ऐसा क्यों? क्योकि मै जानता हूँ कि बीज का सम्पूर्ण रूपान्तरण होना होता है, हाँ, जब बीज का बीज-भाव नष्ट होगा, तभी वह वृक्ष हो सकेगा। इसी प्रकार हमारी वर्तमान अवनत अवस्था के भीतर ही, चाहे थोड़े समय के लिए ही, भविष्य की हमारी धार्मिक महानता की सम्भावनाएँ प्रसुप्त है जो अधिक शक्तिशाली एवं गौरवशाली रूपों मे उठ खड़ी होने के लिए तत्पर हैं।

अब हमे विचार करना चाहिए कि जिस धर्म मे हमने

---

३१ मार्च १९०१ को ढाका मे दिये हुए भाषण की रिपोर्ट।

जन्म लिया है, उसमे सहमत होने लिए समान भूमियाँ क्या हैं ? ऊपर से विचार करने पर हमे पता चलता है कि हमारे धर्म मे नाना प्रकार के विरोध है। कुछ लोग अद्वैतवादी, कुछ विशिष्टाद्वैतवादी और कुछ द्वैतवादी है। कोई अवतार मानते हैं, कोई मूर्तिपूजा मे विश्वास रखते है तो कोई निराकारवादी है। आचार के सम्बन्ध मे भी नाना प्रकार की विभिन्नताएँ दिखाई पड़ती है। जाट लोग मुसलमान या ईसाई की कन्या से विवाह करने पर भी जातिच्युत नही होते। वे बिना किसी विरोध के सब हिन्दू मन्दिरों मे प्रवेश कर सकते हैं। पजाब के अनेक गाँवों में जो व्यक्ति सूअर का मांस नही खाता, उसे लोग हिन्दू समझते ही नहीं। नेपाल मे ब्राह्मण चारों वर्णो मे विवाह कर सकता है, जब कि बंगाल मे ब्राह्मण अपनी जाति की अन्य शाखाओं मे भी विवाह नही कर सकता। इसी प्रकार की और भी विभिन्नताएँ देखने मे आती है। किन्तु इन सभी विभिन्नताओं के बावजूद एक विषय मे सभी मे एकता है और वह यह कि कोई भी हिन्दू गोमांस-भक्षण नही करता। इसी प्रकार हमारे धर्म के बहुविध पन्थों और सम्प्रदायो मे भी एकता की एक समान भूमि है।

पहले तो शास्त्रों की आलोचना करते समय एक महत्त्वपूर्ण तथ्य हमारे सामने आता है कि केवल उन्ही धर्मो ने उत्तरोत्तर उन्नति की, जिनके पास अपने एक या अनेक शास्त्र थे, फिर चाहे उन पर कितने ही अत्याचार किये गये हों। यूनानी धर्म अपनी विशिष्ट सुन्दरताओं के होते हुए भी शास्त्र के अभाव में लुप्त हो गया, जब कि यहूदी धर्म अपने आदि धर्मग्रन्थ (Old Testament) के बल पर आज भी अक्षुण्ण रूप से प्रभावशाली

है। संसार के सब से प्राचीन ग्रन्थ वेद पर आधारित होने के कारण यही हाल हिन्दू धर्म का भी है। वेद के दो भाग हैं-- कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। भारतवर्ष के सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य से कर्मकाण्ड का आजकल लोप हो गया है, हालाँकि दक्षिण में अब भी कुछ ब्राह्मण कभी कभी अजा-बलि देकर यज्ञ करते हैं, और हमारे विवाह-श्राद्धादि के मन्त्रों मे भी वैदिक क्रियाकाण्ड का आभास दिखाई पड़ जाता है। इस समय उसे पूर्व की भाँति पुनः प्रतिष्ठित करने का उपाय नही है। कुमारिल भट्ट ने एक बार चेष्टा की थी, किन्तु वे अपने प्रयत्न मे असफल ही रहे। इसके बाद ज्ञानकाण्ड है, जिसे उपनिषद्, वेदान्त या श्रुति भी कहते है। आचार्य लोग जब कभी श्रुति का कोई वाक्य उद्धृत करते हैं तो वह उपनिषद् का ही होता है। यही वेदान्त धर्म इस समय हिन्दुओं का धर्म है। यदि कोई सम्प्रदाय सिद्धान्तों की दृढ़ प्रतिष्ठा करना चाहता है तो उसे वेदान्त का ही आधार लेना होगा। द्वैतवादी अथवा अद्वैतवादी सभी को उसी आधार की शरण लेनी होगी। यहाँ तक कि वैष्णवों को भी अपने सिद्धान्तों की सत्यता सिद्ध करने के लिए गोपालतापनी उपनिषद् की शरण लेनी पड़ती है। यदि किसी नये सम्प्रदाय को अपने सिद्धान्तो के पुष्टिकारक वचन उपनिषद् मे नही मिलते तो वे एक नये उपनिषद् की रचना करके उसे व्यवहृत करने का यत्न करते हैं। अतीत मे इसके कतिपय उदाहरण मिलते है।

वेदों के सम्बन्ध मे हिन्दुओं की यह धारणा है कि वे प्राचीन काल के किसी व्यक्तिविशेष की रचना अथवा ग्रन्थ मात्र नहीं है। वे उसे ईश्वर की अनन्त ज्ञानराशि मानते है जो किसी समय व्यक्त और किसी समय अव्यक्त रहती है। टीकाकार सायणा-

चार्य ने एक स्थान पर लिखा है, "यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् निर्ममे"––जिसने वेदज्ञान के प्रभाव से सारे जगत् की सृष्टि की है। वेद के रचयिता को कभी किसी ने नहीं देखा। इसलिए इसकी कल्पना करना भी असम्भव है। ऋषि लोग उन मन्त्रों अथवा शाश्वत नियमों के मात्र अन्वेषक थे। उन्होने आदि काल से स्थित ज्ञानराशि वेदों का साक्षात्कार किया था।

ये ऋषिगण कौन थे? वात्स्यायन कहते हैं, जिसने यथाविहित धर्म की प्रत्यक्ष अनुभूति की है, केवल वही ऋषि हो सकता है, चाहे वह जन्म से म्लेच्छ ही क्यों न हो। इसीलिए प्राचीन काल में जारज-पुत्र वशिष्ठ, धीवर-तनय व्यास, दासीपुत्र नारद प्रभृति ऋषि कहलाते थे। सच्ची बात यह है कि सत्य का साक्षात्कार हो जाने पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रह जाता। उपर्युक्त व्यक्ति यदि ऋषि हो सकते हैं तो, हे आधुनिक कुलीन ब्राह्मण, तुम सभी और भी उच्च ऋषि हो सकते हो। इसी ऋषित्व के लाभ करने की चेष्टा करो, अपना लक्ष्य प्राप्त करने तक रुको नहीं, समस्त संसार तुम्हारे चरणों के सामने स्वयं ही नत हो जाएगा।

ये वेद ही हमारे एकमात्र प्रमाण हैं और इन पर सब का अधिकार है।

"यथेमां वाचं कल्याणीमावादानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय॥"*

क्या तुम हमे वेद में ऐसा कोई प्रमाण दिखला सकते हो, जिससे यह सिद्ध हो जाए कि वेद में सब का अधिकार नहीं है? पुराणों मे अवश्य लिखा है कि वेद की अमुक शाखा में अमुक

* शुक्ल यजुर्वेद, माध्यन्दिन शाखा, अध्याय २६, मंत्र २

जाति का अधिकार है या अमुक अंश सत्ययुग के लिए और अमुक अश कलियुग के लिए है। किन्तु, ध्यान रखो, वेद मे इस प्रकार का कोई जिक्र नही है, ऐसा केवल पुराणो मे ही है। क्या नौकर कभी अपने मालिक को आज्ञा दे सकता है ? स्मृति, पुराण, तन्त्र —ये सब वही तक ग्राह्य हैं, जहाँ तक वे वेद का अनुमोदन करते हैं। ऐसा न होने पर उन्हे अविश्वसनीय मानकर त्याग देना चाहिए। किन्तु आजकल हम लोगों ने पुराणों को वेद की अपेक्षा श्रेष्ठ समझ रखा है। वेदो की चर्चा तो बगाल प्रान्त मे लुप्त ही हो गयी है। मै वह दिन शीघ्र देखना चाहता हूँ, जिस दिन प्रत्येक घर मे गृहदेवता शालग्राम की मूर्ति के साथ साथ वेद की भी पूजा होने लगेगी, जब बच्चे, बूढे और स्त्रियाँ वेद-अर्चना का शुभारम्भ करेगे।

वेदों के सम्बन्ध मे पाश्चात्य विद्वानो के सिद्धान्तों मे मेरा विश्वास नही है। आज वेदो का समय वे कुछ निश्चित करते हैं और कल उसे बदलकर फिर एक हजार वर्ष पीछे घसीट ले जाते है। पुराणो के विषय मे हम ऊपर कह आये है कि वे वही तक ग्राह्य हैं, जहाँ तक वेदों का समर्थन करते है। पुराणो मे ऐसी अनेक बाते हैं जिनका वेदों के साथ मेल नही खाता। उदाहरण के लिए पुराण मे लिखा है कि कोई व्यक्ति दस हजार वर्ष तक और कोई दूसरे बीस हजार वर्ष तक जीवित रहे, किन्तु वेदो मे लिखा है—"शतायुर्वै पुरुष:"। इनमे से हमारे लिए कौनसा मत स्वीकार्य है ? निश्चय ही वेद। इस प्रकार के कथनों के बावजूद मै पुराणो की निन्दा नही करता। उनमे योग, भक्ति, ज्ञान और कर्म की अनेक सुन्दर सुन्दर बाते देखने मे आती है, और हमे उन सभी को ग्रहण करना ही चाहिए। इसके बाद है तन्त्र। तन्त्र का

वास्तविक अर्थ है शास्त्र, जैसे कापिल तन्त्र। किन्तु तन्त्र शब्द प्रायः सीमित अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। बौद्ध धर्मावलम्वी एवं अहिंसा के प्रचारक-प्रसारक नृपतियों के शासन-काल मे वैदिक याग-यज्ञों का लोप हो गया। तब राजदण्ड के भय से कोई जीवहिंसा नही कर सकता था। किन्तु कालान्तर मे वौद्ध धर्म मे ही इन याग-यज्ञों के श्रेष्ठ अश गुप्त रूप से सम्मिलित हो गये। इसी से तन्त्रों की उत्पत्ति हुई। तन्त्रों मे वामाचार प्रभृति वहुतसे अंश खराव होने पर भी, तन्त्रों को लोग जितना खराव समझते हैं, वे उतने खराव नही है। उनमें वेदान्तसम्बन्धी कुछ उच्च एवं सूक्ष्म विचार निहित हैं। वास्तविक बात तो यह है कि वेदों के ब्राह्मण भाग को ही कुछ परिवर्तित कर तन्त्रों मे समाहित कर लिया गया था। वर्तमान काल की पूजाविधियाँ और उपासना-पद्धति तन्त्रों के अनुसार होती हैं।

अव हमें अपने धर्म के सिद्धान्तों पर भी थोड़ा विचार करना चाहिए। हमारे धर्म के सम्प्रदायों मे अनेक विभिन्नताएँ एवं अन्तर्विरोध होते हुए भी एकता के अनेक क्षेत्र हैं। प्रथम, सभी सम्प्रदाय तीन चीजों का अस्तित्व स्वीकार करते हैं— ईश्वर, आत्मा और जगत्। ईश्वर वह है, जो अनन्त काल से सम्पूर्ण जगत् का सर्जन, पालन और संहार करता आ रहा है। सांख्य दर्शन के अतिरिक्त सभी इस सिद्धान्त पर विश्वास करते हैं। इसके बाद आत्मा का सिद्धान्त और पुनर्जन्म की वात आती है। इसके अनुसार असंख्य जीवात्माएँ बार बार अपने कर्मों के अनुसार शरीर धारण कर जन्म-मृत्यु के चक्र मे घूमती रहती हैं। इसी को संसारवाद या प्रचलित रूप से पुनर्जन्मवाद कहते हैं। इसके बाद यह अनादि अनन्त जगत् है। यद्यपि कुछ लोग इन

तीनों को भिन्न भिन्न मानते हैं तथा कुछ इन्हे एक ही के भिन्न भिन्न तीन रूप और कुछ अन्य प्रकारों से इनका अस्तित्व स्वीकार करते हैं, पर इन तीनो का अस्तित्व ये सभी मानते हैं।

यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि चिर काल से हिन्दू आत्मा को मन से पृथक् मानते आ रहे हैं। पाश्चात्य विद्वान् मन के परे किसी चीज की कल्पना नही कर सकते। वे लोग जगत् को आनन्दपूर्ण मानते हैं और इसीलिए उसे मौज मारने की जगह समझते हैं। जब कि प्राच्य लोगों की जन्म से ही यह धारणा होती है कि यह संसार नित्य परिवर्तनशील तथा दुःख-पूर्ण है। और इसीलिए यह मिथ्या के सिवा कुछ नही है और न ही इसके क्षणिक सुखों के लिए आत्मा का धन गँवाया जा सकता है। इसी कारण पाश्चात्य लोग सघबद्ध कर्म मे विशेष पटु हैं और प्राच्य लोग अन्तर्जगत् के अन्वेषण मे ही विशेष साहस दिखाते हैं।

जो कुछ भी हो, यहाँ अब हमे हिन्दू धर्म की दो-एक और बातों पर विचार करना आवश्यक है। हिन्दुओं मे अवतारवाद प्रचलित है। वेदों मे हमें केवल मत्स्यावतार का ही उल्लेख मिलता है। सभी लोग इस पर विश्वास करते हैं या नही, यह कोई विचारणीय विषय नही है। पर इस अवतारवाद का वास्तविक अर्थ है मनुष्य-पूजा—मनुष्य के भीतर ईश्वर को साक्षात् करना ही ईश्वर का वास्तविक साक्षात्कार करना है। हिन्दू प्रकृति के द्वारा प्रकृति के ईश्वर तक नही पहुँचते—मनुष्य के द्वारा मनुष्य के ईश्वर के निकट जाते हैं।

इसके बाद है मूर्तिपूजा। शास्त्रों मे विहित हर एक शुभ कर्म में उपास्य पंचदेवताओ के अतिरिक्त अन्य देवता केवल

उनके द्वारा अधिष्ठित पदों के भिन्न भिन्न नाम मात्र है। कि ये पाँचों उपास्य देवता भी उसी एक भगवान् के भिन्न भिन्न न मात्र हैं। यह बाह्य मूर्तिपूजा हमारे सब शास्त्रों मे अधम कोटि की पूजा मानी गयी है, किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि मूर्तिपूजा करना गलत है। वर्तमान समय मे प्रचलित इ मूर्तिपूजा के भीतर नाना प्रकार के कुत्सित भावों के प्रवेश कर लेने पर भी, मै उसकी निन्दा नही कर सकता। यदि उसी कट्टर मूर्तिपूजक ब्राह्मण (श्रीरामकृष्ण) की पदधूलि से मै पुनीत न बनता तो आज मैं कहाँ होता ?

वे सुधारक जो मूर्तिपूजा के विरुद्ध प्रचार करते है अथवा उसकी निन्दा करते हैं, उनसे मै कहूँगा कि "भाइयो, यदि तुम बिना किसी सहायता के निराकार ईश्वर की उपासना कर सकते हो तो तुम भले ही वैसा करो, किन्तु जो लोग ऐसा नही कर सकते हैं, उनकी निन्दा क्यों करते हो ? प्राचीनतम समय की गौरवान्वित स्मृतिचिह्नरूप एक सुन्दर एवं भव्य इमारत उपेक्षा या अव्यवहार के कारण जर्जर हो गयी है। यह हो सकता है कि उसमे हर कही धूल जमी हुई है, यह भी हो सकता है कि उसके कुछ हिस्से जमीन पर भहरा पड़े हों। पर तुम उसे क्या करोगे ? क्या तुम उसकी सफाई-मरम्मत करके उसकी पुरानी धज लौटा दोगे या उस इमारत को गिराकर उसके स्थान पर एक सन्दिग्ध स्थायित्व वाले कुत्सित आधुनिक योजना के अनुसार कोई दूसरी इमारत खड़ी करोगे ? हमे उसका सुधार करना होगा, इसका अर्थ है उसकी उचित सफाई-मरम्मत करना, न कि उसे ध्वस्त कर देना। यहीं पर सुधार का काम समाप्त हो जाता है। यदि ऐसा कर सकते हो तो करो, अन्यथा दूर रहो।

जीर्णोद्धार हो जाने पर उसकी और क्या आवश्यकता ?" किन्तु हमारे देश के सुधारक एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय का सगठन करना चाहते है। तो भी उन्होने बड़ा कार्य किया है। ईश्वर के आशीर्वादों की उनके सिर पर वर्षा हो। किन्तु तुम लोग अपने को क्यो महान् समुदाय से पृथक् करना चाहते हो ? हिन्दू नाम लेने ही से क्यो लज्जित होते हो—जो कि तुम लोगो की महान् और गौरवपूर्ण सम्पत्ति है ? ओ अमरपुत्रो, मेरे देश-वासियो, यह हमारा जातीय जहाज युगो तक मुसाफिरो को ले आता, ले जाता रहा है और इसने अपनी अतुलनीय सम्पदा से संसार को समृद्ध बनाया है। अनेक गौरवपूर्ण शताब्दियो तक हमारा यह जहाज जीवन सागर मे चलता रहा है और करोडो आत्माओ को उसने दुःख से दूर संसार के उस पार पहुँचाया है। आज शायद उसमे एक छेद हो गया हो और इससे वह क्षत हो गया हो, यह चाहे तुम्हारी अपनी गलती से या चाहे किसी और कारण से। तुम जो इस जहाज पर चढे हुए हो, अब क्या करोगे ? क्या तुम दुर्वचन कहते हुए आपस मे झगड़ोगे ? क्या तुम सब मिलकर उस छेद को बन्द करने की पूर्ण चेष्टा नही करोगे ? हम सब लोगो को प्रसन्नता से अपने हृदय का रक्त देकर यह कार्य करना चाहिए। अगर हम यह न कर सके तो हम एकसग डूब मरे, किन्तु हमारे ओठो पर निन्दा-शाप नही, कृतज्ञता के शब्द हों !

और ब्राह्मणो से भी मै कहना चाहता हूँ कि तुम्हारा जन्मगत तथा वशगत अभिमान मिथ्या है, उसे छोड़ दो। शास्त्रों के अनुसार तुममे भी अब ब्राह्मणत्व शेष नही रह गया, क्योंकि तुम भी इतने दिनो से म्लेच्छ राज्य में रह रहे हो। यदि तुम

लोगों को अपने पूर्वजों की कथाओं मे विश्वास है तो जिस प्रकार प्राचीन कुमारिल भट्ट ने बौद्धों के संहार करने के अभिप्राय से पहले बौद्धों का शिष्यत्व ग्रहण किया, पर अन्त मे उनकी हत्या के प्रायश्चित्त के लिए उन्होने तुपाग्नि में प्रवेश किया, उसी प्रकार तुम भी तुषाग्नि मे प्रवेश करो। यदि ऐसा न कर सको तो अपनी दुर्बलता स्वीकार कर लो। और सभी के लिए ज्ञान का द्वार खोल दो और पददलित जनता को उनका उचित एव प्रकृत अधिकार दे दो।

कुछ अवश्यपठनीय पुस्तकें

श्रीरामकृष्णलीलामृत—दो भागो में
श्रीरामकृष्ण : सक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश
माँ सारदा
श्रीसारदादेवी : सक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश
विवेकानन्द चरित
स्वामी विवेकानन्द : सक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश
श्रीरामकृष्ण-वचनामृत—तीन भागो मे
अमृतवाणी

स्वामी विवेकानन्दकृत पुस्तके

योग

ज्ञानयोग
राजयोग (पातंजल योगसूत्र, सूत्रार्थ और व्याख्यासहित)
प्रेमयोग
कर्मयोग
भक्तियोग
ज्ञानयोग पर प्रवचन
सरल राजयोग

धर्म-दर्शन-अध्यात्म

धर्मविज्ञान
धर्मतत्त्व
धर्मरहस्य
हिन्दूधर्म
हिन्दूधर्म के पक्ष मे
शिकागो वक्तृता
नारदभक्तिसूत्र एवं भक्तिविषयक प्रवचन और व्याख्यान
भगवान श्रीकृष्ण और भगवद्गीता
भगवान बुद्ध का ससार को सन्देश एव अन्य व्याख्यान और प्रवचन
देववाणी (उच्च आध्यात्मिक उपदेश)
कवितावली (आध्यात्मिक अनुभूतिमय काव्य)
वेदान्त
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त
आत्मतत्त्व
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग
मरणोत्तर जीवन

जीवनी

महापुरुषो की जीवनगाथाए
मेरे गुरुदेव
ईशदूत ईसा
पवहारी बाबा

सम्भाषणात्मक

डॉ. साध्वी रत्नत्रयी : एक परिचय